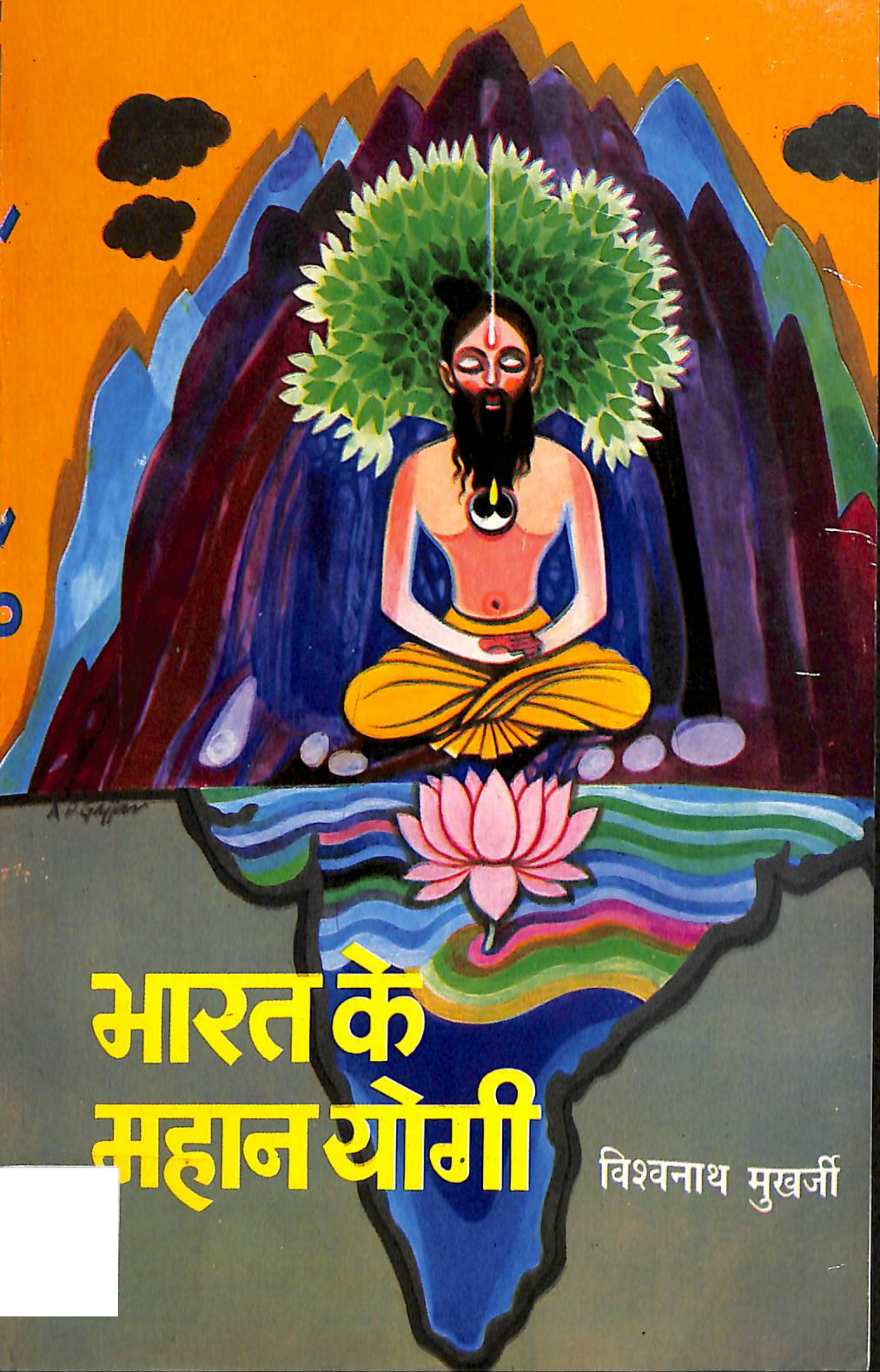
पाँच-छः



भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

भारत के महान् योगी

पंचम तथा षष्ठ खण्ड

विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHARAT KE MAHAN YOGI
(Part 5-6)
by
Vishwanath Mukherjee

ISBN : 81-89498-03-7

चंतुर्थ संस्करण : 2005 ई०

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन
चौक, वाराणसी-221 001
फोन व फैक्स : (0542) 2421472
E-mail : vvp@vsnl.com • sales@vvpbooks.com
Shop at : www.vvpbooks.com

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी-221 001

पुरोवाक्

पिछले खण्ड के पुरोवाक् में तान्त्रिक मर्प और उनके शिष्य योगी मिलरेप का उल्लेख किया गया है। साधना-काल में कितनी कठिन प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, इसकी जानकारी अपने लेखों में पण्डित गंगाशंकर मिश्र ने दी है।

धर्मशास्त्रों के अध्ययन के लिए मर्प तिब्बत से नेपाल आया तब यहाँ उसे भारतीय पण्डित नरोप के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। फुल्लहरि नामक स्थान में आकर मर्प नरोप से मिला। उसे देखते ही नरोप ने कहा—''तुम मेरे ज्ञान-पुत्र हो। तुम्हारे आने की सूचना मुझे मिल चुकी है। तुम्हारा नाम मर्पपति है और तुम तिब्बत से आ रहे हो। मेरी राय यह है कि तुम सबसे पहले विष सरोवर चले जाओ। वहाँ आचार्य कुक्कुरिपा से शिक्षा ग्रहण करो। उनका मुँह बन्दर के मुख के समान है। देखने में भयंकर लगते हैं। नाना प्रकार के रूप धारण कर सकते हैं। उनके निकट जाकर कहना कि मुझे यहाँ नरोप ने भेजा है।''

मर्प नरोप से पत्र लेकर कुक्कुरिपा के पास आया। यहाँ बहुत दिनों तक शिक्षा प्राप्त करता रहा। सिद्धियाँ प्राप्त करने के बाद वह पुनः नरोप के पास आया। मर्प से सारा विवरण सुनने के बाद नरोप ने उसे महामाया-रहस्य की शिक्षा दी। मर्प ने पूछा—''गुरुदेव, जब आपको महामाया-सम्बन्धी रहस्य का ज्ञान है तब आपने आचार्य कुक्कुरिपा के पास मुझे क्यों भेजा?'' नरोप ने कहा—''कुक्कुरिपा आदि परम्परा के गुरु हैं। वे अनादिकाल से मन्त्र जानते हैं।''

12 वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् मर्प ने नरोप से वापस जाने की आज्ञा माँगी। नरोप ने कहा—''इस वक्त जाओ, पर एक बार तुम्हें पुनः आना पड़ेगा।

दूसरी बार आकर वह नरोप से छह वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद वापस चला गया। इस घटना के कई वर्ष बाद पुनः वह भारत आया। उस समय नरोप का देहान्त हो गया था। इस समाचार से वह व्याकुल हो उठा। बात यह थी कि दूसरी बार आकर उसने नरोप से दूसरे शरीर में प्रवेश करने की विधि सीखी और इस विशेष योग-क्रिया का ही उसने अपने ग्रन्थों में अधिक उल्लेख किया है। इससे मनुष्य को पूर्वजन्म का अनुभव होता है। लेकिन अपने शरीर में लौट आने की शक्ति रहती है। इससे अनेक जन्मों का फल एक ही जन्म में पाया जा सकता है। यह विद्या 'काया-प्रवेश' के नाम से प्रसिद्ध है। शंकराचार्य ने इस विद्या का प्रयोग किया था।

लगातार आठ महीने तक खोज करने के बाद मर्प की मुलाकात नरोप से हुई। वे अन्य शरीर में प्रवेश कर गये थे। इस विद्या का शेष ज्ञान उन्होंने मर्प को दिया था। इसी मर्प का शिष्य योगी मिलरेप था। सिद्धि प्राप्त करने के लिए कितना कष्ट सहना पड़ता है, इसका विवरण निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जायगा—

इस विद्या को सीखने के लिए कठोर अभ्यास करना पड़ता है। इसके लिए एकान्तवास आवश्यक है। जिन स्थानों में योगी रहते हैं, उसे 'सम्स' कहा जाता है। इनके कई प्रकार होते हैं। अभ्यास साधारण से उत्तरोत्तर कठोर होते जाते हैं। इसके लिए पहले कोई लामा अपने को एक कोठरी में बन्द रखना है। निश्चित समय पर कुछ देर के लिए बाहर निकलता है। धीरे-धीरे इसमें कमी करता है और इने-गिने लोगों से मिलता है। अगर कोई मिलने आता है तो आड़ में रहकर बातें होती हैं। थोड़े दिन बाद एक व्यक्ति से बातें करता है। बाद में बिलकुल मौन हो जाना पड़ता है। फिर कोठरी की खिड़कियाँ बन्द कर दी जाती हैं। केवल एक छेद से आकाश-दर्शन किया जाता है। कुछ लोग यह भी नहीं करते। उनके लिए दिन-रात समान होता है। केवल उन्हें भोजन पहुँचा दिया जाता है। इस प्रकार के तपोमय एकान्त जीवन व्यतीत करने की अवधि निश्चित रहती है। कुछ लोग केवल कुछ दिनों, कुछ लोग कुछ महीनों, कुछ लोग कुछ सालों और कुछ लोग आजीवन के लिए ऐसा व्रत ले लेते हैं। ऐसे लोगों की कोठरियाँ एकान्त में बनाई जाती हैं वहाँ वे घोर तपस्या करते हैं। इनका पूरा समय आसन, प्राणायाम, ध्यान, जप आदि में व्यतीत होता है। इसके अलावा गुरुओं द्वारा कठोर परीक्षा ली जाती है।

यह सारी प्रक्रिया इनके लिए है जो योग सीखना चाहते हैं। इसके विपरीत भारत में ऐसे अनेक योगी हो गये हैं जिन्हें बचपन में ही ईश्वर की ओर से अलौकिक ज्ञान प्राप्त हो गया था। उन्हें साधना की इन कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा था। केवल जप-साधना से ही वे उच्चस्तर तक पहुँच गये थे।

योगियों का योग भी एक विज्ञान है, जैसा कि स्वामी विशुद्धानन्द ने कहा है। संसार में जितनी चीजें आविष्कृत हुई हैं, उनके पीछे वैज्ञानिकों ने साधनाएँ की हैं तब कहीं जाकर वह सब चीजें मानव के उपयोग में आ रही हैं। खेद की बात है कि सुभीता पाने पर भी तत्कालीन संस्कृति-मन्त्री श्री हुमायूँ कबीर ने इसकी उपेक्षा कर दी, अन्यथा इस दिशा में भारत लाभान्वित अवश्य होता। घटना इस प्रकार की है—

पण्डित शिवऔतार शर्मा जिनका जन्म बिजनौर जिले में हुआ था, वे अपनी साधना के माध्यम से दूसरों के चिन्तन की बात तुरन्त बता देते थे। यहाँ तक कि आगे क्या होनेवाला है, यह भी बता सकते थे। इस बारे में श्रद्धेय पण्डित कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने लिखा है—''नवभारत टाइम्स के सहायक सम्पादक, दिल्ली निगम के सदस्य श्री हरिदत्त शर्मा (स्व०) से मिल बैठने का अवसर मिला तो उन्होंने तरुण साधक शिवऔतार शर्मा की चर्चा करते हुए कहा—''मैंने उनके बारे में बहुत कुछ सुना था, पर मैं ऐसी बातों पर विश्वास नहीं करता। एक दिन मैं अपनी उलझन में उलझा था और निर्णय नहीं कर पा रहा था कि क्या करूँ; अचानक वे आ गये और बिना मेरे पूछे ही उन्होंने कुछ देर बाद कहा—''इस समय आप इस उलझन में हैं कि डिप्टी मेयर का पर्चा भरें या नहीं।''

''मैं भौचक, क्योंकि सचमुच मैं इसी उलझन में था। शर्माजी ने कहा—'आप यह पर्चा अवश्य भरेंगे, पर परिस्थितियाँ ऐसी करवट लेंगी कि आप उसे वापस ले लेंगे।' और सचमुच मैंने पर्चा भरा और दूसरे दिन वापस ले लिया।''

आगे प्रभाकरजी ने लिखा है—''इस संस्मरण ने मेरी दिलचस्पी बढ़ा दी। वे

भारत के महामहिम राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद से मिले तो राष्ट्रपति ने पूछा—'बताओ, मैं क्या सोच रहा हूँ'।''

''उन्होंने कहा—'आप जो कुछ सोच रहे हैं, उसे कागज पर लिखने की कृपा करें। मैं आपसे दूर बैठता हूँ।'

''राष्ट्रपति ने बहुत सावधानी बरती और वे ऊपर के कक्ष में चले गये। शिवऔतार नीचे बैठे रह गये। उनके पास दो सैनिक अधिकारी मौजूद थे। ऊपर जाकर राष्ट्रपति ने अपना चिन्तन कागज पर लिखा और फिर नीचे आ गये। शिवऔतार ने उन्हें बता दिया कि अगले तीन महीनों में क्या होनेवाला है। प्रश्न के साथ-साथ उत्तर भी बताये। इनमें एक तो राष्ट्रपति से सम्बन्धित था, दूसरा मन्त्रिमण्डल और तीसरा अन्तर्राष्ट्रीय घटना के बारे में था। सभी उत्तर सही प्रमाणित हुए।

''इस घटना के कुछ दिनों बाद शिवऔतार भारत के प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू से मिले। नेहरूजी ऐसे चमत्कारों पर विश्वास नहीं करते थे। लेकिन हर नयी बात पर दिलचस्पी लेते थे। उन्होंने पूछा—'बताओ, इस वक्त मैं क्या सोच रहा हूँ?'

''शिवऔतार ने कहा—''आप इतनी जल्दी-जल्दी और इतनी दूर की बातें सोचते हैं कि उनमें से किसी एक को पकड़ना कठिन है। अगर आप किसी विशेष बात का उत्तर चाहते हैं तो उसे कागज पर लिखें।'

''शिवऔतार द्वारा दिये उत्तर से प्रसन्न होकर उन्हें अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्य श्री हुमायूँ कबीर के पास भेजा। सारी बातें सुनने के बाद कबीर साहब ने जवाब दिया —'हम प्रमाणित विज्ञान की खोज के लिए सहायता देते हैं और यह कोई प्रमाणित विज्ञान नहीं है'।''

प्रभाकरजी ने अपने लेख में एक प्रश्न को स्थापित किया है—''योग को अभी तक साधुओं का काम समझा जाता रहा है, पर उन दिनों दिल्ली में अमेरिकी वैज्ञानिकों की सहायता से योग के जो वैज्ञानिक परीक्षण हुए, क्या वे महत्त्वपूर्ण नहीं थे? हमारे यहाँ ऐसे अनेक लोग हैं जो डॉक्टरों की उपस्थिति में अपनी नाड़ी और हृदय-गति को एक विशेष समय तक बन्द कर देते हैं और फिर चला देते हैं। डॉक्टरी का प्रमाणित विज्ञान इसे असम्भव बताता रहा है। विज्ञान के अनुसार एक आदमी कितनी देर तक बिना साँस लिये रह सकता है। इसका किताबों में लिखा उत्तर बेकार है, क्योंकि भारत में ऐसे अनेक लोग हैं जो कई-कई सप्ताह सन्दूक में बन्द होकर जमीन में गड़ जाते हैं और कई सप्ताह बाद जीवित निकलते हैं। कौन कहता है कि हम इन सबको प्रमाणित मान लें, पर हमारे देश का विज्ञान एक बार इन्हें अप्रमाणित तो कहे, जिससे नयी पीढ़ी अन्धश्रद्धा से बचे।''

इस खण्ड में इस उद्धरण को देने का अर्थ यह है कि पिछले खण्डों को पढ़कर अनेक पाठकों ने योगियों के चमत्कार पर अविश्वास प्रकट किया तो कुछ राहत पाने के उद्देश्य से मेरे यहाँ आये। मैं न तो योगी हूँ और न कभी योगियों से लाभ उठाया है, पर सभी घटनाओं पर विश्वास करता हूँ, क्योंकि जिन्हें लाभ हुआ है, उनकी जबानी घटनाओं को सुन चुका हूँ। बिना शान्ति, सन्तोष प्राप्त किये कोई अन्धभक्त नहीं होता।

—लेखक

अनुक्रमणिका



स्वामी रामानुजाचार्य

पूजा-गृह से बाहर आने पर भक्तप्रवर श्रीशैलपूर्ण को एक व्यक्ति ने श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया। श्रीशैलपूर्ण ने मुस्कराते हुए पूछा—''कहो, क्या समाचार है? बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे हो?''

आगन्तुक ने कहा—''हाँ, स्वामी। आपके लिए शुभ समाचार लेकर आया हूँ। आपकी दोनों भग्नियों को एक-एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है।''

प्रसन्न मुद्रा में श्रीशैलपूर्ण ने पूछा—''कब? क्या दोनों को एक साथ पुत्र हुए हैं?''

आगन्तुक ने कहा—''नहीं स्वामी। देवी कान्तिमती[१] को पाँच दिन पहले और महादेवी[२] को कल सायंकाल। दोनों ही पुत्र हैं।''

श्रीशैलपूर्ण ने कहा—''साधु-साधु। यह तो शुभ समाचार है। केशव[३] से कहना मैं शीघ्र ही आकर नामकरण करूँगा। अशौच पूरा हो जाय।''

निश्चित दिन श्रीशैलपूर्ण अपनी बहनों के यहाँ आये। आशीर्वाद देने के पश्चात् उन्होंने बड़ी बहन के पुत्र का नाम लक्ष्मण[४] और छोटी बहन के पुत्र का नाम गोविन्द रखा। लक्ष्मण अपने मौसेरे भाई से पाँच दिन बड़ा था।

दिन गुजरते गये। दोनों बालक शुक्ल पक्ष के चाँद की तरह बड़े होते गये। लक्ष्मण

---

१. कान्तिमती को भूमि पेराट्टी, भूदेवी या कान्तिमती कहा गया है।

२. महादेवी को पेरिया पेराट्टी, द्युतिमती और महादेवी कहा गया है।

३. केशव का पूरा नाम था—श्रीमदासुरि सर्वकेतु केशव दीक्षित।

४. लक्ष्मण अप्रैल, १०१७ ई०, शुक्ल पंचमी, गुरुवार को उत्पन्न हुए थे।

के लक्षणों को देखकर श्रीशैलपूर्ण चकित रह गये। बचपन से ही उसने अपनी प्रतिभा का परिचय देना प्रारम्भ किया था। लक्ष्मण के बाद कान्तिमती को लगातार दो कन्याएँ हुईं।

पूणाली गाँव में कांचीपूर्ण नामक एक भक्त रहता था जो जाति से शूद्र था, परन्तु उसकी इस बात की ख्याति थी कि विष्णुकांची स्थित श्रीवरदराज भगवान् उसके सामने प्रकट होते हैं, बातें करते हैं और निवेदन को स्वीकार करते हैं। इसी विश्वास के कारण आर्त-पीड़ित लोग उससे अपनी मनोकामनाएँ कहते ताकि वह श्रीवरदराज से निवेदन करे और उनका भला हो।

कांचीपूर्ण का यह नित्य का नियम था, वह अपने गाँव से पैदल ही श्रीवरदराज के मन्दिर तक पूजा के लिए आता था। मार्ग में पेरेम्बुदुर[1] गाँव आता था। इसी गाँव की मुख्य सड़क पर लक्ष्मण का घर था।

लोहा और चुम्बक एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं। एक दिन कांचीपूर्ण मन्दिर से दर्शन करके लौट रहा था। तभी उसने देखा—एक अपूर्व बालक सड़क पर टहल रहा है। कांचीपूर्ण ने अपनी दिव्यदृष्टि से यह भी देखा कि बालक के शरीर से एक प्रकार की ज्योति निकल रही है। कौन है यह देव-शिशु? अपनी ओर एक व्यक्ति को आते देख लक्ष्मण भी ठिठककर खड़ा हो गया। लक्ष्मण के हृदय में भी हलचल मच गई।

कांचीपूर्ण ने पास आकर लक्ष्मण से उसका परिचय पूछा। अपना परिचय देने के बाद लक्ष्मण ने नम्रतापूर्वक आग्रह किया कि आज आप मेरे घर चलकर भोजन कीजिए। कांचीपूर्ण बालक के आग्रह की उपेक्षा नहीं कर सके। एक अनजाने आकर्षण ने उन्हें लक्ष्मण के घर जाने के लिए बाध्य किया।

कांचीपूर्ण को आदर के साथ बैठक में बैठाने के बाद लक्ष्मण ने अपने पिता केशव से कहा—"पिताजी, इस महापुरुष को आज अपने यहाँ भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया है।"

केशव कमरे से बाहर आये। कांचीपूर्ण को देखते ही उन्होंने प्रसन्नता के साथ उनका स्वागत किया। वे कांचीपूर्ण की ख्याति से अपरिचित नहीं थे। केशव ने अपने पुत्र से कहा—"बेटा, तुमने यह अच्छा कार्य किया है। आप परम भागवत हैं। इनकी सेवा करो। इन्हें कोई कष्ट न हो।"

कांचीपूर्ण ने कहा—"आपके पुत्र ने मुझे निमन्त्रित किया है। मैं इसके आग्रह को अस्वीकार नहीं कर सका।"

केशव ने कहा—"महात्मन्, यह तो मेरे लिए सौभाग्य की बात है जो आप जैसे भागवत मेरे यहाँ अतिथि हुए हैं। आप इस बालक को आशीर्वाद दें ताकि इसका मन ईश्वर के प्रति लगा रहे।"

भोजन के पश्चात् कांचीपूर्ण आराम कर रहे थे तभी लक्ष्मण उनका पैर दबाने के

---

१. प्रचलित नाम श्रीपेरुमबन्दर था, पर संस्कृत में इस गाँव का नाम श्रीमहाभूतपुरी कहा गया है।

लिए आया। उसके उद्देश्य को समझते ही कांचीपूर्ण ने कहा—"नहीं, बेटा। मैं शूद्र हूँ, तुम ब्राह्मण-पुत्र हो। ऐसा नहीं करना चाहिए। पैर दबाना मेरा काम है।"

लक्ष्मण ने कहा—"शास्त्रों में तो यह लिखा है कि प्रत्येक हरिभक्त ब्राह्मण होता है। तिरुपात्र आलवार चाण्डाल होते हुए भी ब्राह्मणों के लिए पूज्य बन गये थे। आप भी हरिभक्त हैं, फिर आपत्ति क्यों?"

लक्ष्मण की बातें सुनकर कांचीपूर्ण चमत्कृत हो उठे। इतनी कम उम्र का बालक इतनी ऊँचाई की बात कैसे कर रहा है? अभी से शास्त्र की बातें कर रहा है तो आगे चलकर तो प्रभूत शक्तिशाली विद्वान् बनेगा। बालक के प्रश्न का उत्तर कांचीपूर्ण नहीं दे सके।

* * *

धीरे-धीरे लक्ष्मण बचपन की ड्योढ़ी पारकर किशोर बन गया। जब वह सोलह वर्ष का हुआ तब उसके पिता ने उसका विवाह कर दिया। इस विवाह के कई वर्ष बाद केशव का निधन हो गया। लक्ष्मण बचपन से अब तक सारी शिक्षा पिता से प्राप्त करता रहा। गाँव में अब ऐसा कोई पण्डित नहीं था जिसके निकट जाकर लक्ष्मण आगे की शिक्षा ले सके। पता लगाने पर बुजुर्गों ने बताया कि कांचीपुरम् में अद्वैतवादी यादव प्रकाश नामक एक पण्डित हैं जो अपनी चटशाला में विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं, वे ही एक ऐसे विद्वान् हैं जो तुम्हें शिक्षा दे सकते हैं।

लक्ष्मण के ज्ञान की प्यास ने निश्चय किया कि वह यादव प्रकाश के निकट जाकर अध्ययन करेगा। माँ से अनुमति लेकर वह यादव प्रकाश के यहाँ चला आया। यादव प्रकाश न केवल पण्डित थे, बल्कि संन्यासी और तान्त्रिक थे। अद्वैतवादी भी थे।

लक्ष्मण के ज्ञान की परीक्षा लेने के बाद यादव ने उसे विद्यार्थी के रूप में स्वीकार कर लिया। इधर पुत्र का अभाव माँ को पीड़ा देने लगा। पुत्र-वियोग जब सहन नहीं हो सका तब वे अपनी पुत्रवधू को लेकर कांचीपुर चली आयीं। आश्रम से कुछ दूर एक मकान में आकर रहने लगीं।

दीदी कांचीपुर चली गई है और लक्ष्मण भी वहीं पढ़ रहा है, यह समाचार पाते ही महादेवी ने अपने पुत्र को वहीं पढ़ने के लिए भेज दिया ताकि दोनों भाई एक साथ रहें। गोविन्द अकेलापन महसूस न करे। दोनों भाई यादव प्रकाश के आश्रम में पढ़ते रहे।

कुछ ही दिनों के अध्ययन के पश्चात् लक्ष्मण ने अनुभव किया कि गुरुदेव भले ही विद्वान् हों, पर उनके विचार असंगत हैं। उनका ज्ञान द्वेषपूर्ण है। वे जो कुछ कहते हैं, सारा का सारा रुचि-हीन है। वास्तव में यहाँ दो संस्कृतियों की टक्कर थी। लक्ष्मण का परिवार वैष्णव था। उसी संस्कृति में उसका लालन-पालन हुआ था। इधर यादव प्रकाश शंकराचार्य के अद्वैतवाद के समर्थक होने पर भी कर्मकाण्ड-शून्य थे। उनके विचारों में ज्ञान की अपेक्षा पंकिलता अधिक थी। इसी कारण लक्ष्मण के मन में निरन्तर असन्तोष बढ़ता गया।

एक बार छान्दोग्य उपनिषद् में आये शब्द 'कप्यासं' की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा—"सूर्यमण्डलस्थ पुरुष की आँखें किस प्रकार लाल हैं? जैसे बन्दर का नितम्ब।"

इस व्याख्या को सुनकर लक्ष्मण को बड़ा धक्का पहुँचा। भगवान् की आँखों की तुलना बन्दर के चूतड़ से की जा रही है? ऐसी उपमा वेदों में कदापि नहीं हो सकती। उस समय लक्ष्मण यादव प्रकाश की पीठ पर तेल मालिश कर रहा था। दु:ख के कारण उसकी आँखों में आँसू ढुलक पड़े।

पीठ पर पानी गिरने के कारण यादव ने पीछे मुड़कर देखा तो लक्ष्मण रो रहा था। कारण पूछने पर लक्ष्मण ने अपनी शंका प्रकट की। यादव ने कहा—"इसमें मैं क्या कर सकता हूँ। आचार्य शंकर ने यही लिखा है।"

लक्ष्मण को यह बात मालूम थी कि गुरुजी अपनी बात को सत्य प्रमाणित करने के लिए असत्य का सहारा लेते हैं। उसने कहा—"गुरुदेव, इस हीन उपमा को हम बदल भी सकते हैं। 'कप्यासं' शब्द 'कं' पद का अर्थ जल को और 'पिबति' का अर्थ पान करना, अर्थात् कपि का अर्थ सूर्य होगा। 'आस' अशं आस् धातुरूप है, इसका अर्थ हुआ विकसित। फलतः सम्पूर्ण शब्द का अर्थ हुआ—सूर्य के द्वारा जो विकसित होता है अर्थात् पद्म। इस प्रकार आँखों की लालिमा की उपमा पद्म सरीखे लाल से की जा सकती है।"

इस विद्वत्तापूर्ण व्याख्या को सुनकर यादव चौंक उठे। उनका ही शिष्य इतनी ऊँची कल्पना कर सकता है, इसका उन्हें स्वप्न में भी विश्वास नहीं था। ऐसे तीक्ष्णाधि बालक को कब्जे में लाना कठिन है। ऊपरी मन से उन्होंने लक्ष्मण की प्रशंसा की, पर भीतर से कुढ़ते रहे। इसी बीच एक और घटना हो गई।

तान्त्रिक के रूप में यादव प्रकाश की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। मन्त्र के माध्यम से वे भूत-प्रेत-बाधा दूर करते थे। उन दिनों कांचीपुर की राजकुमारी को ब्रह्मदैत्य ने पकड़ रखा था। काफी प्रयत्न करने पर राजकुमारी उसके पंजे से मुक्त न हुईं। राजा ने यादव प्रकाश को अपने महल में बुलवाया। वे वहाँ जाकर अपने मन्त्रों का प्रयोग करने लगे।

उनके मन्त्रों से चिढ़कर राजकुमारी के भीतर के ब्रह्मदैत्य ने कहा—"हे पण्डित, तेरा मन्त्र-तन्त्र बेकार है। तू मुझसे कमजोर है। मेरा कुछ नहीं कर सकता। तुझे यही नहीं मालूम कि पूर्व जन्म में तू क्या था?"

इस अपमान से चिढ़कर यादव ने पूछा—"पूर्व जन्म में हम दोनों क्या थे? जरा बताओ तो सुनें।"

ब्रह्मदैत्य ने कहा—"पूर्व जन्म में तुम अजगर थे। एक ब्राह्मण का उच्छिष्ट खाने के कारण इस जन्म में पण्डित हुए हो। मैं ब्राह्मण था, पर यज्ञ करते समय प्रमादवश भूल हो गई, इसलिए ब्रह्मदैत्य बना।"

यादव ने चिढ़कर पूछा—"अब यह बताओ कि राजकुमारी को कैसे छोड़ोगे?"

ब्रह्मदैत्य ने कहा—"तुम्हारे तन्त्र-मन्त्र का मुझ पर कोई असर नहीं होगा। अगर तुम्हारा शिष्य लक्ष्मण राजकुमारी के मस्तक पर कृपापूर्वक अपना चरण रख दे तो मैं चला जाऊँगा। अन्यथा मैं कदापि नहीं जाऊँगा।"

यादव के आदेश पर लक्ष्मण ने राजकुमारी के मस्तक पर पैर रखा। ब्रह्मदैत्य चला गया। राजा ने प्रसन्न होकर लक्ष्मण को स्वर्ण-मुद्राएँ दीं। उक्त मुद्राएँ लक्ष्मण ने गुरुदेव को समर्पित कर दीं। इस अपमानजनक घटना से यादव मन ही मन लक्ष्मण पर कुपित हो उठे। भरी सभा में ब्रह्मदैत्य से अपमानित होने की इस घटना को वे भूल नहीं सके।

इसी बीच अध्ययन-काल में एक और घटना हो गई। एक के बाद एक निरन्तर होनेवाली घटनाओं के कारण यादव प्रकाश लक्ष्मण से इतने नाराज हुए कि उन्होंने उसकी हत्या करने का संकल्प कर लिया। कुछ दिनों तक वे नाना प्रकार के उपाय सोचते रहे। इसके बाद एक दिन उन्होंने घोषणा की—''हम सबको वाराणसी जाकर गंगा-स्नान करना चाहिए। वहाँ विश्वविश्रुत विद्वान् रहते हैं, उनसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।''

इस यात्रा के पीछे क्या रहस्य है, इसका अनुमान कोई नहीं लगा सका। एक दिन वे अपनी शिष्य-मण्डली के साथ रवाना हुए। महीनों चलने के बाद सभी विन्ध्याचल के गोण्डारण्य में आये। यादव प्रकाश ने देखा—यहाँ कहीं भी मानव-बस्ती नहीं है। चारों ओर घनघोर जंगल और हिंस्रक पशु हैं। यही उपयुक्त स्थान है। यहाँ हत्या कर देने के बाद यह प्रचारित किया जा सकता है कि लक्ष्मण को हिंस्रक पशुओं ने मार डाला था। अपनी इच्छा को उन्होंने कतिपय शिष्यों के सामने प्रकट किया। इसके बाद वे अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

इस यात्रा में लक्ष्मण का मौसेरा भाई गोविन्द भी था। उसे इस षड्यन्त्र का पता चल गया। एक दिन सबेरे जब लक्ष्मण जंगल की ओर प्रात:क्रिया करने जा रहा था तब उसने यादव के षड्यन्त्र की सूचना दी और कहा कि तुम अब वापस मत आना। जितनी जल्दी हो सके, इस स्थान से दूर भाग जाओ।

लक्ष्मण को यह जानकर भय और कष्ट हुआ कि गुरुदेव उसकी हत्या करने वाले हैं। जी-जान से वह भाग गया। दौड़ते-दौड़ते जब वह थक गया तब एक वृक्ष के नीचे बैठकर सोचने लगा कि अब कांचीपुर वापस जाना उचित है। उसे इतना ज्ञान था कि वह दक्षिण की ओर से आया है। इतना सोचते-सोचते सहसा वह बेहोश हो गया।

काफी देर के बाद आदमी की आवाज सुनने पर उसकी आँखें खुलीं। उसने देखा सामने एक बहेलिया दम्पती खड़े थे। इस सुनसान स्थान में आदमी को देखकर उसके हृदय में आशा का संचार हुआ। तभी उस पुरुष ने पूछा—''क्यों भाई, कौन हो तुम? इस जंगल में अकेले क्यों हो?''

लक्ष्मण ने कहा—''मैं विद्यार्थी हूँ। अपने गुरु के साथ गंगा-स्नान के लिए जा रहा था। मार्ग में ज्ञात हुआ कि वे मेरी हत्या करना चाहते हैं। इस बात को सुनते ही मैं भाग खड़ा हुआ। मेरा घर कांचीपुर है। वहीं जाना चाहता हूँ।''

बहेलिये ने कहा—''घबराने की बात नहीं है। हम भी उधर ही जा रहे हैं। मेरे साथ आओ।''

बहेलिया दम्पती के साथ चलते-चलते अँधेरा हो गया। सभी नदी किनारे सो गये। सबेरे जागने पर बहेलिये ने कहा—''मुझे प्यास लगी है। कहीं से पानी ला दोगे?''

बहेलिया से लोटा लेकर लक्ष्मण पानी की तलाश में चल पड़ा। पता नहीं, वह नदी कहाँ गायब हो गई जिसे कल देखा था। थोड़ी दूर आने पर उसने देखा—एक कुएँ से लोग पानी भर रहे हैं। कुएँ के पास खड़े लोग तथा वह जगह कुछ परिचित-सी लगी। लेकिन ठीक से समझ नहीं सका। पानी लेकर जब वह लौटा तो देखा—बहेलिया दम्पती वहाँ मौजूद नहीं है। काफी देर तक इधर-उधर देखने पर वे दिखाई नहीं दिये।

पुनः कुएँ के पास आकर उसने पानी भरनेवालों से पूछा—"कांचीपुर यहाँ से कितनी दूर है?"

उसकी बातें सुनकर सभी लोग हँस पड़े। एक व्यक्ति ने कहा—"क्या तुम इस स्थान को नहीं पहचान रहे हो? वरदराज मन्दिर का शिखर तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा है?"

यह सुनकर वह अवाक् रह गया। आखिर रातभर में वह कांचीपुर कैसे पहुँच गया? क्या बहेलिये के रूप में भगवान् उसे यहाँ तक लाकर छोड़ गये हैं? तभी वे गायब हो गये। मैं उन्हें पानी तक नहीं पिला सका। यह सब सोचते-सोचते वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

फिर तीन-चार परिचित लोग उसे उठाकर घर पहुँचा आये। पुत्र की यह हालत देखकर माँ व्याकुल हो उठी। देर तक हवा करने के बाद वह उठ बैठा और कहा—"अब ठीक हूँ, माँ। घबराने की बात नहीं है। मैं अकेला वापस आया हूँ। मेरे साथ कोई नहीं आया।"

रात को माँ के बारम्बार आग्रह करने पर उसने विस्तार से सारी घटना सुनाई। पुत्र के इस संकट को सुनकर माँ भय से सिहर उठी और यादव को कोसने लगी।

दूसरे दिन कान्तिमती अपने साथ भोग की सामग्री लेकर वरदराज मन्दिर गई। साथ में लक्ष्मण, उसकी पत्नी और मौसी थी। मन्दिर से वापस आने पर लक्ष्मण ने देखा कि दरवाजे के समीप कांचीपूर्ण उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कांचीपूर्ण को भीतर ले जाकर उन्हें भी अपनी सारी कहानी लक्ष्मण ने सुनाई।

कांचीपूर्ण ने कहा—"यह भगवान् वरदराज की कृपा थी जो जीवित वापस आ गये। सच तो यह है कि बहेलिये के रूप में भगवान् तुझे यहाँ तक पहुँचा गये थे। अब आगे से कुएँ के जल से उन्हें नहलाया करना। इससे तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जायगी।"

*　　*　　*

एक अर्से के बाद यादव प्रकाश यात्रा से वापस लौटे तो उन्होंने लक्ष्मण के घर जाकर यह समाचार देना उचित समझा कि उसे जंगली जानवर खा गये हैं। छोटा भाई गोविन्द वापस आते समय कालहस्ती में रुक गया। वह अब कांचीपुर वापस नहीं आयेगा।

लक्ष्मण को जब उन्होंने जीवित देखा तब उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उन्हें इस बात की आशंका हुई कि कहीं इसे मेरे षड्यन्त्र का पता न चल गया हो, पर दूसरे ही क्षण सोचा—भला इसे कैसे पता चला होगा? प्रकट रूप से उन्होंने कहा—"अरे वाह! तुम घर वापस आ गये हो? तुम्हें देखकर मुझे बेहद खुशी हो रही है।

एकाएक तुम्हारे गायब हो जाने पर हम लोग काफी परेशान हुए थे। बाद में सोचा कि शायद जंगली जानवरों ने तुम्हें अपना शिकार बनाया हो। भगवान् करे तुम लाख वर्ष जीवित रहो।''

लक्ष्मण भी झूठ बोल गया—''उस दिन सबेरे प्रात:क्रिया से वापस आते समय रास्ता भूल गया। बाद में मुझे एक बहेलिया दम्पती यहाँ पहुँचा गया।''

लक्ष्मण की बातों से यादव को सन्तोष हो गया कि इसे मेरे षड्यन्त्र का कुछ पता नहीं है। वे आशीर्वाद देकर चले गये।

* * *

उन दिनों श्रीरंगम में यामुनाचार्य[1] नामक एक परम वैष्णव रहते थे। वे समग्र वैष्णव-सम्प्रदाय के गुरु और एकमात्र नेता थे। लक्ष्मण के मामा श्रीशैलपूर्ण इनके शिष्यों में थे। स्वयं लक्ष्मण यामुनाचार्य की पौत्री के पुत्र थे। गरीब परिवार में जन्म लेने पर भी अपनी प्रतिभा तथा ज्ञान के कारण राजदरबार से सम्मानित हो चुके थे। इधर वार्द्धक्य तथा निरन्तर अस्वस्थ रहने के कारण उन्हें इस बात की चिन्ता सताने लगी थी कि मेरे बाद इस मठ का कार्यभार कौन सम्हालेगा? अपने शिष्यों में कोई भी योग्य नहीं था। ठीक इन्हीं दिनों लक्ष्मण की विद्वत्ता और अलौकिक प्रतिभा का परिचय उन्हें प्राप्त हुआ। उसे परखने की तीव्र लालसा मन में उत्पन्न हुई। अपनी योजना किसी को न बताकर वे वरदराज का दर्शन करने जा रहा हूँ, कहकर यात्रा पर निकल पड़े।

एक दिन कांचीपूर्ण के साथ वे वरदराज का दर्शन कर वापस आ रहे थे तभी कांचीपूर्ण ने इशारे से बताया कि यही वह युवक है। यामुनाचार्य ने देखा कि लक्ष्मण के कन्धे पर हाथ रखे यादव प्रकाश आ रहा है। यादव प्रकाश के चरित्र से यामुनाचार्य भलीभाँति परिचित थे। इस समय लक्ष्मण से बात करना उन्होंने उचित नहीं समझा। लेकिन प्रथम दर्शन से ही वे लक्ष्मण के प्रति आकृष्ट हो गये। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि इस युवक को यादव प्रकाश के चंगुल से छुड़ाकर वैष्णव-प्रभाव में लाऊँगा। यही सब सोचते हुए वे श्रीरंगम वापस लौट गये।

इस घटना के बाद लक्ष्मण के जीवन में दो घटनाएँ हुईं। एक ओर मातृवियोग हुआ, दूसरी ओर यादव प्रकाश से विवाद होने के कारण उनसे अलग हो गया। यह समाचार श्रीरंगम तक पहुँच गया।

यामुनाचार्य ने तुरन्त अपने शिष्य महापूर्ण को बुलाकर कहा—''जितनी जल्दी हो सके, तुम कांचीपुर जाकर लक्ष्मण को यहाँ ले आओ। लेकिन एक बात याद रखना कि दबाव डालकर या जबरन मत लाना।''

गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर उसी दिन महापूर्ण कांचीपुर के लिए रवाना हो गये। यहाँ आकर वे कांचीपूर्ण के घर ठहरे। लक्ष्मण के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने

---

१. वैष्णव-सिद्धान्तों को निश्चित रूप देनेवाले नाथमुनि के पुत्र। इनका असली नाम आलवंदार था।

के बाद उन्होंने निश्चय किया कि मन्दिर से वापस आते समय मार्ग में लक्ष्मण से साक्षात्कार करूँगा।

इस योजना के अनुसार महापूर्ण मन्दिर से निकलकर लक्ष्मण के पीछे-पीछे कुछ दूरी रखकर चलने लगे। जब बिलकुल पास आ गये तब वे यामुनाचार्य-रचित भगवद्भक्तिपूर्ण श्लोकों का पाठ करने लगे। इन श्लोकों को सुनते ही लक्ष्मण के कदम रुक गये। पलटकर उसने पूछा—"महाशय, आप जिन श्लोकों का पाठ कर रहे हैं, उसके रचयिता कौन हैं?"

महापूर्ण की अभिलाषा पूर्ण हुई। वे बातचीत करने का मौका ढूँढ़ रहे थे। विनयपूर्वक उन्होंने उत्तर दिया—"ये श्लोक महामुनि यामुनाचार्य की रचनाएँ हैं। वे मेरे गुरु हैं।"

लक्ष्मण ने कहा—"काश, ऐसे महामानव का दर्शन कर पाता।"

महापूर्ण ने उत्साह के साथ कहा—"क्या आप उनका दर्शन करना चाहते हैं? वे स्वयं आपसे मिलने को उत्सुक हैं। अगर आप प्रस्तुत हों तो मैं उनके निकट आपको ले चल सकता हूँ।"

लक्ष्मण ने तुरन्त कहा—"आप कुछ देर प्रतीक्षा कीजिए। मैं अभी आता हूँ।"

चार दिन पैदल चलने के बाद जब दोनों श्रीरंगम आये तो देखा—चारों ओर से अपार जनसमूह कावेरी-तट की ओर जा रहा है। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि यामुनाचार्य परमपद प्राप्त कर चुके हैं। यह समाचार सुनते ही लक्ष्मण कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। महापूर्ण फफककर रोने लगे। फिर भी अपने को संयत करते हुए वे लक्ष्मण की सेवा करने लगे।

कुछ देर बाद नदी किनारे आकर दोनों व्यक्तियों ने यामुनाचार्य के पार्थिव-शरीर के दर्शन किये। आसपास सहस्रों लोग अश्रुपात कर रहे थे। लक्ष्मण को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यामुनाचार्य के दाहिने हाथ की तीन उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं। निर्जीव शरीर में यह स्थिति नहीं रहती।

पास खड़े एक व्यक्ति से उसने पूछा—"क्या मुनिवर की उँगलियाँ इस तरह मुड़ी रहीं?"

एक शिष्य ने कहा—"जी नहीं। यह स्वाभाविक स्थिति नहीं है। शरीर छोड़ने के पहले गुरुवर अश्रुपात कर रहे थे। जब हम लोगों ने उनके रोने का कारण पूछा तब उन्होंने एक-एक कर तीन बातें बताईं। उसी समय से ये उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं। अन्त में यह जरूर कहा था कि वैष्णव-सम्प्रदाय के होनेवाले नेता लक्ष्मण को बिना देखे मुझे शरीर छोड़ना पड़ रहा है। इतना कहने के साथ ही उन्होंने शरीर त्याग दिया। उसी समय से ये उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं।"

यामुनाचार्य ने अन्तिम समय उसे स्मरण किया था, इस बात को सुनकर लक्ष्मण का हृदय हाहाकार कर उठा। हे मुनिवर, आप एक दिन और जीवित रहते तो मैं आपका

दर्शन तो कर लेता। अपने आँसुओं को पोंछते हुए लक्ष्मण ने पूछा—''मुनिवर की इच्छाएँ क्या थीं?''

शिष्य ने उन इच्छाओं का जिक्र किया। सारी बातें सुनने के बाद लक्ष्मण ने कहा —''मैं कांचीपुर-निवासी लक्ष्मण हूँ। मुनिवर ने जीवन के अन्तिमकाल में जो इच्छाएँ प्रकट की थीं, उनको पूर्ण करूँगा। मुनिवर परमपद प्राप्त करने के पूर्व मुझे और मैं उन्हें देखना चाहता था, पर यह नहीं हो सका।''

सभी लोगों का ध्यान लक्ष्मण की ओर गया। उसने ऊँचे स्वर में कहा—''मैं आप सभी के सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं वैष्णव-मत का पालन करते हुए सर्वसाधारण के पंच-संस्कारयुक्त द्राविड़ वेद विशारद तथा नारायण का अनुग्रह प्राप्त करते हुए रक्षा करूँगा।''

इतना कहना था कि यामुनाचार्य के पार्थिव शरीर के हाथ की मुड़ी हुई उँगलियों में से एक खुल गई। आगे लक्ष्मण ने कहा—''मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जनसुरक्षा के लिए मानव-कल्याण, तत्त्वज्ञानसम्पन्न ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखूँगा।''

दूसरी उँगली खुल गई। पुनः लक्ष्मण ने कहा—''मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मुनिश्रेष्ठ पराशर और शठकोप के नाम दो महापुरुषों का नामकरण करूँगा जिन्होंने पुराण तथा द्राविड़ वेद लिखा था।''

इस घोषणा के साथ ही तीसरी और अन्तिम उँगली खुल गई। शिष्य और भक्तों को अपार विस्मय हुआ। तभी एक वरिष्ठ शिष्य ने कहा—''प्रभु, आपके प्रति गुरुदेव की बड़ी आस्था थी। इधर कई दिनों से बराबर आपको स्मरण कर रहे थे। उन्होंने हमें यह आदेश दिया है कि आपके शरण में हम लोग रहें। आप हमारे कर्णधार बनकर हमें मार्ग दिखायें।''

सभी लोगों को प्रणाम करते हुए लक्ष्मण ने कहा—''मैं आप लोगों की भरपूर सेवा कर सकूँगा, ऐसा विश्वास नहीं है, पर प्रतिज्ञा करता हूँ कि पूरी शक्ति और निष्ठा के साथ मैं अपना कर्त्तव्य अवश्य करूँगा। शायद मैं बड़ा अभागा हूँ, इसीलिए महामुनि का दर्शन नहीं कर सका।''

कहते-कहते वह हृदयविदारक ढंग से रो पड़ा। थोड़ी देर बाद उसके चेहरे पर परिवर्तन हुआ और बिना कुछ कहे वह वापस चल पड़ा। उसके इस व्यवहार पर सभी चकित रह गये। कोई कुछ समझ नहीं सका। सहसा बीच रास्ते पर रुककर उसने कहा—''मैं दर्शन नहीं करूँगा। जिस निष्ठुर देवता ने महामुनि के दर्शन से मुझे वंचित कर दिया, उनके दरवाजे पर नहीं जाऊँगा।''

लक्ष्मण का यह क्रोध श्रीरंगनाथ के प्रति था। घर के पास आकर वे सीधे कांचीपूर्ण के यहाँ गये। उनसे सारा समाचार कहते-कहते वह रोने लगे और कांचीपूर्ण भी रोने लगे। बाद में कांचीपूर्ण ने यामुनाचार्य के बारे में अनेक महत्त्वपूर्ण चर्चाएँ कीं।

कुछ दिनों बाद लक्ष्मण ने सोचा कि यहाँ कांचीपूर्ण के समान कोई श्रेष्ठ भक्त नहीं है। भगवान् वरदराज से वे बातें करते हैं। ऐसे योग्य व्यक्ति से दीक्षा लेनी चाहिए। लेकिन जब कभी उनसे इस बारे में वह चर्चा करता तब वे मृदु ढंग से टाल देते थे।

आखिर एक दिन वह बहुत उतावला होकर बोल उठा—''अब मैं कोई बहाना सुनना नहीं चाहता। आप ही मुझे भक्ति-मार्ग दिखा सकते हैं। आपसे उत्तम मेरा कोई गुरु नहीं हो सकता।''

कांचीपूर्ण ने कहा—''बेटा लक्ष्मण, मेरी बात मानो। मैं शूद्र हूँ। मैं अगर तुम्हें दीक्षा दूँगा तो यह धर्मविरुद्ध होगा। यह कार्य मुझसे नहीं हो सकता। मैं आज भगवान् वरदराज से इस बारे में बातचीत करूँगा। वे जैसी आज्ञा देंगे, वैसा किया जायगा।''

लक्ष्मण ने कहा—''ठीक है। आपके साथ मैं भी चलूँगा। वरदराज जो भी आदेश देंगे, उसका पालन करूँगा।''

इसके बाद दोनों मन्दिर में आये। सन्ध्या-आरती के बाद पुजारी अपने घर चला गया। धीरे-धीरे चारों ओर सन्नाटा छा गया। निर्जन मन्दिर में दोनों चुपचाप बैठे रहे। काफी देर बाद सहसा कहीं से आवाज आयी—''बेटा कांचीपूर्ण, लगता है, आज तुम कुछ जानने आये हो। बोलो, क्या चाहते हो?''

कांचीपूर्ण ने कहा—''भगवन्, आप तो अन्तर्यामी हैं। सब कुछ जानते हैं। आपसे क्या छिपाऊँ? मैं इस बालक लक्ष्मण के लिए कृपा माँगने आया हूँ।''

वरदराज ने कहा—''मैं सब कुछ जानता हूँ। लक्ष्मण मेरा भक्त है। यह तो वास्तव में रामानुज है। इससे कह दो कि मैं ही जगत् का परमब्रह्म हूँ। जीव और ईश्वर का भेद सत्य है। मुमुक्षुओं के लिए संन्यास ही एकमात्र मार्ग है। भक्ति के लिए मेरी स्मृति की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे जो भक्त हैं, उनके शरीर त्यागने पर मैं उन्हें परमगति देता हूँ। यह महात्मा महापूर्ण से दीक्षा लेकर अपनी कामना पूर्ण कर ले।''

वरदराज की वाणी बन्द हो गई। भगवान् के इस आशीर्वाद को सुनकर लक्ष्मण पुलकित हो उठा। उन्होंने उसके गुरु का नाम भी बता दिया।

कांचीपूर्ण ने उल्लसित होकर कहा—''बेटा, आज तुझे जो मिला, वह अब तक किसी को नहीं मिला है। भगवान् ने तेरा नाम 'रामानुज' रखा है। तुम धन्य हो। भगवान् ने तुम्हारे गुरु का नाम भी बता दिया। अब शीघ्र उनसे दीक्षा ले लो।''

आज बहुत दिनों बाद लक्ष्मण की मनोकामना पूर्ण हुई।

* * *

इधर यामुनाचार्य के निधन के बाद से श्रीरंगम-मठ की स्थिति खराब होने लगी थी। आलवारों का विश्वास था कि यामुनाचार्य द्वारा मनोनीत लक्ष्मणजी आचार्य-पद सम्हालेंगे, पर वे समाधिवाले दिन जो गायब हुए, आज तक कोई समाचार नहीं भेजा।

एक दिन वरिष्ठ शिष्यों ने निश्चय किया कि चाहे जैसे भी हो, लक्ष्मणजी को यहाँ बुलाकर उन्हें आचार्य-पद पर अभिषिक्त किया जाय वरना वैष्णव-धर्म की बड़ी क्षति होगी। इस कार्य के लिए उन लोगों ने महापूर्ण से आग्रह किया। सभी इस बात को जानते थे कि यामुनाचार्य ने ही लक्ष्मणजी को लिवाने के लिए महापूर्ण को भेजा था।

गुरु-भाइयों के आग्रह पर महापूर्ण कांचीपुर के लिए रवाना हुए। मदुराकान्तम

आकर वे विष्णु मन्दिर के सामने स्थित तालाब के किनारे विश्राम कर रहे थे। ठीक इसी समय उन्होंने लक्ष्मण को अपनी ओर आते देखा। वह तेजी से आकर महापूर्ण के पैरों को पकड़कर बैठ गया।

हाँफते हुए लक्ष्मण ने कहा—''महात्मन्, आप मेरे गुरु हैं। मैं आपके पास आ रहा था। अब आप मुझे अपना लीजिए।''

महापूर्ण ने कहा—''इधर मैं तुम्हें अपने साथ श्रीरंगम ले जाने के लिए आ रहा था। तुम मेरे साथ श्रीरंगम चलो। जो कुछ करना है, वहीं किया जायगा।''

लक्ष्मण ने कहा—''प्रभो, मैं उतने दिनों तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। बिना विलम्ब किये मुझे तत्काल दीक्षा दीजिए।''

लक्ष्मण को गले से लगाते हुए महापूर्ण ने कहा—''जाओ वत्स, स्नान कर आओ। भगवान् रंगनाथ की कृपा से तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।''

लक्ष्मण जब स्नान करके आया तब वहीं महापूर्ण ने दीक्षा दी। इसके बाद दोनों कांचीपुर चले आये। यहाँ आकर महापूर्ण लक्ष्मण के घर रहने लगे। यामुनाचार्य के शिष्यों के परामर्श के अनुसार महापूर्ण लक्ष्मण को 'तमिल प्रबन्ध' पढ़ाने लगे। ज्ञान का रस मिलने के कारण लक्ष्मण अध्ययन में तल्लीन हो गये। फलतः घर की आर्थिक स्थिति खराब होती गई।

कई बार पत्नी जमाम्बा[1] ने दबी जबान से शिकायत भी की, पर लक्ष्मण ने इधर ध्यान नहीं दिया। अपनी उपेक्षा होते देख जमाम्बा ने उग्र रूप धारण कर लिया। परिवार में बढ़ते कलह को देखकर एक दिन महापूर्ण चुपचाप श्रीरंगम चले गये।

घर वापस आने पर जब गुरुदेव दिखाई नहीं दिये तब लक्ष्मण ने सोचा—जमाम्बा के किसी अपराध के कारण गुरुदेव चले गये हैं। गुरु का अपमान लक्ष्मण को पीड़ा देने लगा। अन्त में एक दिन ससुराल-यात्रा करने का बहाना कर लक्ष्मण पत्नी को उसके पीहर में छोड़ आया। साधना-मार्ग में वह एक काँटा थी। इसके बाद वरदराज मन्दिर में जाकर साष्टांग प्रणाम करने के बाद उसने कहा—''भगवन्, अब मैं समस्त बन्धनों से मुक्त हो गया। आज से आपका सेवक बन गया।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद अपने मित्रों से परामर्श कर उसने संन्यास ग्रहण कर लिया। यह समाचार सम्पूर्ण कांचीपुर में फैल गया। कांचीपूर्ण इस समारोह में उपस्थित थे।

उन्होंने कहा—''अब आज से तुम भगवान् वरदराज द्वारा दिये गये नाम से जाने जाओगे। मैं तुम्हें अपनी ओर से 'यतिराज' की उपाधि देता हूँ। 'यतिराज रामानुज', तुम धन्य हो।''

* * *

संन्यास-ग्रहण करते ही रामानुज श्रीरंगम आ गये। यहाँ आकर मन्दिर की पूजा, मठ की व्यवस्था और शिष्यों को भागवत-धर्म का उपदेश देने लगे। इसी

---

१. कुछ लोग रक्षाम्बा भी कहते हैं।

बीच उन्हें अपने भाई गोविन्द की याद आई। उसे बुलाकर अपने मामा शैलपूर्ण से दीक्षा दिला दी।

मामा शैलपूर्ण ने एक दिन रामानुज से कहा—"वत्स, यहाँ तुमने द्वैतवाद का अध्ययन काफी कर लिया। गुरुदेव के सभी मूर्धन्य शिष्यों से भी ज्ञान प्राप्त कर लिया। मेरा अनुरोध है कि एक बार गुरुदेव (यामुनाचार्य) के प्रमुख शिष्य गोष्ठीपूर्ण से 'स-रहस्य' मन्त्र की दीक्षा ले लो। उनके जैसा ज्ञानी पुरुष इस अंचल में कोई नहीं है।"

मामाजी की सलाह पर रामानुज तिरुकोट्टी गये। गोष्ठीपूर्ण इनके आने का आशय समझकर इन्हें वापस कर दिया। इससे वे निरुत्साहित नहीं हुए। वे थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर पर जाते रहे और गोष्ठीपूर्ण हर बार रामानुज को वापस कर देते रहे। इस प्रकार सत्रह बार वापस आने के बाद जब वे अठारहवीं बार गये तब गोष्ठीपूर्ण ने इन्हें 'स-रहस्य' मन्त्र में दीक्षित कराया। इस मन्त्र को ग्रहण करते ही रामानुज में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। सारा कष्ट, संशय, अज्ञान पलभर में दूर हो गया और उनमें अतीन्द्रिय-शक्ति जागृत हो गई। इसके बाद वे गोष्ठीपूर्ण से बिदा लेकर वापस चल पड़े।

मार्ग में नारायण मन्दिर के पास आते ही उनमें सहसा नवचेतना जागृत हो गई। मन्दिर के पास खड़े होकर वे आने-जानेवालों से कहने लगे—"आप लोगों को आज मैं अमूल्य रत्न दूँगा। मेरा आग्रह है कि इस क्षेत्र में जितने लोग हैं, उन सभी को सूचना दें कि वे मन्दिर के पास आ जायँ।"

अमूल्य रत्न पाने की आशा से अपार भीड़ इकट्ठी हो गई। मन्दिर के एक ऊँचे बुर्ज पर खड़े होकर रामानुज कहने लगे—"उपस्थित भाइयों तथा बहनों, अगर आप जीवन के सारे कष्टों से परित्राण पाना चाहते हैं, अपने भीतर आनन्द पाना चाहते हैं तो मेरे साथ इस मन्त्र को दुहराएँ।"

भीड़ ने एक साथ कहा—"उस मन्त्र को जल्द बताइये।"

रामानुज उच्चस्वर में कहने लगे—"ॐ नमो नारायणाय नमः। ॐ नमो नारायणाय नमः। ॐ नमो नारायणाय नमः।"

उपस्थित सभी लोगों ने तीन बार इसे दुहराया और तुरन्त उन्होंने अनुभव किया कि उनके भाव में परिवर्तन हो गया।

यह समाचार तुरंत गोष्ठीपूर्ण के पास पहुँचा और वे आगबबूला हो उठे। रामानुज को बुलवाकर उन्होंने कहा—"अरे नराधम, तेरे जैसे व्यक्ति को महामन्त्र देकर मैंने महापाप किया है। तुझे नरकवास होगा।"

रामानुज जरा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने नम्र होकर कहा—"महात्मन्, आपने कहा था कि जो इस मन्त्र को प्राप्त करेगा, उसे परमगति प्राप्त होगी। अगर मेरे नरकवास से इतने लोगों को मुक्ति मिल जाय तो मैं वैकुण्ठवास की अपेक्षा नरकवास अधिक पसन्द करूँगा।"

गोष्ठीपूर्ण इस उत्तर को सुनकर चौंक उठे। निस्सन्देह यह युवक मोह-मायाजाल

से ऊपर उठ चुका है। तुरंत रामानुज को गले लगाते हुए उन्होंने कहा—"सचमुच तुम महान् हो, धन्य हो। आज से तुम मेरे गुरु हुए। इतना बड़ा हृदयवाला व्यक्ति ईश्वर का अंश होता है।"

श्रद्धा के साथ गोष्ठीपूर्ण को प्रणाम करते हुए रामानुज ने कहा—"प्रभो, आप मेरे गुरु हैं। आपकी कृपा से ही सहस्र लोग धन्य हुए हैं।"

* * *

श्रीरंगम में वापस आकर रामानुज पठन-पाठन में लग गये। इसी बीच उनका भाँजा आल्वान[1] और कुरेश भट्ट[2] ही नहीं, इनके गुरु यादव प्रकाश ने इनसे संन्यास ग्रहण किया। उन दिनों रामानुज जैसा विद्वान् और प्रतिभाशाली ज्ञानी भारत में अन्य कोई नहीं था।

एक दिन आल्वान ने गीता के चरम श्लोकों के बारे में अपनी जिज्ञासा प्रकट की। रामानुज ने कहा—"अभी नहीं, एक वर्ष बाद आना तब बताऊँगा। यदि इसके पूर्व जानना चाहते हो तो एक मास भिक्षान्न ग्रहण कर भोजन करो। इसके बाद आना।"

गुरु के आज्ञानुसार आल्वान ने एक मास तक भिक्षान्न संग्रह करके भोजन किया। यह देखकर रामानुज ने उसे मन्त्र दिया। आल्वान पर गुरुदेव की कृपा हुई है, सुनकर कुरेश भट्ट भी गुरुदेव के निकट आया।

रामानुज यह जानते थे कि कुरेश को अपने ज्ञान तथा विद्वत्ता पर घमण्ड है। जब तक इसका घमण्ड दूर नहीं होगा तब तक मन्त्र देना उचित नहीं है। कुरेश को टालने के लिए रामानुज ने कहा—"तुम्हें मेरे गुरु गोष्ठीपूर्ण के निकट जाना पड़ेगा। वे ही तुम्हें मन्त्र देंगे।"

रामानुज की आज्ञा पाकर कुरेश लगातार छह मास तक गोष्ठीपूर्ण के यहाँ जाता रहा। जिस प्रकार वे रामानुज को टालते रहे, उसी प्रकार कुरेश को भी टालते रहे। उसकी लगन देखकर आखिर एक दिन गोष्ठीपूर्ण ने कहा—"वत्स कुरेश, तुम अपना सारा अभिमान त्याग दो और अपने गुरु की सेवा करो। वे ही तुम्हें मन्त्र देंगे।"

इस राय को सुनकर कुरेश अपने गुरु के पास आकर उनकी सेवा करने लगा। कुछ दिनों के बाद वह मन्त्र देने के लिए नये सिरे से प्रार्थना करने लगा, पर रामानुज बराबर टालते ही रहे। ठीक इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हो गई जिसकी वजह से कुरेश से रामानुज को मुक्ति मिल गई।

महापूर्ण की बेटी अत्तुला एक दिन रामानुज के पास आकर बोली—"भैया, मेरी ससुराल में काफी दूर से पानी लाना पड़ता है। मुझे रसोई बनाने में बड़ा कष्ट होता है। अपनी सास से जब अपनी परेशानी बतायी तो बोलीं कि पीहर से अपने साथ एक रसोइया लाती। यहाँ आकर मैंने पिताजी को अपनी मुसीबत सुनाई। उन्होंने मुझे आपके पास भेज दिया। अब बताइये, मैं क्या करूँ?"

---

१. अपर नाम दाशरथी था।

२. कुरेश भट्ट को कुरनाथ और मुड़ाली आण्डाल भी कहा गया है। इसे एक भिखारी श्रीरंगम ले आया था।

कुछ देर सोचने के बाद रामानुज ने कुरेश को दिखाते हुए कहा—''इसे अपने यहाँ लेती जा। कुरेश तुम्हारे यहाँ भोजन बनाया करेगा।''

कुरेश बिना किसी आपत्ति के गुरुदेव के आदेश पर अत्तुला के साथ रवाना हो गया। अत्तुला उसे साथ लेकर अपनी ससुराल आ गई।

छह-सात माह बाद की घटना है। अत्तुला की ससुराल में कई पण्डित बैठे किसी श्लोक में उलझे हुए थे। कुरेश ने विनीत भाव से उस श्लोक का अर्थ बताया। अचानक एक पण्डित नाराज होकर बोल उठा—''तू है रसोइया पण्डित। तू शास्त्र की बात क्या जाने?''

कुरेश ने बिना क्रोध प्रकट किये कई श्लोकों की व्याख्या इस ढंग से की कि उपस्थित पण्डित-मण्डली चौंक उठी।

दूसरे पण्डित ने विस्मय के साथ कहा—''जब आप इतने अच्छे जानकार हैं तब यहाँ रसोई क्यों बनाते हैं? आपको तो पठन-पाठन में लगे रहना चाहिए।''

कुरेश ने कहा—''मैं यह कार्य अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि गुरुदेव की आज्ञा से कर रहा हूँ।''

बातचीत के सिलसिले में पण्डितों को कुरेश के बारे में सारी जानकारी प्राप्त हो गई। वे लोग रामानुज के पास आकर बोले—''प्रभो, आप कुरेश को ऐसी सजा क्यों दे रहे हैं? वह तो रत्न है।''

पण्डितों की सारी बातें सुनने के बाद रामानुज प्रसन्न हो गये। कुरेश को वहाँ से बुलाकर उन्होंने मन्त्र दिया। इस प्रकार चिरप्रतीक्षित आशीर्वाद कुरेश को प्राप्त हो गया।

पण्डित यामुनाचार्य के शिष्यों में गोष्ठीपूर्ण, महापूर्ण, मालाधर, कांचीपूर्ण और वररंग कुल पाँच प्रमुख शिष्य थे। इनमें से प्रत्येक अपने विषय के अलावा अन्य विषय से सम्पर्क नहीं रखता था। रामानुज ने इस सभी से उनके विषयों का अध्ययन किया। इस प्रकार वे सम्पूर्ण विषयों के एकमात्र आचार्य हुए।

जिस माया को शंकराचार्य ने सत्य-असत्य से परे अनिर्वचनीय बताया था, उसे रामानुज ने सत्य कहा और चित्-अचित् से विशिष्ट ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया। यही कारण है कि इनके वाद को 'विशिष्टाद्वैत' कहा गया है। इसी विषय पर एक बार रामानुज को शास्त्रार्थ करना पड़ा था।

श्री यज्ञमूर्ति से इसी विषय पर जब शास्त्रार्थ होने लगा तब रामानुज अपने को कमजोर महसूस करने लगे। यज्ञमूर्ति के तर्कों का समुचित उत्तर दे पाने में अपने को असमर्थ पाने लगे। उसी दिन वरदराज-विग्रह के सामने जाकर रामानुज रोते हुए बोले —''भगवन्, मेरे सभी मतों का खण्डन होता जा रहा है। मैं निरुपाय होता जा रहा हूँ। मेरी रक्षा करते हुए वैष्णव-मत को बचाने की कृपा करें।''

कहा जाता है कि उसी रात को स्वप्न में वरदराज भगवान् ने आकर कहा—''कल तुम्हारी विजय होगी।''

दूसरे दिन जब रामानुज सभा में आये तब इनके दमकते हुए चेहरे को देखकर

यज्ञमूर्ति हतप्रभ रह गये। कल की पराजय की छाप का कहीं पता नहीं था। उसके स्थान पर अपूर्व ज्योति प्रस्फुटित हो रही थी। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि आज इन्हें दैव-बल प्राप्त हो गया है। अब इन्हें पराजित करना कठिन है। थोड़ी ही देर के शास्त्रार्थ में यह स्पष्ट हो गया कि यज्ञमूर्ति के तर्क कमजोर पड़ रहे हैं। मन में यह भावना उत्पन्न होते ही वे रामानुज के चरणों पर गिर पड़े। बोले—''महाराज, मैं अपनी पराजय स्वीकार करता हूँ।''

* * *

शिष्यों, भक्तों तथा गुरु-भाइयों से हुई बातचीत से रामानुज ने अनुभव किया कि केवल शिष्य बनाने और लोगों को उपदेश देने से वैष्णव-धर्म में स्थायित्व नहीं आ सकता। इसके लिए आवश्यक है कि पूर्ववर्ती विद्वानों के ग्रन्थों का पुनर्लेखन हो ताकि सारा दर्शन सुलभ हो सके। इस विचार को कार्यरूप देने के लिए रामानुज ने आल्वान को गणेश बनाया और 'ब्रह्मसूत्र' का भाष्य लिखवाने लगे।

एक दिन रामानुज ने कहा—''जीव नित्य और ज्ञाता है।''

सहसा आल्वान की लेखनी रुक गई। यह देखकर रामानुज चिन्तित हो उठे। निश्चित रूप से कहीं गलती हो गई है। लाख प्रयत्न करने पर भी वे अपनी भूल को समझ नहीं पाये। क्रोध के वशीभूत होकर उन्होंने आल्वान को पदाघात किया और आश्रम से बाहर निकल गये।

कावेरी-तट पर आकर वे चिन्तन करने लगे। धीरे-धीरे उनका क्रोध शान्त हो गया तभी उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई। तुरंत आश्रम आकर उन्होंने आल्वान से क्षमा माँगी। गुरुदेव को इस कदर व्याकुल देख उसने उनके चरण पकड़कर रोते हुए कहा—''प्रभो, मैंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया, बल्कि स्वतः मेरी लेखनी रुक गई।''

''नहीं वत्स। वह मेरी भूल थी। उसके स्थान पर मुझे कहना चाहिए था—''विष्णुकर्तृक अधिष्ठितत्व'।''

आल्वान की सहायता से आचार्य रामानुज ने क्रमशः वेदान्तदीप, वेदान्तसार-संग्रह, गीताभाष्य, नित्याराधन-विधि एवं गद्यत्रय नामक ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों का लेखन-कार्य समाप्त होने के बाद वे भारत-भ्रमण के लिए चल पड़े।

विभिन्न प्रान्तों का भ्रमण करते हुए वे काश्मीर आये। यहाँ का 'शारदा-क्षेत्र' विद्या के लिए प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि व्यक्तिविशेष के सामने सरस्वती देवी प्रकट होती हैं। स्वामी रामानुज राज्य में आये हैं, सुनकर वहाँ के तत्कालीन राजा ने दरबार में उनका स्वागत किया।

रामानुज ने कहा—''राजन्, मेरा यहाँ आने का एक उद्देश्य है। सुना है कि आपके शारदा-सदन में 'बोधायन-वृत्ति' की मूल प्रति है। मैंने ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखा है, पर मैं उस प्रति को एक बार देखना चाहता हूँ ताकि मेरा संशय दूर हो जाय।''

राजा की आज्ञा से उन्हें मूल प्रति प्राप्त हो गई। रामानुज और कुरेश दोनों व्यक्ति

उसका विधिवत् अध्ययन करते रहे। उन्हें इस बात पर सन्तोष हो गया कि उनका भाष्य ठीक है। कहा जाता है कि जब रामानुज सरस्वती देवी के मन्दिर में गये तब देवी इनके सामने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हुई थीं। रामानुज ने देवी के हाथों पर ब्रह्मसूत्र भाष्य की पाण्डुलिपि रख दी।

सरस्वती देवी ने उसका अवलोकन करने के बाद कहा—''वास्तव में तुम योग्य भाष्यकार हो। इसी नाम से ख्याति प्राप्त करोगे।''

रामानुज की अपूर्व शक्ति, ज्ञान और विद्वत्ता को देखकर काश्मीर-नरेश इनका शिष्य बन गया। एक बाहरी संन्यासी के बढ़ते प्रभाव को देखकर काश्मीरी पण्डित चिढ़ गये। एक परदेशी विद्वान् आकर अपने यहाँ अपना प्रभाव जमाये यह उनके लिए असह्य हो उठा। उन लोगों ने अभिचार-क्रिया की। इससे आचार्य को कष्ट होने लगा। कारण ज्ञात होते ही उन्होंने अपनी कार्यवाही की।

काश्मीर के नागरिकों ने एक दिन आश्चर्य के साथ देखा कि उनके यहाँ के अधिकांश पण्डित दिगम्बर रूप में सड़कों पर दौड़ रहे हैं। सभी के लिए यह अद्भुत दृश्य था। घटना का विवरण राजा के पास पहुँचा। वे रामानुज के पास आकर इस आचरण के कारण पूछने लगे।

रामानुज ने कहा—''राजन्, मुझे मार डालने के लिए इन पण्डितों ने अभिचार-क्रिया की। मैंने कुछ नहीं किया। मैंने इनकी क्रिया को हल्की करके इन्हें वापस कर दिया, इसलिए ये लोग नृत्य कर रहे हैं।''

राजा को रहस्य समझते देर नहीं लगी। उन्होंने कहा—''जो हो गया, सो हो गया। अब आप शीघ्र इसे रोकिये। यह राज्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। मुझे इन्हीं लोगों को लेकर काम चलाना है। आप तो यहाँ से चले जायेंगे।''

अपना चरणोदक देते हुए रामानुज ने कहा—''इन पण्डितों पर यह जल छिड़कवा दीजिए। सब ठीक हो जायगा।''

काश्मीर से रामानुज विभिन्न नगरों में वैष्णव-धर्म का प्रचार करते हुए, कई महीने बाद श्रीरंगम वापस आ गये।

* * *

यहाँ कुछ दिनों विश्राम करने के बाद उन्होंने एक दिन निश्चय किया कि इस बार गरुड़ोत्सव धूमधाम से मनाया जाय। नगर के सभी लोग इस उत्सव में भाग लेंगे। यह समाचार पूरे नगर में फैल गया। निश्चित दिन लोगों की अपार भीड़ हुई। गलियों के सभी भवनों की छत, बरामदे और खिड़कियों पर दर्शकों की अपार भीड़ जमा हो गई। आचार्य रामानुज इस शोभायात्रा का नेतृत्व स्वयं कर रहे थे, इसलिए भक्तजनों में अपार उत्साह था। दर्शक रथ के पास आकर साथ लाये नैवेद्य भगवान् को अर्पित करते रहे। वापस जाते समय आचार्य का चरण-रज लेते रहे। श्रीरंगम के लिए यह अपूर्व घटना थी।

चलते-चलते रथ एक चौराहे पर रुका। नागरिकों में नैवेद्य चढ़ाने के लिए होड़

लगी हुई थी। ठीक इसी समय आचार्य की दृष्टि एक बलिष्ठ युवक पर पड़ी। वह युवक एक विशाल छत्र लिये एक महिला के पीछे-पीछे चल रहा था। उसकी दृष्टि रथ की ओर न होकर महिला के चरणों पर थी। लोग उसकी इस हरकत को देखकर हँस रहे थे, पर वह अपने भाव में मग्न था। युवक के इस मनोयोग को देखकर आचार्य ने एक शिष्य से कहा कि जाकर उसे बुला लाओ।

शिष्य ने वापस आकर कहा—"भगवन्, उसने कहा कि इस वक्त मैं बहुत व्यस्त हूँ। कल सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।"

अगले दिन रामानुज अपने छात्रों को भाष्य पढ़ा रहे थे। ठीक इसी समय कलवाला युवक आया और हाथ जोड़कर एक ओर खड़ा हो गया।

आचार्य ने पूछा—"वत्स, क्या नाम है तुम्हारा?"

"सेवक का नाम धनुर्दास है, प्रभो।"

"तुम कौन हो, क्या करते हो?"

"मैं जाति से शूद्र और पेशे से पहलवान हूँ।"

"कल रथोत्सव के समय किसके साथ जा रहे थे?"

"कल रथोत्सव था? इसकी जानकारी मुझे नहीं थी। मैं......... मैं तो.........." लज्जा से सिर झुकाते हुए उसने कहा—"अपनी प्रेयसी हेमाम्बा के साथ जा रहा था।"

"आखिर हेमाम्बा में ऐसी कौन-सी खूबी है जिसके कारण तुम्हें रथोत्सव का भी ध्यान नहीं रहा?"

धनुर्दास ने कहा—"भगवन्, उसकी आँखों की कोई तुलना नहीं है।"

रामानुज ने कहा—"यदि मैं उससे भी सुन्दर आँखें दिखा दूँ तो.........।"

"यह असम्भव है।"

आचार्य ने कहा—"अच्छी बात है। आज शाम को आरती के समय मेरे साथ मन्दिर चलना।"

"जो आज्ञा।" कहने के पश्चात् वह चला गया।

सायंकाल आरती के समय आचार्य के साथ वह रंगनाथजी के मन्दिर में हाथ जोड़े खड़ा था। आरती के समय भगवान् की आँखें रत्न की तरह चमकने लगीं। इस दृश्य को देखकर धनुर्दास हक्का-बक्का रह गया। तुरन्त आचार्य के चरणों को पकड़कर बोल उठा—"भगवन्, आज आपने मेरी आँखें खोल दीं।"

इसके पूर्व वह कई बार मन्दिर आया था, पर विग्रह की ऐसी आँखें नहीं देख सका था। इस घटना का प्रभाव उस पर ऐसा पड़ा कि घर-द्वार सब कुछ छोड़कर आचार्य की सेवा में आ गया। धनुर्दास के इस परिवर्तन का प्रभाव हेमाम्बा पर भी पड़ा। प्रेयसी होते हुए भी वह धनुर्दास को अपना पति मानती थी। वह भी अपने पति के साथ आचार्य की शिष्या बन गई।

* * *

अब आचार्य पहले की अपेक्षा वृद्ध हो गये थे। नित्य कावेरी में स्नान करने जाते समय ब्राह्मण शिष्य का सहारा लेकर जाते थे, पर लौटते समय धनुर्दास के अलावा अन्य किसी का सहारा नहीं लेते थे। आचार्यजी का यह व्यवहार ब्राह्मण शिष्यों को खलने लगा।

आखिर एक दिन असन्तोष को उन लोगों ने आचार्य के निकट प्रकट कर दिया। सारी बातें सुनने के बाद आचार्य ने कहा—"यह ठीक है कि वह शूद्र है, पर वह कितना महान् है, इसे कभी तुम लोगों ने देखा है? शायद अभी तक उसे समझ नहीं सके हो।"

रामानुज ने देखा कि उनके उत्तर से शिष्य सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने इसके लिए उपाय सोच लिया था। एक दिन एक छात्र को बुलाकर उन्होंने कहा—"आज रात तुम्हें एक कार्य करना है। जब सभी शिष्य सो जायें तब सभी के कौपीनों से थोड़ा-थोड़ा कपड़ा काट लेना। इसके बाद क्या होता है, यह आकर मुझे बताना। लेकिन याद रखना कि सारा काम चुपचाप हो। यह बात हम दोनों के अलावा कोई जानने न पाये।"

दो दिन बाद यह घटना हुई। इस प्रकार कौपीन कट जाने पर सभी शिष्य आपस में लड़ने लगे और एक-दूसरे को अपशब्द कहने लगे। उसी दिन लड़नेवाले छात्रों में से कुछ लोगों को बुलाकर आचार्य ने कहा—"आज जब मैं रात के समय धनुर्दास से बातें करता रहूँगा, उस समय तुम लोग उसके घर चले जाना और उसकी पत्नी के सारे जेवर चुरा लाना।"

आचार्य ऐसा आदेश देंगे, इस बात पर किसी को विश्वास नहीं था। लेकिन गुरु के आदेश के विरुद्ध कोई कुछ बोल नहीं सका।

उधर ठीक समय पर ब्राह्मण शिष्य चोरी करने पहुँचे और इधर धनुर्दास आचार्य से उपदेश ग्रहण कर रहा था। चोरी करनेवालों ने उसके घर जाकर देखा—हेमाम्बा गहरी नींद में सोयी हुई है। वे सब शीघ्रतापूर्वक जेवर उतारने लगे। एक ओर के जेवर जब उतर चुके तब एकाएक हेमाम्बा ने करवट बदली। चोरों ने समझा कि हेमाम्बा जग गई है। वे तुरन्त भाग खड़े हुए।

उनके मठ में प्रवेश करते ही आचार्य ने समझ लिया कि वे लोग आ गये हैं। तब उन्होंने धनुर्दास से कहा—"अब तुम अपने घर जा सकते हो।"

धनुर्दास के जाने के बाद आचार्य ने चोरी करनेवाले शिष्यों से कहा—"अब तुम लोग पुनः उसके घर जाओ। धनुर्दास तथा हेमाम्बा में क्या बातें होती हैं, छिपकर सुनना और तब आकर बताना।"

गुरु के आदेश पर सभी पुनः धनुर्दास के भवन में आये और छिपकर पति-पत्नी की बातें सुनने लगे। कमरे में प्रवेश करते ही धनुर्दास ने पूछा—"अरे, यह कैसी शक्ल बना रखी है तुमने? यह कोई शृंगार है?"

हेमाम्बा ने कहा—"अब क्या बताऊँ? तुम जिस वक्त आचार्यजी के आश्रम में थे उस वक्त कुछ चोर आये। मैंने सोचा कि बेचारे अभावग्रस्त हैं, इसलिए यह कुकर्म करने आये हैं। जब वे एक ओर के आभूषण उतार चुके तब मैंने करवट बदली ताकि दूसरी ओर का भी उतार लें। लेकिन मेरा दुर्भाग्य, मैं जाग गई हूँ, समझकर सब भाग गये।"

धनुर्दास ने कहा—"हाँ, वास्तव में यह तुम्हारा दुर्भाग्य ही रहा। तुम अभी तक यही सोचती हो कि सारी सम्पदा तुम्हारी है। तुम पर आचार्यजी के उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। अरी पगली, यह सारी सम्पदा भगवान् की है। अगर तुम चुपचाप सोयी रहती तो वे अन्य सामान भी ले जाते।"

शिष्यों की जबानी सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा—"अरे मूर्खों, सोचो एक शूद्र का हृदय कितना विशाल है और एक तुम सब हो कि कौपीन से कुछ अंश गायब हो गया तो आपस में लड़ने लगे।"

आचार्य की फटकार सुनकर सभी लज्जित हो उठे। अब उनकी समझ में आया कि धनुर्दास के प्रति आचार्य की इतनी ममता क्यों है?

एक दिन आचार्यजी के शिष्यों ने एक अद्भुत दृश्य देखा। उस दिन आचार्य ध्यानमग्न होकर बैठे थे। सहसा दादागुरु महापूर्णजी आये। उन्होंने आचार्यजी को साष्टांग प्रणाम किया, फिर चुपचाप चले गये। शिष्यों को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि दादागुरु ने हमारे गुरु को प्रणाम क्यों किया?

कुछ देर बाद जब आचार्यजी का ध्यान भंग हुआ तब एक शिष्य के प्रश्न करने पर उन्होंने कहा—"गुरु के प्रति शिष्य का जो कर्त्तव्य है, वही उन्होंने किया।"

इस उत्तर से वे और उलझ गये। दादागुरु महापूर्णजी तो आचार्यजी के गुरु हैं। फिर यह कैसी बात? वे इस समस्या को सुलझाने के लिए महापूर्ण के पास आये। शिष्यों की शंका को सुनकर उन्होंने कहा—"मैंने अपने गुरुदेव यामुनाचार्यजी को रामानुज के शरीर में देखकर प्रणाम किया था।"

दादागुरु की बातें सुनकर सभी शिष्य अवाक् रह गये। अब उन्हें समझते देर नहीं लगी कि उनके गुरु असाधारण हैं।

इसी प्रकार की एक और घटना कुरेश ने देखी थी। गुरुदेव एक व्यक्ति को इशारे से अपने पास बुला रहे थे। कुरेश को यह ज्ञात था कि यह व्यक्ति पूर्ण रूप से गूँगा और बहरा है। इसे गुरुदेव अपने कमरे में क्यों बुला रहे हैं। कुतूहलवश वह खिड़की के पास जाकर छिप गया और भीतर का दृश्य देखने लगा।

गुरुदेव ने इशारे से कहा—"मेरे पैरों को स्पर्श कर।"

गूँगे ने ज्यों ही उनके चरण स्पर्श किये त्यों ही वह बोल उठा—"गुरुदेव, भगवन्।"

* * *

श्रीरंगम चोल राज्य का अंग था। चोल का राजा शैव-धर्म का अनुयायी था। अपने राज्य में बढ़ते वैष्णव-धर्म के प्रभाव को देखकर वह चिढ़ गया। राज्य के सभी ब्राह्मणों को दरबार में बुलवाकर प्रत्येक से लिखवाने लगे—"मैं शैव-मत का हूँ।"

यहाँ तक कि एक बार कुरेश के एक शिष्य को लोग पकड़कर दरबार में ले गये। उससे जब हस्ताक्षर करने को कहा गया तब उसने इनकार कर दिया। राज-रोष बढ़ गया। सभा में उपस्थित पण्डितों ने कहा—"महाराज, ये लोग रामानुज के शिष्य हैं।

समग्र भारत में वैष्णव-धर्म का डंका बजा रहे हैं। आप जब तक इनके गुरु रामानुज को वशीभूत नहीं करेंगे तब तक कुछ नहीं होगा।''

राजा ने कहा—''ठीक है। रामानुज को पकड़कर लाया जाय।''

यह समाचार सैनिकों के पहुँचने के पहले ही श्रीरंगम पहुँच गया। उस समय आचार्य कावेरी में स्नान करने गये थे। कुरेश ने तड़ित्-बुद्धि से काम लिया। उसने आचार्य के वस्त्रों को पहन लिया। सैनिक आचार्य को पहचानते नहीं थे। कुरेश को रामानुज समझकर पकड़कर ले गये। जब यह समाचार महापूर्ण को ज्ञात हुआ तब वे भी कुरेश के साथ चल दिये।

इधर नदी किनारे स्नान करते समय आचार्य को सारा समाचार तुरत मालूम हुआ। उन्होंने घोषणा की कि वे स्वयं चोलराज के दरबार में जायेंगे। आचार्य के निर्णय का शिष्यों ने घोर विरोध किया। शिष्यों ने सुझाव दिया कि इससे अच्छा होगा कि आप चोलराज के राज्य के बाहर जाकर कहीं आश्रय ग्रहण करें। आपके मृत्यु-दण्ड से वैष्णव-धर्म का विनाश हो जायगा। चोलराज को जब यह ज्ञात होगा कि उसके सैनिक आचार्य के बदले किसी और को पकड़ लाये हैं तब वह पुनः आपको पकड़ने के लिए सैनिक भेजेगा। अतएव आप यथाशीघ्र यहाँ से प्रस्थान करें। आगे जो होगा, उसे देखा जायगा।

शिष्यों के विरोध करने पर आचार्य ने अपना निश्चय बदल डाला। उन लोगों के अनुरोध पर वे चोल राज्य के बाहर रवाना हो गये।

उधर अपनी असफलता से क्रुध होकर चोलराज ने कुरेश और महापूर्ण की आँखें निकाल देने की सजा दी।[१] महापूर्ण १०५ वर्ष के वृद्ध थे। वे इस आघात को सहन नहीं कर सके। उनका निधन हो गया। कुरेश कुछ लोगों की सहायता लेकर श्रीरंगम लौट आया।

* * *

आचार्य श्रीरंगम से रवाना होकर यथाशीघ्र चोल राज्य के बार निकल आये। कुछ दिनों बाद वे नृसिंहपुर पहुँचे। वैष्णव-धर्म का प्रचार करते हुए यहाँ इसके पूर्व दो बार आये थे। इस बार आने पर नृसिंहदेव के पुजारियों ने इनका हार्दिक स्वागत किया। उन्हें इस बात की कल्पना नहीं थी कि आचार्यजी पुनः दर्शन देंगे।

नृसिंहपुर के निवासियों को जब आचार्यजी के इस बार सहसा आने का कारण मालूम हुआ तो वे क्रोध से पागल हो उठे। उन लोगों ने चोलराज के विरुद्ध अभिचार-क्रिया करने का संकल्प किया। आचार्य के मना करने पर भी उन लोगों ने उनके अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। इस क्रिया के कारण चोलराज के गले में घाव हो गया। कुछ दिनों तक तड़पने के बाद उसकी मृत्यु हो गई।

कुछ दिनों बाद आचार्य को कुरेश, महापूर्ण के साथ हुई घटनाओं की सूचना प्राप्त हुई। चोलराज के निधन का समाचार मिला। यह सब सुनकर आचार्य बेहोश हो गये।

---

१. डॉ० के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री अपनी पुस्तक 'दक्षिण भारत का इतिहास' में इस घटना को स्वीकार नहीं करते। पृ० ३७३।

गुरुदेव की यह स्थिति देखकर सभी लोग चिन्तित हो उठे। दिनभर सेवा करने पर ही वे स्वस्थ हुए। दूसरे दिन रामानुज ने अपने गुरु का श्राद्ध सम्पन्न किया। अभी यह घाव भरा नहीं था कि पूज्यपाद गोष्ठीपूर्ण के निधन का समाचार आया। इन सभी घटनाओं के कारण वे अत्यन्त मर्माहत हुए और देर रात तक रोते रहे।

कई रोज बाद जब उनका हृदय शान्त हुआ तब उन्होंने घोषणा की कि अब श्रीरंगम की यात्रा करूँगा। यहाँ एक अर्से तक निवास करने के कारण नृसिंहपुर के निवासियों के निकट आचार्य देवतुल्य हो गये थे। अब आचार्य यहाँ से चले जायेंगे, सुनकर सभी विद्रोही हो गये।

आचार्य ने उन्हें समझाते हुए कहा—''मैं हमेशा आप लोगों के बीच मौजूद रहूँगा। व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं है।''

आचार्य ने अपनी एक प्रस्तर-मूर्ति बनाकर उन्हें समर्पित की और कहा—''यही मेरा प्रतिनिधि है।''

''हमें प्रतिनिधि नहीं चाहिए। हम आपको चाहते हैं। आप यहाँ रहेंगे तो हम आपसे जो चाहेंगे, वह मिलेगा। प्रस्तर की मूर्ति क्या देगी?''

यह सुनकर आचार्य क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा—''आप लोग बड़े अविश्वासी हैं। इस प्रस्तर-मूर्ति से आपने कुछ माँगा जो आपको नहीं मिला?''

इस फटकार को सुनते ही भय के कारण लोग वहाँ से हट गये। दूर एक जगह प्रस्तर-मूर्ति को रखने के बाद उन लोगों ने मूर्ति से कहा—''आचार्यजी, हमारा प्रणाम स्वीकार करें।''

मूर्ति ने जवाब दिया—''आयुष्मान् भव। वैष्णव-मत के अनुयायी बनकर लक्ष्मीनारायण के प्रति भक्ति करो।''

* * *

श्रीरंगम वापस आकर वे सबसे पहले कुरेश से मिले। भगवान् रंगनाथ की पूजा करने के पश्चात् वे वरदराज से लगातार एक-एक कर तीन बार प्रार्थना करते रहे। इसके बाद एक दिन कुरेश को सामने बैठाकर उसकी आँखों पर हाथ फेरने लगे। देखते ही देखते कुरेश को पुनः दृष्टि मिल गई।

* * *

मठ में एक दही बेचनेवाली नित्य आकर दही दे जाती थी। दही लेने के बाद उससे कहा जाता था कि जरा बैठो, अभी पैसे मिलते हैं।

एक दिन हराचार्य नामक एक शिष्य ने उसे प्रसाद खाने को दिया। प्रसाद खाते ही बालिका की सुप्त प्रवृत्ति जाग उठी। उसने दही के पैसों के बदले मोक्ष की माँग की।

उसकी बातें सुनकर उपस्थित लोग हँसने लगे। एक वृद्ध ने कहा—''मोक्ष कोई सरल वस्तु नहीं है बेटी। जाओ, घर चली जाओ।''

बालिका को उपदेश नहीं, मोक्ष चाहिए था। लगी वह जिद्द करने। लोग उसे जितना समझाते, उतनी ही वह जिद्द करती। शोरगुल सुनकर आचार्य रामानुज आये। उन्होंने कहा—''एक काम करो, बेटी। तुम यहाँ से वेंकटाचल चली जाओ। वे तुम्हें मोक्ष दे देंगे।''

बालिका ने कहा—''ठीक है, पर वे मुझे पहचानेंगे कैसे? आप उनके नाम एक पत्र लिखकर दीजिए।''

बालिका की सरल बातों का प्रभाव पड़ा। आचार्यजी सब समझ गये। उन्हें पत्र लिखते देख शिष्यों को आश्चर्य हुआ, पर किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया।

बालिका वह पत्र लेकर वेंकटाचल गई। विग्रह के सामने पत्र रखती हुई बोली—''मुझे यह पत्र आचार्य रामानुज ने दिया है। कृपया मुझे मोक्ष दीजिए।''

इतना कहकर वह साष्टांग करने लगी तो फिर नहीं उठी। उसकी आत्मा वेंकटाचल-विग्रह में लीन हो गई।

* * *

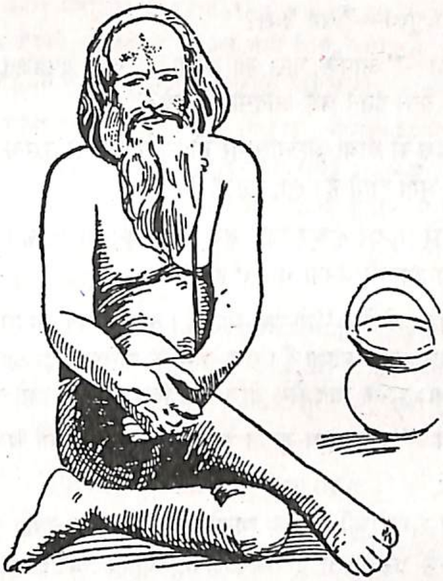
इन सभी घटनाओं के साठ वर्ष बाद की बात है। रामानुज अब काफी जर्जर हो गये थे। इस बीच धनुर्दास, हेमाम्बा, शैलपूर्ण, कुरेश आदि का निधन हो गया था। आल्वान को मन्दिर की पूजा का भार सौंप दिया गया था। एक दिन शिष्यों ने आचार्य से कहा—''भगवन्, अगर आप अनुमति दें तो आपकी दो प्रस्तर-मूर्तियाँ बनवायी जायें ताकि सम्प्रदाय के भक्त आपकी पूजा करते रहें।''

आचार्य ने अनुमति प्रदान की। मूर्तियाँ तैयार हो गईं। एक दिन कावेरी में स्नान करने के बाद आचार्य अपनी प्रस्तर-मूर्तियों के सामने आकर खड़े हो गये। उन्होने दोनों विग्रहों में अपनी शक्ति का संचार किया।

इसके बाद उन्होंने कहा—''आज मेरा काम पूरा हो गया। अब मैं विश्राम करना चाहता हूँ।''

शिष्य गोविन्द की गोद में सिर और शिष्य आन्ध्रपूर्ण की गोद में पैर रखकर वे समाधिस्थ हो गये। थोड़ी ही देर बाद गोविन्द ने देखा कि ब्रह्मरन्ध्र भेदकर आचार्यजी महाप्रयाण कर गये हैं।

■ ■ ■



रामदास काठिया बाबा

जिला अमृतसर के एक गाँव का नाम है—लोना चमारी। इस गाँव में एक परमहंस बाबा एक अर्से से रहते थे। सिद्ध पुरुष थे। उनके आशीर्वाद से कुछ लोगों का कल्याण हुआ था, इसलिए सभी किसान बाबा के प्रति श्रद्धा रखते थे। घर में किसी प्रकार का शुभ कार्य प्रारम्भ करने के पहले लोग उनके पास जाकर अनुमति लेते थे। स्नान करने के बाद या बाबा की कुटिया के पास से गुजरनेवाले लोग बाबा को दण्डवत् करते थे।

इसी गाँव का एक बालक जब कभी इधर आता तब गाँव के लोगों को किसान बाबा को प्रणाम करते देखता तब उसे अपार आश्चर्य होता। आखिर सभी लोग इस बाबा को प्रणाम क्यों करते हैं? गाँव में और भी लोग हैं, किसी को हर कोई प्रणाम नहीं करता। लगता है, बाबा बहुत बड़े आदमी हैं। इस प्रश्न के निराकरण के लिए किसी से कुछ पूछने का साहस नहीं होता था। उसने सोचा कि सबसे सरल उपाय है—बाबाजी से इस सवाल का जवाब पूछूँगा।

कुछ दिनों बाद बाबाजी की कुटिया की ओर से जाते समय बालक ने देखा—बाबा अकेले बैठे हैं। अपनी आदत के अनुसार वह निर्द्वन्द्व होकर बाबा के पास पहुँच गया। उसके आने पर बाबा अक्सर उसे मिठाई या फल खाने को देते थे। इसी लालच से वह कभी-कभी घण्टों बेकार बैठा फालतू बातें किया करता था।

उस दिन बिना किसी भूमिका के उसने पूछा—''बाबाजी, इस दुनिया में आप सबसे बड़ी आदमी हैं।''

बाबा ने हँसकर पूछा—''वह कैसे?''

बालक ने कहा—''आपके पास जो आता है, वही दण्डवत् करता है। अच्छा, यह बताइये कि आप कैसे इतने बड़े आदमी हो गये?''

शिशु-सुलभ प्रश्न से बाबा आत्मविभोर हो उठे। स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—''भूख लगी है। लो, खाओ।''

बाबा के हाथ से मिठाई लेकर खाते हुए उसने पुनः प्रश्न किया—''बताइये न? मैं भी आपकी तरह बड़ा आदमी बनना चाहता हूँ।''

बाबाजी हँस पड़े। बोले—''तो यह बात है। तू भी बड़ा आदमी बनना चाहता है? देख बेटा, मैं हमेशा राम-राम कहता हूँ। राम-नाम के कारण बड़ा आदमी बना हूँ। तू भी हमेशा राम-राम कहना। इसके बाद मेरी तरह एक दिन बड़ा आदमी बन जायगा।''

बालक ने कहा—''राम-नाम कहने से अगर बड़ा आदमी बना जा सकता है तो मैं जरूर कहूँगा।''

यह घटना उस समय की है जब बालक की उम्र चार साल की थी। बचपन में जब कोई बात दिल में पैठ जाती है तब उसका व्यापक असर पड़ता है। बालक पर राम-नाम जपने का नशा सवार हो गया। बाबाजी के पास जाने पर वे उसे और उत्साहित करते थे।

कुछ दिनों बाद बालक रामदास के जीवन में एक अद्भुत घटना हुई। नित्य सबेरे जलपान करने के बाद वह घर की भैंसों को लेकर दूर चराने ले जाता था। कुल चार भैंसें थीं। एक दिन वह उन भैंसों को मैदान में छोड़कर पीपल की छाँह में बैठा राम-नाम जप रहा था। ठीक इसी समय एक बाबाजी न जाने किधर से आये और उससे कहा—''बच्चा, कुछ खिलाओगे, बड़ी भूख लगी है।''

रामदास ने कहा—''जरूर खिलाऊँगा बाबा। आप एक काम कीजिए। यहाँ बैठकर मेरी भैंसों पर नजर रखिये तब तक मैं आपके लिए घर से खाने का सामान ले आता हूँ।''

साधु ने कहा—''ठीक है, बेटा। मैं तुम्हारी भैंसों की रखवाली करता हूँ। तुम मेरे लिए भोजन ले आओ।''

रामदास दौड़ता हुआ घर पहुँचा तो देखा कि सभी लोग खा-पीकर सो गये हैं। वह भण्डारघर से आटा-दाल लेकर आया। सारी सामग्री देते हुए कहा—''इसे बनाकर आप खा लीजिए। मैं पानी ला देता हूँ।''

भोजन करने के बाद साधु ने कहा—"बेटा, तुम योगिराज बनोगे।"

रामदास ने कुतूहलवश पूछा—"यह कैसे होगा, बाबा? मेरे माता-पिता हैं, भाई हैं, भैंस हैं। मैं नित्य पाँच सेर दूध पीता हूँ। मैं योगिराज कैसे बन सकता हूँ?"

साधु ने कहा—"बच्चा, जब मेरे मुँह से यह आशीर्वाद निकल गया तब होकर ही रहेगा। तुम योगिराज अवश्य बनोगे।"

इतना कहकर साधु महाराज चल पड़े और कुछ दूर आगे जाते ही हवा में गायब हो गये। दूर-दूर तक देखने पर भी वे दिखाई नहीं दिये। रामदास को लगा जैसे उसके मन में कुछ परिवर्तन हुआ है। क्या हुआ है, समझ नहीं पाया।

समयानुसार उसका उपनयन हुआ और फिर उसे पाठशाला में पढ़ने के लिए भेज दिया गया। उसकी धी-शक्ति देखकर गुरुजी दंग रह गये। एक बार जिस पुस्तक को वह पढ़ लेता मानो वह कण्ठस्थ हो जाता था। इसी गुण के कारण गुरुजी अन्य छात्रों की अपेक्षा उसे अधिक स्नेह देते थे। यह देखकर पाठशाला के अन्य छात्र जलने लगे। सभी छात्रों ने मिलकर षड्यन्त्र किया।

एक दिन छात्रों ने गुरुजी से शिकायत की कि रामदास पाठ्य-पुस्तक पढ़ता नहीं। जब देखो तब माला फेरता रहता है। आप चाहें तो किसी से पूछ लीजिए। सभी छात्रों के स्वीकार करने पर गुरुजी ने रामदास को बुलाकर पूछा—"क्यों रे, यहाँ माला फेरने आता है कि पढ़ने आता है?"

रामदास ने कहा—"गुरुजी, मैं अपना पाठ बराबर पढ़ता हूँ। आज्ञा हो तो सुनाऊँ।"

पाठ्य-पुस्तक मँगवाकर गुरुजी ने प्रश्न पूछा। रामदास ने ठीक उत्तर दिया। शिकायत करनेवाले छात्रों को डाँटते हुए उन्होंने कहा—"रामदास अगर अपना पाठ याद करके माला फेरता है तो तुम लोग चिढ़ते क्यों हो? दूर हो जाओ मेरे सामने से।"

कहाँ तो लड़के शिकायत करने गये थे और कहाँ उन्हें डाँट खानी पड़ी। इस घटना के बाद से फिर किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। गुरुजी के यहाँ लगातार दस वर्षों तक वह व्याकरण, ज्योतिष, विष्णुसहस्रनाम, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का अध्ययन करता रहा।

शिक्षा समाप्त होने पर पिता ने उसके विवाह के लिए तैयारी आरम्भ की। इस समाचार को सुनते ही रामदास ने कहा कि मैं विवाह नहीं करूँगा। पिता ने कहा—"घर के बड़े लड़के हो, जब तुम विवाह नहीं करोगे तो तुम्हारे छोटे भाइयों का कैसा होगा?"

रामदास ने कहा—"मुझे छोड़ दीजिए। उन लोगों का विवाह कर दीजिए।"

प्रत्युत्तर में पिता ने पुनः कुछ नहीं कहा। रामदास के गुरु ने एक बार बातचीत के सिलसिले में कहा था कि सवा लाख गायत्री मन्त्र पाठ करने पर सिद्धि प्राप्त होती है। रामदास के घर के पास एक बरगद का पेड़ था। उसने सोचा कि वहीं सुनसान स्थान में वह सवा लाख गायत्री मन्त्र जप करेगा। दिन गुजरते गये। धीरे-धीरे एक लाख गायत्री मन्त्र एक दिन सम्पूर्ण हुआ। अभी पचीस हजार बाकी है। उसी दिन घर जाते समय वृक्ष

पर से किसी अदृश्य वाणी ने कहा—''वत्स, शेष पचीस हजार जप तुम ज्वालामुखी में जाकर करो तभी मैं सिद्ध हो जाऊँगी।''

इस वाणी को सुनकर रामदास चौंका। यह बात किसी दूसरे को कैसे मालूम हो गई कि मैं गायत्री मन्त्र सिद्ध कर रहा हूँ, पर अन्तिम बात सुनने के बाद उसने समझ लिया कि यह गायत्री देवी स्वयं कह रही थीं। इस आदेश को सुनकर उसका हृदय प्रसन्नता से भर उठा।

दूसरे दिन अपने भतीजे को लेकर वह ज्वालामुखी की ओर रवाना हो गया। रामदास के गाँव से ८० मील दूर ज्वालामुखी का मन्दिर है। मार्ग में एक जगह सहसा एक साधु को देखते ही उसके पैर अपने-आप रुक गये। साधु के पास जाकर उसने साष्टांग दण्डवत् किया। उन्होंने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया।

साधु महाराज के स्पर्श से ही उसके समस्त शरीर में एक प्रकार की झनझनाहट-सी हुई। वह काँप उठा। वह यह भूल गया कि पचीस हजार गायत्री मन्त्र पाठ करने के लिए उसे ज्वालामुखी जाना है। स्वयं देवी ने उसे आज्ञा दी है।

साधु महाराज की ओर एकटक देखते हुए उसने कहा—''मैं ब्राह्मण हूँ, महाराज। मुझे अपनी सेवा में रख लीजिए। मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।''

रामदास के विनयपूर्ण सम्भाषण से प्रसन्न होकर साधु ने कहा—''वत्स, यह कठिन मार्ग है। शिष्य बन जाना सरल है, पर साधना और त्याग दुरूह होता है। कुछ दिन ठहरकर देख लो।''

रामदास के श्रम, लगन और निष्ठा देखकर साधु ने उसे अपना शिष्य बना लिया। सिर मुड़वाकर उसे 'वैराग्य आश्रम' की उपाधि दी गई। बचपन से वह जिस चीज को पाना चाहता था, आज उसका श्रीगणेश हो गया। रामदास के लिए मुश्किल उस समय हुई जब उसके इस कार्य का विरोध साथ आये भतीजे ने किया। समझाने पर भी जब रामदास ने नहीं माना तब सीधे घर आकर उसने रामदास के पिता को सारा विवरण सुनाया।

रामदास साधु बन गया है, यह समाचार सुनते ही पिता क्रोध से बौखला उठे। तुरंत साधु के आश्रम में आकर बिगड़ उठे—''अगर तुम सीधे से नहीं चलोगे तो लाचारी में मुझे पुलिस की सहायता लेनी पड़ेगी।''

प्रत्युत्तर में रामदास ने कहा—''पिताजी, अब मैं बालिग हो गया हूँ। पुलिस के सामने यह स्पष्ट कर दूँगा कि मैंने किसी दबाव, भय या नाराजगी के कारण नहीं, बल्कि स्वेच्छा से संन्यास ग्रहण किया है।''

ज्येष्ठ पुत्र की बातों से पिता की ममता को बड़ा धक्का लगा। उन्होंने रोते हुए उसके गुरुदेव से कहा—''जो होना था, वह हो गया। कृपया इस बालक को एक बार छोड़ दीजिए वरना इसकी माँ रोते-रोते मर जायगी। माँ इसे एक बार देख ले, फिर यह वापस आपके पास आ जायगा।''

गुरु ने कहा—''ठीक है। साधु को संन्यास लेने के पश्चात् एक बार जन्मभूमि

जाना पड़ता है। सब ठौर एक ही है। इसमें कोई दोष नहीं। तुम इनके साथ जाकर अपनी जन्मभूमि को चेताओ।''

चलते-चलते रामदास ने कहा—''पिताजी, मेरे साथ कोई छल मत करियेगा। अब मैं तन-मन से संन्यासी हूँ।''

गाँव में प्रवेश करते ही रामदास ने कहा—''मैं संन्यासी हो गया हूँ अतएव घर पर नहीं रह सकता। इसी पेड़ के नीचे रहूँगा।''

जिस वृक्ष के नीचे कभी वह गायत्री मन्त्र जपता रहा, उसी के नीचे बैठ गया। बेटा वापस आया है, सुनकर माँ दौड़ी हुई आई और घर चलने के लिए जिद्द करने लगी। माँ को सान्त्वना देते हुए रामदास ने कहा—''माँ, मेरा निश्चय अटल है। अगर इस तरह रोओगी तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा।''

बेटा वापस चला जायगा, सुनकर माँ चुप हो गई। कम-से-कम यहाँ रहने पर आँखों के सामने तो रहेगा। गाँव के लोगों ने प्रस्ताव किया कि रामदास नित्य एक घर जाकर अन्न ग्रहण करेगा। खाली समय में वह गायत्री मन्त्र का जप करता था। एक दिन रात्रि के समय देवी ने आकर कहा—''वत्स, अब जप करने की जरूरत नहीं। मैं प्रसन्न हूँ। बोलो, कौन-सा वर दूँ?''

रामदास ने कहा—''मुझे कुछ नहीं चाहिए माँ। आप केवल मुझ पर प्रसन्न रहा करें।''

'तथास्तु' कहने के बाद देवी अन्तर्धान हो गईं। कई दिनों के बाद रामदास अपने घर में अन्न ग्रहण करने गया तो लड़के की स्थिति देखकर माँ का दर्द उमड़ पड़ा। रामदास ने कहा—''अगर इस तरह तुम रोओगी तो क्या मुझसे खाना खाया जायगा? इसीलिए मैं यहाँ नहीं रहना चाहता था।''

माँ ने कलेजे पर पत्थर रखकर अपने आवेग को रोक लिया। लेकिन उसकी आँखें बरसती रहीं। रामदास ने कहा—''रोने से कोई लाभ नहीं होगा, माँ। मैंने जो मार्ग अपनाया है, उससे हम दोनों का कल्याण होगा।''

माँ ने एक लम्बी साँस लेने के बाद कहा—''ठीक है बेटा। जिससे सभी का कल्याण हो, वही करो। अपने नियमानुसार यहाँ आकर भोजन कर लेना। अब कभी नहीं रोऊँगी।''

* * *

इसी प्रकार दिन गुजरते गये। रामदास ने कुछ दिनों बाद अनुभव किया कि गाँव के रिश्ते से भाभी लगनेवाली एक युवती शाम ढले नित्य आती है। परिहास करती है। उसकी आदत से तंग आकर रामदास ने कहा—''भाभी, अब मैं संन्यासी हो गया हूँ। शाम ढले मेरे यहाँ न आया करें।''

भाभी ने पूछा—''इससे क्या हुआ?''

रामदास ने कहा—''हुआ तो कुछ नहीं, किन्तु परस्त्री को संन्यासी के पास नहीं आना चाहिए।''

उस दिन भाभी चुपचाप चली गईं। दूसरे दिन पुनः उसी समय आईं। यह देखकर रामदास ने फटकारा। वह बेहया की तरह बोली—''इससे क्या नुकसान होता है।''

रामदास को समझते देर नहीं लगी कि इस पापिष्ठा की नीयत ठीक नहीं है। उन्होंने एक ढेला उठाकर उसे मारा। वह नाराज होकर चली गई। रामदास को शंका हुई कि आज भाभी आई, कल कोई और आ सकती है। इससे अच्छा है कि यह स्थान छोड़ दूँ।

इसी प्रकार की एक घटना रामदास के साथ और हुई थी। पंजाब स्थित एक छोटी रियासत की विधवा रानी इन पर आसक्त हो गई थीं। बहुत ही सुन्दर और नवयौवना थीं। उसने प्रस्ताव रखा—''आप मेरी काम-वासना की पूर्ति करते हुए मेरे राज्य में ऐश करिये।''

कहा जाता है कि गदराया हुआ यौवन देखकर रामदास इस रानी पर आसक्त हो गये थे, पर दूसरे ही क्षण इन्हें अपने वैराग्य-जीवन की याद आ गई। अपने को संयत करते हुए वे राज्य से भाग गये। उन्हें लगा कि गुरु-कृपा से वे बच गये।

गाँव से सीधे गुरुजी की सेवा में आ गये। गुरु ने निश्चय किया कि शिष्य कितना योग्य है, इसकी जाँच करनी चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रामदास को बड़ी कड़ी परीक्षा देनी पड़ी थी।

रामदास के गुरुदेव का जन्म अयोध्या जिले के किसी गाँव में हुआ था। संन्यास लेने के बाद उनका नाम हुआ—स्वामी देवदास। अपनी कठोर साधना के माध्यम से वे सिद्ध हो गये थे। कहा जाता है कि वे छह माह तक समाधि में लीन रहते थे। जब समाधि में नहीं रहते थे तब गाँजा-चरस पीना, उपदेश देना आदि कार्य करते थे। उन्हें नींद नहीं आती थी। भोजन के नाम पर धूनी की विभूति कपड़छान कर पानी में घोलते और उसे पी जाते थे। कुछ देर बाद कै के द्वारा उसे उगल देते थे। फिर रामदास से कहते—''इसे तौलकर देख, जितना मुझे पिलाया था, उतना है या नहीं?''

* * *

एक बार रामदास गुरुजी के विनोद के कारण काफी परेशान हुआ था। उस दिन उन्होंने रामदास से कहा—''बेटा, मेरा कोठा बड़ा गरम हो गया है। कहीं से दूध लाकर पिलाओ तो यह गरमी दूर हो जाय।''

रामदास गुरुजी के लिए चारों ओर से माँगकर करीब २० सेर दूध लाये। डेगची में गरम करने के पश्चात् उसे गुरुजी के सामने रख दिया। गुरुजी डेगची उठाकर सारा दूध एक बार में पी गये। बाद में उन्होंने कहा—''बेटा, अभी कोठा कुछ गरम है। मुझे थोड़ा दूध और चाहिए तब जरा ठण्ढा होगा।''

यह दृश्य देखकर रामदास का पसीना छूटने लगा। वे बचपन में पाँच सेर दूध अवश्य पीते थे, पर कई बार में। लेकिन गुरुजी एक साँस में २० सेर पीने के बाद कह रहे हैं कि थोड़ा और चाहिए। भयभीत होकर उसने गुरुजी की प्रदक्षिणा करने के बाद उनके चरणों पर माथा रखते हुए कहा—''महाराज, आप भगवान् हैं। आपके कोठे की गर्मी मैं कैसे दूर कर सकता हूँ? आप २० सेर दूध डकार गये और अभी तक आपकी गर्मी दूर नहीं हुई। अब कहाँ से दूध ले आऊँ? अब मुझे क्षमा कर दें।''

गुरुदेव उसकी मजबूरी को समझते हुए बोले—''बेटा, कहीं से भी थोड़ा दूध ला दो। इस बार जो लाओगे, उससे तृप्त हो जाऊँगा।''

लाचारी में रामदास को जाना पड़ा। इस बार वह ५-७ सेर दूध लाया। उसे पीने के बाद गुरुजी ने कहा—''अब मेरी गर्मी दूर हो गई।''

इसी प्रकार एक बार अपने कुछ शिष्यों के साथ एक जंगल के किनारे गुरुजी आसन लगाये बैठे थे। अचानक बोल उठे—''बेटा, तलब लगी है। तुममें से कोई शहर जाकर दो रुपये का गाँजा ले आओ।''

अँधेरी रात, घना जंगल, चारों ओर हिंस्रक जानवर चहलकदमी कर रहे थे। इस जंगल को पार करने का साहस किसी को नहीं हो रहा था। कुछ देर के बाद रामदास ने कहा—''गुरुदेव, अगर आप मुझे आदेश दें तो मैं ले आऊँ?''

गुरुदेव ने कहा—''ठीक है। तुम्हीं चले जाओ। शहर पहुँचने पर तुम्हें रुपये अपने-आप मिल जायेंगे। उन रुपयों से गाँजा लेकर चले आना।''

रामदास को यह ज्ञात था कि गुरुदेव असाधारण योगी हैं। इनके लिए कुछ भी अकरणीय नहीं है। अगर मैं इस भयानक जंगल और हिंस्र पशुओं के बीच से जाऊँगा तो वे मेरी बराबर रक्षा करते रहेंगे। जंगल पारकर रामदास शहर के भीतर आया। चारों ओर सुनसान था। सड़क पर एक-दो व्यक्ति आ-जा रहे थे। घरों की रोशनियाँ बुझी हुई थीं।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक घर से रोशनी बाहर आती दिखाई देने लगी। वहाँ पहुँचते ही उस घर से एक आदमी बाहर निकला और कहा—''बाबाजी, आज मैंने संकल्प किया था कि किसी साधु को दो रुपये दूँगा। काफी देर से प्रतीक्षा कर रहा था। सौभाग्य से आप मिल गये। लीजिए।''

इतना कहकर उसने दो रुपये दिये और अपने घर का दरवाजा बन्द कर लिया। रामदास ने अनुभव किया कि यह गुरुदेव की महिमा है। अब गाँजे की दुकान कहाँ है? कुछ दूर आगे बढ़ने पर देखा—गाँजा-भाँग का दुकानदार सो रहा है। उससे गाँजा खरीदने के बाद रामदास की इच्छा हुई कि जरा दम लगा लें। साधुओं की संगत में रहने के कारण उन्हें गाँजा पीने का शौक हो गया था।

इसके बाद वहाँ से चलकर सीधे गुरुजी के पास आया। ज्योंही उसने प्रणाम किया त्यों ही गुरुजी बोल उठे—''क्यों बेटा, गुरु का कार्य इसी तरह किया जाता है? पहले स्वयं भोग लगाकर अवशिष्ट पदार्थ गुरुजी को दोगे? क्या मुझसे यही शिक्षा मिली है?''

गुरुदेव की अन्तर्दृष्टि यहाँ तक पहुँच जायगी, इसकी कल्पना रामदास को नहीं थी। सारा नशा हिरन हो गया। भय से पैर थरथराने लगे। जीभ तालु से सट गई। तुरन्त घुटने टेकते हुए उसने कहा—''भगवन्, मुझसे भयंकर अपराध हो गया। मैं आपका अबोध पुत्र हूँ। भविष्य में ऐसी भूल नहीं होगी—प्रभो।''

गुरुदेव ने कहा—''निस्सन्देह तुम बालक हो और यह तुम्हारी भूल है। अतएव तुम्हें क्षमा करता हूँ। भविष्य में सावधान रहना।''

*　　　*　　　*

रामदास के गुरुदेव असाधारण योगी थे। उनकी अनेक योग-विभूतियों को उसने प्रत्यक्ष रूप से देखा और अनुभव किया है। लाहौर की घटना उसे याद है। उन दिनों वे अपने कतिपय शिष्यों के साथ लाहौर में डेरा डालकर विश्राम कर रहे थे। नगर के लोग सुबह-शाम प्रवचन सुनने आते थे। इनमें से एक दुशाले का व्यापारी भी था।

इस व्यापारी से एक दिन स्वामीजी ने कहा—''सेठ, तुम अपनी ओर से इन आगत साधुओं को एक दिन भण्डारा दो।''

स्वामीजी के प्रस्ताव को सुनकर व्यापारी घबरा गया। उन दिनों कुल मिलाकर एक हजार के लगभग साधु थे। उसने साफ इनकार कर दिया। पुनः अनुरोध करने पर अपमानजनक शब्द कहता हुआ चला गया।

उसके इस व्यवहार से शिष्य तथा साधु-मण्डली क्षुब्ध हो उठी। देवदास स्वामी ने कहा—''सेठ को अपने धन का बहुत घमण्ड हो गया है। आज इसे तोड़ना है वरना यह निरन्तर साधुओं का अपमान करता रहेगा।''

इतना कहकर देवदास स्वामी ने कमण्डल से जल निकालकर अपने सामने की धूनी पर छिड़का और कह उठे—''सेठ, तेरी दुकान में आग लग गई।''

थोड़ी देर बाद रामदास ने देखा—सामने से वही सेठ दौड़ता हुआ आ रहा है। बाबा के पास आकर धड़ाम से गिर पड़ा। बदहवास होकर बोला—''महाराज, मुझे बचा लीजिए। मैं बड़ा पापी हूँ। मैं एक दिन नहीं, सात दिनों तक भण्डारा दूँगा। मुझे बरबाद होने से बचा लें।''

सदाशय बाबा प्रसन्न हो उठे। उन्होंने अभय मुद्रा में हाथ उठाकर कहा—''अच्छी बात है। जाओ, सब ठीक हो गया। दण्ड के रूप में एक दुशाला नष्ट हुआ है। लेकिन एक बात याद रखना कि आगे कभी किसी साधु का अपमान मत करना।''

सेठ को विश्वास नहीं हो रहा था, फिर भी वह चरण-स्पर्श कर ज्यों ही उठा त्यों ही दुकान के नौकर ने आकर सूचित किया—''आग बुझा दी गई है। एक दुशाले के अलावा और कुछ नुकसान नहीं हुआ है।''

नौकर के जबानी यह समाचार सुनकर सेठ ने पुनः चरण-स्पर्श किया और चला गया। उसके जाने के बाद चकित भाव से रामदास ने पूछा—''भगवन्, यह सब कैसे हो गया? कृपया बताने का कष्ट करें।''

देवदास स्वामी ने कहा—''इस सेठ को अपने धन का घमण्ड बहुत अधिक हो गया था। देव-द्विज, साधु-महात्माओं के प्रति अवज्ञा की भावना इसके मन में घर कर गई थी। फलतः दण्ड देना पड़ा जिससे विनम्र बना रहे और ईश्वर के प्रति आस्थावान् रहे। जिस विद्या के जरिये मैंने यह कार्य किया है, उसे तुम्हें बता दूँगा। परन्तु इस बात पर ध्यान रखना कि उसे किसी कुपात्र को मत देना वरना तुम्हारी हानि होगी।''

लाहौर से चलकर स्वामीजी भोपाल आये। भोपाल का ताल विश्व-प्रसिद्ध है। इस ताल के किनारे आसन बिछाकर स्वामीजी बैठ गये और शंख बजाने लगे। भोपाल के

नवाब का सख्त हुक्म था कि कोई भी व्यक्ति ताल के समीप शंख, घण्टा, घड़ियाल आदि नहीं बजायेगा वरना उसका सिर कलम कर दिया जायगा।

इधर शंख बजना था कि उधर नवाब का पारा गरम हो गया। प्यादों का दल दौड़ा। किनारे पर आकर उन लोगों ने देखा—स्वामीजी का सिर कहीं, पैर कहीं, हाथ कहीं और धड़ कहीं पड़ा है। बेचारे किसे पकड़कर ले जाते। लौटकर यही समाचार सुनाया।

अभी प्यादे पूर्ण विवरण सुना नहीं पाये थे कि पुनः शंख-ध्वनि हुई। पुनः पहरेदार आये। इस बार उन्हें सब कुछ गायब मिला। पहरेदार यह विवरण सुनाते ही रहे कि पुनः शंख-ध्वनि हुई। अब नवाब साहब भीतर ही भीतर डर गये। यह भूतों की लीला है या कोई उच्चकोटि का सन्त आया है? अपने पार्षदों को लेकर वे ताल के किनारे आये।

बाबा सामने बैठे थे। नवाब ने आगे बढ़कर उनकी अभ्यर्थना की। बाबा ने कहा—''घण्टा-घड़ियाल बजाने पर रोक लगाकर तुमने गलत आदेश दिया है। जिस प्रकार तुम्हें अपने खुदा की इबादत करने का हक है, उसी प्रकार हिन्दुओं को भी है। आइन्दा किसी की इबादत में दखल मत देना।''

''जो हुक्म महात्माजी। आगे ऐसा ही होगा।''

*　　　*　　　*

ज्यों-ज्यों अपने गुरु की अलौकिक शक्ति को रामदास देखता त्यों-त्यों उसके आश्चर्य की सीमा बढ़ती जाती थी। लेकिन उसे इस बात की कल्पना नहीं थी कि आगे उसकी कड़ी परीक्षा ली जायगी।

साधु का ढोंग रचना सरल है, पर साधना के माध्यम से यौगिक शक्ति प्राप्त करने में कड़े संघर्ष से गुजरना पड़ता है। पूर्वकाल के योगी शिष्य की कड़ी परीक्षा लेकर ही उन्हें अपने योग्य बनाते थे। मन्त्र प्राप्त करके साधना करनेवाले सामान्य सन्त होते हैं। गुरु की कसौटी पर खरे उतरनेवाले योगी बनते हैं।

रामदास के लिए बाबा का सख्त आदेश था कि शाम के बाद धूनी को जगाये रखना। धूनी के पास आसन बिछाकर भजन करते रहना। शाम के बाद बाहर कहीं मत जाना। जाड़े के दिन थे। कपड़े के नाम पर उनके पास एक उत्तरीय था। उसकी हालत यह थी कि मुँह ढाँकने पर पैर और पैर ढाँकने पर मुँह खुल जाता था। फलतः शीत-निवारण के लिए धूनी के पास बैठा रहना पड़ता था। सबसे अधिक परेशानी लकड़ी की लँगोटी की थी। इस लँगोटी के कारण रात को सोते समय काफी परेशानी होती थी। दिन को बालू पर आराम मिलता था, पर रात को धूनी के पास बड़ा कष्ट होता था। भोजन भी एक वक्त मिलता था।

धूनी से कुछ दूर फूस की झोपड़ी में गुरुदेव रहते थे। गुरुदेव के कठोर अनुशासन के कारण अन्य शिष्य भाग गये। ले-देकर रामदास रह गये। उस दिन रात को कड़ाके की सर्दी थी। धूनी की गर्मी के कारण आराम मिला और नींद आ गई। थोड़ी ही देर बाद बर्फ गिरने लगी और धूनी ठण्ढी हो गई। सहसा शीत का प्रकोप अनुभव होते ही रामदास की नींद उचट गई। धूनी को ठण्ढी देखकर वह डर गया। अगर धूनी न जगाई तो ठण्ड के

कारण मौत आ जायेगी। इसके अलावा गुरु महाराज फटकारेंगे। रात को आसन छोड़कर कैसे जाये और गुरु महाराज के पास जाने की आज्ञा नहीं है। अगर उनके पास आग माँगने गया तो वे समझ जायेंगे कि मैं भजन छोड़कर सो गया था। मुमकिन है तब कठोर दण्ड दें। इस ऊहापोह में काफी समय गुजर गया। अन्त में उसने सोचा—असावधानी के कारण यह घटना हुई है। जाकर गुरुजी से आग माँग लूँ। जो दण्ड देंगे, उसे भोग लूँगा। यह सोचकर वह हल्के कदमों से गुरुदेव की कुटिया के पास आकर खड़ा हो गया।

गुरुदेव ने पूछा—"बाहर कौन खड़ा है?"

"भगवन्, मैं रामदास हूँ।"

"रात को आसन छोड़कर क्यों आये हो?"

"महाराज, मेरी धूनी बुझ गई है, इसलिए आपकी सेवा में आग माँगने आया हूँ।"

गुरुदेव ने कहा—"लगता है, सो गये थे वरना धूनी न बुझती। अपने माता-पिता को दु:ख देकर यहाँ सोने आये हो? इस तरह सोना ही था तो यहाँ आने की क्या जरूरत थी? घर पर आराम करते।"

इस प्रकार देर तक वे फटकारते रहे। जब वे चुप हो गये तब रामदास ने काँपते हुए कहा—"महाराज, भूल हो गई। क्षमा कर दें। अचानक नींद आ जाने के कारण ऐसी घटना हो गई। भविष्य में सावधान रहूँगा।"

"जहाँ खड़े हो, वहीं एक घण्टा खड़े रहो। अभी आग नहीं दूँगा।"

गुरुदेव के क्रोध से रामदास अच्छी तरह परिचित थे, फलतः वह आज्ञानुसार भयंकर सर्दी में बाहर खड़ा काँपते रहे। कुछ देर बाद एक टुकड़ा कोयला बाहर फेंकते हुए गुरुदेव ने कहा—"ले जाओ। आइन्दा गफलत न होने पाये।"

इसी प्रकार रामदास के धैर्य की परीक्षा लेने के लिए एक बार उन्होंने कहा—"मैं कुछ दिनों के लिए एक विशेष कार्य से बाहर जा रहा हूँ। जब तक वापस न आऊँ तब तक यहीं बैठे रहना। किसी काम से कहीं मत जाना।"

"जो आज्ञा गुरुदेव।"

एक स्थान दिखाते हुए गुरुदेव ने कहा—"बस इसी जगह यहीं चुपचाप बैठे रहो।" इतना कहकर गुरुदेव चले गये।

दिन गुजरते गये। रामदास प्रस्तर की भाँति गुरुदेव द्वारा बताये स्थान पर बैठे रहे। आठवें दिन गुरुदेव आये। रामदास ने खड़े होकर प्रणाम किया।

गुरुदेव ने पूछा—"क्यों वत्स, इसी जगह मौजूद थे?"

रामदास ने कहा—"जी महाराज। आपके जाने से लेकर अभी तक यहीं आज्ञानुसार उपस्थित था।"

"मल-मूत्र त्याग के लिए भी नहीं उठे?"

"आपकी कृपा से मल-मूत्र का वेग नहीं हुआ।"

"भोजन की क्या व्यवस्था थी?"

रामदास ने कहा—''कुछ भी नहीं।''

''ठीक है। गुरु के आदेशों का पालन इसी प्रकार करना चाहिए। माँ-बाप को कष्ट देकर जब इस मार्ग पर आये हो तब तन, मन, वचन से गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए। तभी भगवान् की कृपा होगी।''

इसी प्रकार की परीक्षाएँ बराबर रामदास को देनी पड़ती थीं। प्रत्येक परीक्षा में संयम के साथ सफलतापूर्वक वे उत्तीर्ण होते रहे। रामदास कभी-कभी सोचता था कि आखिर कब इसका अन्त होगा। आखिर एक दिन वह भी आ गया।

कई वर्ष बाद अकारण न जाने क्यों गुरुदेव का पारा गर्म हो गया। लाठी लेकर रामदास की पिटाई करने लगे। बोले—''भाग यहाँ से। सभी तो भाग गये। तू यहाँ क्यों मर रहा है? भाग जा। अब मैं किसी की सेवा लेना नहीं चाहता।''

अत्यधिक मार खाने की वजह से रामदास लहूलुहान हो गया। बदन भी कई जगह से फूल गया। दर्द से कराहते हुए रामदास ने दर्दीले स्वर में कहा—''महाराज, यह बात आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं अपने माँ-बाप का कितना दुलारा था। घर में खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी। अपनी इच्छा से सब कुछ छोड़कर आपकी शरण में आया। अब तो इस दुनिया में आपको छोड़ दूसरे किसी को नहीं जानता। अगर आप मुझसे विमुख हो जायेंगे तो मैं किसके पास जाऊँगा? इससे अच्छा है कि मेरी गर्दन काट दीजिए, सारा झंझट समाप्त। जीवित रहते मैं कहीं नहीं जा सकता।''

गुरुदेव ने अट्टहास करते हुए कहा—''वत्स, तुम धन्य हो। तुम्हारी गुरु-भक्ति से प्रसन्न हो गया। यही तुम्हारी अन्तिम परीक्षा थी। अब आगे कोई परीक्षा नहीं होगी। मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। तुम अपने उपास्य देवता का दर्शन कर सकोगे। तुम जो कहोगे, वह सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जायगा। तुम्हारा वाक्य कभी निष्फल नहीं होगा।''

गुरु का आशीर्वाद पाते ही रामदास ने उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। बदन की सारी पीड़ा क्षणभर में दूर हो गई।

* * *

इस घटना के बाद दोनों व्यक्ति एक समृद्ध नगर में आये। नगर के एक किनारे दोनों आसन लगाकर बैठे। गुरु और चेले के आसनों में कुछ दूरी थी। श्रद्धालुओं का आगमन होने लगा। लोग पहले स्वामी देवदास को प्रणाम करने के बाद रामदास के पास आते थे। इसी बीच एक आदमी आया। रामदास को प्रणाम करने के बाद उनके पास चार रुपये रखे।

रामदास ने कहा—''हरे-हरे। मेरे गुरुदेव वहाँ बैठे हैं। कृपया यह भेंट उन्हें देने का कष्ट करें। उनके रहते मैं नहीं ले सकता।''

उस व्यक्ति ने कहा—''महाराज, आपके प्रति आकृष्ट होकर मैंने आपकी पूजा की है।''

रामदास ने कहा—''आपका कथन सत्य है, भगत। लेकिन अपने पूजनीय गुरु की उपस्थिति में यह भेंट मैं स्वीकार नहीं कर सकता। कृपया उन्हें जाकर दे दें।''

उस व्यक्ति को यह सुझाव स्वीकार नहीं हुआ। वह उन रुपयों को छोड़कर चला गया। रामदास अपने गुरु के पास जाकर बोले—''प्रभो, एक भगत चार रुपये भेंट में दे गया, कृपया इसे ग्रहण करें।''

देवदासजी ने कहा—''क्यों रे, तू कैसा चेला है जो गुरु के रहते स्वयं पूजा ग्रहण करने लगा है?''

रामदास ने सारी बातें कहने के बाद कहा—''जब वह रुपये छोड़कर चला गया तब आपको देने आ गया।''

गुरु ने कहा—''अब तू वास्तव में सिद्ध हो गया है। गोया तू भी शेर हो गया। दो शेर एक जगह नहीं रहते।''

इस घटना के तीन दिन बाद गुरुदेव ने कहा—''वत्स, द्वारिका में हम लोगों के सम्प्रदाय का मुख्य धाम है। इस धाम का दर्शन करना तुम्हारे लिए आवश्यक है।''

रामदास ने कहा—''मैं तो आपको ही भगवान् समझता हूँ। शास्त्रों में भी लिखा है कि गुरु-चरणों में सभी तीर्थ रहते हैं। जब आपके चरणों का दर्शन करता हूँ तब मुझे तीर्थस्थान जाने की क्या जरूरत?''

''बड़ा ज्ञान बखान रहा है। लगता है जैसे तुझसे बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है। तेरे गुरु, दादा गुरु, परदादा गुरु, लकड़दादा गुरु, सभी द्वारिका गये थे और एक तू इतना बड़ा ज्ञानी हो गया है कि तीर्थ-दर्शन करना नहीं चाहता? जब मैं कह रहा हूँ तब तुझे जाना पड़ेगा?''

रामदास ने कहा—''पता नहीं, यह द्वारिका है कहाँ? कहीं इधर-उधर चला गया तो परेशानी होगी। आप अपने पास ही रखिये गुरुदेव।''

इस बात का उत्तर गुरुदेव ने नहीं दिया और न रामदास समझ सके कि आखिर गुरुदेव क्यों उसे दूर हटा रहे हैं। अगर वह समझ पाता तो शायद विद्रोह करता।

इस घटना के दूसरे ही दिन दो साधु आये। बातचीत के सिलसिले में गुरुदेव ने उनसे पूछा—''महात्मन्, यहाँ से आप लोग कहाँ के लिए प्रस्थान करेंगे?''

उन लोगों ने कहा—''द्वारिका।''

तभी गुरुदेव ने रामदास की ओर देखते हुए कहा—''तू कह रहा था कि द्वारिका कहाँ है। दोनों महात्मा जा रहे हैं, इनके साथ चला जा।''

अब रामदास लाचार हो गया। उसके उदास चेहरे को देखकर देवदास स्वामी ने कहा—''अपने सम्प्रदाय के लोगों को द्वारिका-दर्शन करना चहिए। मेरा आशीर्वाद है, तुझे मार्ग में कोई कष्ट नहीं होगा। सब अपने-आप प्राप्त हो जायेंगे।''

आखिर उसे द्वारिका जाना पड़ा। गुरुदेव के आशीर्वाद से मार्ग में उसे गाँजा,

भोजन, बैलगाड़ी और आश्रय का कोई कष्ट नहीं हुआ। वहाँ से सकुशल आश्रम में आने पर देखा कि यहाँ अनेक ज्येष्ठ गुरुभाई एकत्रित हैं। सभी उदास हैं। गुरुदेव कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। शंकित भाव से उसने एक गुरुभाई से पूछा तो पता लगा कि गुरुदेव परलोकवासी हो गये हैं।

यह एक ऐसा समाचार था जिसे सुनते ही रामदास का सिर चकराने लगा और तुरंत बेहोश होकर गिर पड़ा। होश आने पर उसने अनुभव किया कि शायद इसीलिए गुरुदेव ने मुझे जबरन द्वारिका भेजा था। कुछ देर बाद रामदास इतना बौखला गया कि वह अपनी जटाओं को नोचने लगा, पागलों की तरह जमीन पर लोटने लगा। उसके रोदन तथा क्रियाकलाप को देखकर कई गुरुभाइयों ने मिलकर उसे शान्त करने की कोशिश की। बाद में उनका मुण्डन कराया गया।

इस घटना के एक सप्ताह बाद एक निर्जन स्थान पर गुरुदेव के दर्शन हुए। उन्होंने रामदास से कहा—''बेटा, अब शोक मत करो। मेरी मृत्यु नहीं हुई है। आवश्यक समझकर अन्तर्धान हो गया हूँ। आवश्यकता होने पर तुम मेरा बराबर दर्शन कर सकते हो। अलक्ष्य रूप में आजकल मैं नर्मदा किनारे रह रहा हूँ। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूरी होंगी।''

गुरु-दर्शन तथा उनके आश्वासन से उसकी उद्विग्नता शान्त हो गई। गुरुभाइयों ने भण्डारा किया। इसके बाद सभी यथास्थान चलने लगे।

*　　　*　　　*

अब रामदास स्वामी स्वतन्त्र रूप से तीर्थ-भ्रमण के लिए चल दिये। उनके मन में यह दृढ़ विश्वास था कि आगे आनेवाली कठिनाइयों को गुरुदेव दूर कर देंगे। हिमालय स्थित गंगोत्री में आये। यहाँ अचानक एक दुर्घटना हो गई। वे एक ऊँचे पर्वत पर चढ़कर चारों ओर का दृश्य देख रहे थे। अचानक पैर के समीप का एक पत्थर खिसका। उन्हें भीतर गुफा-सी दिखाई दी।

कुतूहलवश बड़ा-सा पत्थर हटाने पर उनका अनुमान सही निकला। भीतर सुरंग-सी गुफा थी। भीतर प्रवेश करने पर सामने एक जटाधारी संन्यासी दिखाई पड़े। आहट पाकर उनकी आँखें खुल गईं। रामदास ने विनीत भाव से प्रणाम किया। तुरंत संन्यासी ने पूछा—''कौन हो तुम?''

उनकी आँखों से ज्वाला निकल रही थी। लगता था जैसे भस्म कर देंगे। हाथ जोड़ते हुए उन्होंने कहा—''प्रभो, आपका अनुचर-सेवक।''

''सेवक को जो आज्ञा दी जाती है, वह उसका पालन करता है। क्या तुम करोगे?''

रामदास ने भय से सिहरकर कहा—''आज्ञा कीजिए।''

''इस गुफा के मुहाने में छलाँग लगाकर नीचे कूद जाओ। जाओ।''

रामदास ने बाहर आकर देखा—लगभग पचास फुट गहरी खाई है। कूदने पर मौत निश्चित है और न कूदने पर स्वामीजी के क्रोध का शिकार होना पड़ेगा। 'जय गुरुदेव'

कहते हुए वे नीचे कूद गये। गुरु-कृपा से उन्हें चोट नहीं आई। तभी उन्हें लगा जैसे स्वामीजी ऊपर से उनकी जटा पकड़कर खींच रहे हैं। ऊपर आते ही वे बाबा के चरणों पर गिर पड़े।

बाबा ने कहा—"निस्सन्देह तुम योग्य अनुचर हो। अब यहाँ से चले जाओ। यह स्थान ऋषियों की तपोभूमि है। यहाँ तुम्हें नहीं आना चाहिए था।"

बाबा को प्रणाम कर रामदासजी नीचे उतर आये। उपयुक्त स्थान देखकर वे तपस्या में लीन हो गये। एक अर्से बाद गुरुदेव ने दर्शन देकर कहा—"वत्स, अब तुम परमार्थ के लिए सभी तीर्थों का दर्शन करो।"

हिमालय से रामदास स्वामी चल पड़े। मार्ग में कुछ अन्य सन्त मिल गये। सभी पैदल चल रहे थे। काफी दूर जंगल में प्रवेश करने के बाद शेर की आवाज सुनाई दी। जो साधु सबसे आगे चल रहा था, वह ठिठककर खड़ा हो गया। उसने कहा—"मैं अब आगे नहीं चलूँगा।"

प्रत्युत्तर में किसी ने यह नहीं कहा कि तब मैं आगे चलूँगा। रामदास स्वामी ने आगे बढ़कर कहा—"मैं सबसे आगे चलता हूँ। आप सभी मेरे पीछे आइये।"

इतना कहने के बाद वे आगे बढ़ गये। उनके पीछे सभी रवाना हुए। कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद वह शेर न जाने किधर से आया और उसी बाबा को पकड़कर जंगल में गायब हो गया जो आगे चलने में भयवश पीछे हो गया था। इसके बाद फिर कोई घटना नहीं हुई।

* * *

स्वामी रामदासजी ने सर्वप्रथम शिष्य बनाया गरीबदास को। उन दिनों रामदासजी भरतपुर में ठहरे हुए थे। एक कुलीन ब्राह्मण ने अपने पुत्र को स्वामीजी के पास लाकर निवेदन किया—"महाराज, आप इसे अपनी सेवा में रख लीजिए।"

बाबा ने उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और कहा कि ठीक है। बचपन से स्वामीजी के जीवन के अन्तिमकाल तक वह बड़ी निष्ठा के साथ उनकी सेवा करता रहा। कई बार स्वामीजी का कोपभाजन हुआ, पर कभी अपना धैर्य नहीं खोया। बाद में स्वामीजी को कहना पड़ा—"गरीबदास, सचमुच तू मेरा असली चेला है। मेरी तरह तू भी सिद्ध हो गया है।"

स्वामीजी के दूसरे शिष्य का नाम भगवानदास था। वे स्वामीजी के निकट कुछ दिनों तक रहने के बाद बम्बई चले गये। तीसरे शिष्य का नाम ठाकुरदास था। आप विद्वान् व्यक्ति थे। तीव्र वैराग्य उत्पन्न होने के कारण हिमालय में आकर तप करने लगे। स्वामीजी का चौथा शिष्य भरतपुर का था। इसके बाद जितने शिष्य बने, वे बंगाल के निवासी थे।

स्वामीजी भरतपुर से हाथरस आये। यहाँ एक धनी बनिया रहता था जो अपुत्रक था। वह सन्तान-प्राप्ति की आशा से सभी साधु-सन्तों की सेवा करता था। स्वामी रामदासजी की सेवा इसी उद्देश्य से करने लगा और एक दिन उसने अपनी कामना प्रकट की।

रामदास स्वामी ने कहा—"तुम्हें सन्तान की प्राप्ति होगी, पर मेरे लिए वृन्दावन में तुम्हें अपने व्यय से एक मन्दिर बनवाना पड़ेगा।"

सेठ ने कहा—"अगर मुझे लड़का हुआ तो मैं वचन देता हूँ कि वृन्दावन में मन्दिर बनवा दूँगा।"

स्वामीजी ने कहा—"अब तुम निश्चिन्त हो जाओ। ठीक एक वर्ष बाद तुम्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी। लेकिन यह बात याद रखना कि अगर तुम अपने वायदे से मुकर गये तो लड़का नहीं बचेगा। अब मैं यहाँ एक वर्ष बाद आऊँगा।"

एक वर्ष के भीतर बनिये को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई और ठीक समय पर स्वामीजी आये। इन्हें देखकर उसने कहा—"मैं वृन्दावन में मन्दिर नहीं बनवा सकता। उसके बदले यहाँ अपने बाग में बनवा दूँगा।"

स्वामीजी ने कहा—"तुमने वृन्दावन में मन्दिर बनवा देने का वायदा किया था। अब पुत्र की प्राप्ति के बाद इनकार कर रहे हो। आज से तीसरे दिन यह लड़का नहीं बचेगा।"

इतना कहने के बाद स्वामीजी बनिये के घर से अपने डेरे में चले आये। तीसरे दिन बनिये का लड़का चल बसा। बनिये की पत्नी व्याकुल होकर स्वामीजी के पास आकर अपना सिर पटकने लगी—"आपके आशीर्वाद से मेरा बाँझपन दूर हुआ। मेरे पति की नीचता की सजा मुझे मत दीजिए। मैं निरपराधी हूँ। मुझ पर कृपा कीजिए। आप जो आज्ञा देंगे, वह सब मैं करने को तैयार हूँ।"

इस महिला की करुण पुकार से योगिराज द्रवित हो उठे। उन्होंने कहा—"बेटी, तुम्हारा एक पुत्र पति की निर्लज्जता के कारण गया। अब मैं आशीर्वाद देता हूँ कि भविष्य में तुम दो सन्तानों की जननी होगी। दोनों ही जीवित रहेंगे। मुझे अब तुम लोगों से कुछ नहीं चाहिए। केवल इस बात को हमेशा याद रखना कि साधुओं के सामने जो वचन देना, उसे अवश्य पूरा करना।"

वृन्दावन में मन्दिर न बनने पर स्वामीजी खिन्न मन से कुछ दिनों के लिए वहाँ चले गये। यमुना-तट पर कुंजगली के सामने स्थित एक पेड़ के नीचे उन्होंने अपना आसन लगाया। साथ में कई शिष्य और गरीबदास भी था। इस घाट पर पुरुषों के अलावा अनेक महिलाएँ स्नान करने आती थीं। स्थानीय लोगों को बाबा के चरित्र पर सन्देह हुआ। प्रत्यक्ष रूप से कहने पर विवाद हो सकता है अतएव उन्होंने जाँच करना उचित समझा।

षड्यन्त्रकारियों ने एक बदचलन औरत को अर्थ का प्रलोभन देकर उसे राजी किया। एक रात वह बाबा के पास आई और उनसे लिपटकर सो गई। बाबा तुरंत चीख उठे।—"गरीबदास, देख तो मेरे आसन पर कौन आ गया है?"

गरीबदास ने रोशनी जलाकर देखा और पूछा—"तुम कौन हो और बाबा के पास क्यों आई हो?"

औरत ने कहा—"मैं कामातुर हूँ। मेरा कोई नहीं है, मैं विधवा हूँ, इसलिए आपके पास आई हूँ। आपके ऊपर मेरा मन चल गया है।"

बाबा का रौद्र रूप प्रकट हुआ। बोले—"गरीबदास, जरा सामने से हट जा। इस

राँड़ की सारी कामातुरता अभी निकाले देता हूँ। साधु के पास उसका सत्त्व लेने आई है? आज मैं इसकी जान खींच लेता हूँ।''

बाबा का यह रूप देखकर वह पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगी। उनके पैरों को पकड़ती हुई बोली—''मेरी कोई गलती नहीं है, बाबा। मुझे क्षमा कर दें। अमुक-अमुक व्यक्तियों ने मिलकर आपके चरित्र की जाँच करने के लिए मुझे यहाँ भेजा है, वरना मैं यहाँ क्यों मरने आती? आप तो मेरे पितातुल्य हैं।''

बाबा स्थिति समझ गये। बिगड़कर बोले—''अच्छा, अब भाग जा। आइन्दा कभी किसी साधु के पास मत जाना। सभी साधु एक जैसे नहीं होते।''

इसी वृन्दावन में एक और विचित्र घटना स्वामीजी के साथ हुई थी। गोसइयाँ नामक एक शातिर डाकू वृन्दावन में रहता था। डकैती, लूटपाट, खून करना, उसके लिए सामान्य बात थी। कभी-कभी वह स्वामी रामदास के पास गाँजा पीने के लिए आता था। गोसइयाँ कितना खतरनाक था, इसका अन्दाजा एक घटना से लगाया जा सकता है। इसे पकड़ने के लिए एक बार ब्रिटिश सरकार को फौज की सहायता लेनी पड़ गई थी। चारों ओर से घिर जाने पर वह पकड़ा गया और उसे चौदह साल की सजा हुई। विश्वास था कि इतनी लम्बी सजा काटने के बाद उसमें कुछ सुधार हो जायगा, पर कुत्ते की दुम की तरह उसकी आदत टेढ़ी बनी रही।

बाबा के पास गोसइयाँ को निरन्तर आते देख छन्नूसिंह नामक एक भक्त ने कहा—''बाबा, आप इस डाकू को ठीक कर दीजिए तो बड़ा कल्याण हो। यह ब्राह्मण-वंश का कलंक है। इसके अत्याचारों से सभी त्रस्त हैं। आप सिद्ध महात्मा हैं, कम-से-कम इससे हमें मुक्ति दिलायें।''

इस निवेदन को सुनने के पश्चात् एक दिन जब गोसइयाँ बाबा के पास आया तब उन्होंने पूछा—''क्यों रे गोसइयाँ, तू भगत बनेगा? अब डकैती वगैरह छोड़कर मेरा चेला बन जा।''

बाबा की बातों से उसके अन्तर के तार झनझना उठे। उसने कहा—''बाबा, मैंने जीवनभर कुकर्म किये हैं, क्या इस पर भी आप मुझ पर कृपा करेंगे?''

रामदास स्वामी ने कहा—''दिनभर का भूला अगर शाम को घर आ जाय तो खुशी होती है। जा, अभी बाजार चला जा और वहाँ से तुलसी की एक कण्ठी लेता आ। मैं तुझे कण्ठी पहनाकर आज ही अपना चेला बनाऊँगा।''

बाबा के आज्ञानुसार वह सारी सामग्री बाजार से खरीदकर ले आया। बाबा ने उसे दीक्षा दी। उसी दिन से उसके स्वभाव में परिवर्तन होता गया। सन्तों को अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से यह ज्ञान हो जाता है कि किस व्यक्ति का सुधार हो सकता है और किसका नहीं। किसे दीक्षा देनी चाहिए और किसे नहीं।

नदी किनारे सुनसान स्थान में बाबा का डेरा था। इधर अधिकतर जरायम पेशावाले यदाकदा आया करते थे। तीर्थस्थानों में चोर-उचक्के अधिक रहते हैं। यहाँ के उचक्कों ने देखा कि इस बाबा के पास अनेक लोग आते हैं। फल-मिष्टान्न के अलावा

रकम चढ़ाते हैं। बाबा के खजाने में गहरी रकम होगी। एक दिन चोरों का एक गिरोह आया। बातचीत के सिलसिले में एक चोर ने कहा—"बाबा, आप बड़े बेफिक्र होकर दहाड़ते हैं। सावधान रहियेगा वरना किसी दिन धोखा खा जाइयेगा।"

बाबा ने कहा—"तुम लोग कौन हो, क्या करते हो, क्यों आये हो, यह सब मुझसे छिपा नहीं है। अब तुम लोगों का साहस इतना बढ़ गया है कि साधुओं को धमकी देने लगे। मुझे धोखा जब मिलेगा तब मिलेगा, पर तुम लोग तो आज ही थाने के भीतर नजर आओगे।"

एक चोर ने कहा—"आप जैसे बाबा हमने बहुत देखे हैं। अपनी सिद्धई अपने पास रखिये। हम इतने बेवकूफ नहीं हैं। हमें गिरफ्तार करनेवाला आज तक कोई पैदा नहीं हुआ है, समझे बाबाजी।"

इतनी बातें कहकर तीनों चोर बड़ी शान से चले गये। उसी रात को तीनों पकड़े गये। दो जमानत पर छूटते ही बाबा के पास आकर रोने लगे।

बाबा ने कहा—"अब रोने से क्या होगा? जैसी करनी वैसी भरनी। पाप करने पर सजा मिलती है।"

"बाबा, हमें बचा लीजिए। अब ऐसी गलती हम नहीं करेंगे। क्षमा करें महाराज। हम आपको पहचान नहीं सके।"

रामदास स्वामी ने कहा—"अगर यह वायदा करो कि आगे से चोरी नहीं करोगे और साधु-महात्माओं को तंग नहीं करोगे तो बच सकते हो।"

चोरों ने हाथ जोड़कर प्रतिज्ञा की। बाबा ने कहा—"अच्छी बात है। तुम दोनों बेदाग छूट जाओगे।"

तीसरा चोर छूट नहीं सका। उसे सजा हो गई। जेल की ओर से वह मथुरा-वृन्दावन-मार्ग पर मिट्टी ढोने लगा। एक दिन बाबा उधर से पैदल आ रहे थे। इन्हें देखते ही वह दौड़ा हुआ आया और बाबा के पैरों से लिपटता हुआ बोला—"प्रभो, मैं तो बिलकुल निर्दोष था। आपके अभिशाप के कारण फँस गया। बदमाश तो छूट गये। मुझे बचा लीजिए, बाबा।"

बाबा ने कहा—"ठीक कह रहे हो?"

"हाँ बाबा।"

"तब तुम तीसरे दिन जरूर छूट जाओगे।"

चोर ने चकित होकर पूछा—"ऐसा कैसे हो सकता है, बाबा? मैंने अपील की तो वह भी नामंजूर हो गई है।"

रामदास स्वामी ने कहा—"जब मेरी जबान से बात निकल गई तो वह होकर ही रहेगी। तीन दिन बाद चौथे दिन तुम छूट जाओगे।"

उसी दिन न जाने किस खुशियाली में ब्रिटिश शासन के आदेश से प्रत्येक जेल से तीन-तीन कैदी छोड़े गये जिनमें यह चोर भी था।

* * *

बाबा के एक गुरुभाई अपने साथ एक दिन एक बालक को लेकर आये और स्वामी रामदास से कहा—"इसे अपनी सेवा में रख लो। चेले की तरह रखना। यहीं दाऊजी मन्दिर के पासवाले गाँव का रहनेवाला है।"

प्रेमदास स्वभाव से नम्र और व्यवहारकुशल प्रमाणित हुआ। उन दिनों वृन्दावन में कुछ आर्य-समाजी विद्वान् रहते थे। प्रेमदास उनके यहाँ भी जाता था। उनके उपदेशों का इस पर असर पड़ा। उसने अपनी कण्ठी-माला फेंक दी। प्रत्येक जाति के यहाँ भोजन करने लगा। एक प्रकार से अपने को परमहंस समझने लगा। बाबा के पास आनेवाले लोग उसकी बातें सुनते तो चकित रह जाते। बाबा का प्रिय शिष्य और ऐसी बातें।

प्रेमदास की शिकायत बाबा के पास पहुँची तो उन्होंने कहा—"अरे, वह तो पागल है। उसकी बात पर ध्यान मत दो।"

इधर बाबा के श्रीमुख से यह बातें निकलीं और उधर वह पागलों की तरह उछल-कूद करने लगा। यहाँ तक कि एक चिमटा लेकर बाहर चला गया। अब उसकी यह हालत हो गई कि जिधर उसकी दृष्टि जाती, उधर ही उसे बाबा दिखाई देने लगे। भूख, प्यास, नींद, सब गायब। चारों ओर उछल-कूद करने के कारण लहूलुहान हो गया था। एक दिन अपने-आप आश्रम में आ गया। उसकी हालत देखकर सभी सहानुभूति प्रकट करने लगे।

कई लोग उसे पकड़कर बाबा के पास ले आये। उन लोगों ने निवेदन किया—"बाबा, यह आपका बालक है। अब इस पर दया कीजिए।"

बाबा चुप रहे। यह देखकर पुनः लोगों ने निवेदन किया—"गरीबदास मर जायगा, बाबा। अब इसे अधिक दण्ड मत दीजिए।"

बाबा ने कहा—"इसे ठाकुरजी का प्रसाद खिला दो।"

प्रसाद खाने के कुछ देर बाद वह शान्त हो गया। धीरे-धीरे वह अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गया। जब स्वामीजी को उसने प्रणाम किया तब बाबा ने कहा—"क्यों रे, तू तो कहता था कि सभी वस्तु बराबर है। प्रसाद का महत्त्व देखा। यही वजह है कि वैष्णवजन शुद्ध भाव से ठाकुरजी को भोग चढ़ाते हैं। इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।"

* * *

बाबा निरन्तर लोगों को एक बात कहा करते थे। उनका कहना था कि साधक को चौथे पहर नहीं सोना चाहिए—

१. पहले पहर में सब कोई जागे,
दूसरे पहर में भोगी ।
तीसरे पहर में तस्कर जागे,
चौथे पहर में योगी ॥

२. अन्तर से काम करते रहना चाहिए। निन्दा या स्तुति पर ध्यान मत दो।

इसका अर्थ यह है कि अच्छे-बुरे कार्यों पर विचार करते हुए काम करना चाहिए। बाहरी लोगों की निन्दा-स्तुति पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

३. सदा शुक्ल रहना।

अर्थात् हमेशा शुद्ध सात्त्विक रहना। साधक को इन तीन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

बाबा का कहना था कि आलस्य त्यागकर निष्ठापूर्वक भगवत्-विग्रह और महात्माओं की सेवा करने का व्रत लेना चाहिए। शाम को और रात के अन्तिम प्रहर में दो-दो घण्टे का नाम जपना चाहिए। सेवा करते-करते मन एकाग्र होता है तब भजन पर अधिकार होता है। सेवा में चित्त निर्मल होता है, आलस्य दूर होता है और निष्ठा बढ़ती है।

बाबा केवल उपदेश देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझते थे, बल्कि शिष्यों को भजन करने का आदेश देकर वे यह अनुभव कर लेते थे कि कौन, कितना और कैसे कर रहा है। अन्यमनस्क रहनेवालों से कहते—''अब तुझसे भजन नहीं होगा। जा, काम कर।''

बाबा के एक शिष्य ताराशंकर चौधुरी[1] थे। उनका मन भजन में नहीं लग रहा था। श्री चौधुरी ने अपनी समस्या बाबा के सामने प्रकट की। बाबा ने प्रत्युत्तर में कहा—''तेरा मन भजन में नहीं लग रहा है, इसका अनुभव मुझे हो रहा है, इसीलिए तेरा भजन मुझे करना पड़ रहा है।''

इसी प्रकार एक दिन चौधुरी की कुण्डली जागृत होने की स्थिति आई। उन्होंने बाबा से कहा—''बाबा महाराज, मेरे भीतर की शक्ति न जाने क्यों रुक जा रही है?''

''हाँ, वह कमल है। वही रोक रहा है।''

चौधुरी ने कहा—''तब इसे खोल दीजिए। बड़ा कष्ट हो रहा है।''

बाबा बिगड़ उठे—''चुप। मैं नहीं खोलूँगा।'' पुनः कुछ देर बाद बोल उठे—''अगर इस वक्त उस गाँठ को खोल दूँ तो भविष्य में तू कुछ नहीं कर सकेगा। तुझे इस संसार में बहुत कुछ करना है। समय आने पर उन गाँठों को खोल दूँगा। क्रिया करता चल। एक बात याद रखना कि गृहस्थाश्रम और संन्यासाश्रम में कोई भेद नहीं है। संन्यासाश्रम में ठीक से साधना करने पर अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है। इससे संसार के आप्तजनों का उपकार किया जा सकता है। गृहस्थाश्रम में यह शक्ति नहीं आती। बस, इतना ही अन्तर है। गुरु की कृपा से ही भगवत्-साक्षात्कार होता है। इस दृष्टि से दोनों आश्रम बराबर हैं। विधिविहित कार्यों को करते हुए हमेशा भगवान् से डरते रहना चाहिए। इसे कभी मत भूलना कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर सर्वदा तेरे साथ हैं। इसे ध्यान में रखने पर सभी कार्य सिद्ध होते हैं और जीव का कल्याण होता है।''

आगे आपने कहा—''चित्त निर्मल होने पर सात सिद्ध भूमियों को एक के बाद एक करके पार किया जाता है। इनमें से पाँच भूमियों के बारे में ग्रन्थों में उल्लेख है, पर

---

१. बाबा का शिष्य बनने के बाद सन्तदास बाबा कहलाये।

बहुत कम साधक इन पाँचों को पार कर सके हैं।''

सहसा चौधुरी ने पूछा—''मैं इन भूमियों के बारे में कुछ नहीं जानता। क्या आप बताने की कृपा करेंगे?''

बाबा ने कहा—''जब तू कुछ नहीं जानता तब बताने से क्या समझेगा? फिर भी संक्षेप में बता रहा हूँ—

गुरु तीरथ अनुराग, विषय विष कर मान ।
इसी को जान प्रथम भूमि का प्रमाण ॥
हममें कौन जगत में कौन इसका ध्यान ।
दूसरा भूमि का प्रमाण ॥
एक ब्रह्म जगत में जीव में बसता है ।
और सब कारण,
यह है तीसरा भूमि का प्रमाण ॥
सर्वत्र समदर्शन और अखण्ड सन्तोष,
चौथा भूमि का प्रमाण ।
नारद-भक्ति प्रेम पंचम भूमि का प्रमाण ॥

इन पाँचों भूमियों को पार कर लेने पर शेष दो भूमियाँ अपने-आप प्राप्त हो जाती हैं।''

एक दिन पुन: चौधुरीजी के प्रश्न करने पर बाबा ने कहा—''सद्गुरु की कृपा से मुक्ति मिलती है। जो लोग पुस्तकों के अध्ययन से साधना करते हैं, उन्हें कोई लाभ नहीं होता। यह बात ठीक है कि निष्ठापूर्वक अध्ययन करने पर अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, पर मुक्ति के साधन प्राप्त नहीं होते। इसके लिए तो सद्गुरु के पास जाना ही पड़ेगा। इधर सद्गुरु को सर्वदा अपने शिष्यों का ख्याल रखना पड़ता है।''

श्री ताराशंकर चौधुरी ने अपनी पुस्तक में एक घटना का उल्लेख करते हुए यह बताया है कि सद्गुरु कैसे अपने शिष्यों का ध्यान रखते हैं। उन्होंने लिखा है—''एक बार जब मैं कलकत्ता में था तब तेज बुखार से पीड़ित हो गया। काफी दवा की गई, पर रोग दूर नहीं हो रहा था। अचानक मुझे गुरुजी की याद आई। वे हमेशा गाँजा पीते हैं। अगर एक चिलम गाँजा उनके नाम पर भोग लगा दूँ और शेष भाग को प्रसादरूप में ग्रहण कर लूँ तो मेरा रोग दूर हो जायगा। यह सोचकर चिलम-गाँजा मँगवाया। गुरुदेव को स्मरण कर गाँजा रख दिया। चिलम की आग भभक उठी। मैं समझ गया कि बाबा ने इसे ग्रहण कर लिया है। इसके बाद उसे पीने लगा। मैंने कभी गाँजा पिया नहीं था। आश्चर्य की बात यह रही कि न मैं खाँसा और न मेरा सिर चकराया। मेरा रोग छू-मन्तर हो गया।

''इस घटना के कुछ दिनों बाद बाबा का दर्शन करने वृन्दावन गया। एक दिन बाबा ने अचानक मुझे अपने कमरे में बुलाया। जाने पर देखा कि बाबा के आसपास कई लोग बैठे हैं। बाबा ने मुझसे कहा—''तुम भी जरा प्रसाद ले लो।''

वहाँ मौजूद भक्तों में किसी ने कहा—''क्या बंगाली बाबू गाँजा पीते हैं?''

बाबा ने कहा—"नहीं, बाबू गाँजा नहीं पीते। मगर बुखार आने पर मुझे स्मरण करते हुए गाँजे का भोग लगाते हैं और फिर प्रसाद ग्रहण करते हैं।"

यह बात सुनकर मैं आनन्द से विभोर हो उठा। अर्थात् कलकत्ते में जो भोग लगाया था, उसे बाबा ने ग्रहण किया था।

दूसरी ओर इसी गाँजे के कारण एक शिष्य को बारह वर्ष की सजा मिली थी। प्रेमदास जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है, बाबा के यहाँ भोजन बनाता था। आश्रम में व्यवहारकुशल होने के कारण सभी उसका आदर करते थे। जो आता, वही उसे गाँजा पिलाने लगता और वह पी लेता था। अत्यधिक गाँजा पीने के कारण उसका माथा गरम रहने लगा। जब देखो तब किसी न किसी पर बरस पड़ता था।

एक दिन स्वामीजी ने कहा—"आजकल तू बड़ा क्रोधी हो गया है। अकारण लोगों से झगड़ता है। आज से बारह साल तक तुझे मौन रहना पड़ेगा।"

बाबा का इतना कहना था कि प्रेमदास की जबान बन्द हो गई। लाख कोशिश करने पर भी वह बोल नहीं पाया।

इसी बीच एक दूसरे शिष्य पुष्करदास को भोजन बनाने की जिम्मेदारी दी गई। वस्तुत: यह शिष्य साधन-भजन करने नहीं बल्कि बाबा से रकम ऐंठने के चक्कर में था। उसे मौका नहीं मिल पा रहा था। वह देखता, बाबा के पास बड़े-बड़े राजा, धनी सेठ, सरकारी कर्मचारी आते हैं, काफी भेंट चढ़ाते हैं। आखिर वह सब रकम बाबा कहाँ रखते हैं? काफ़ी खोज करने पर भी उसे नहीं मिला। एकाएक उसके ख्याल में आया —हो न हो बाबा अपनी लकड़ीवाली लँगोटी के भीतर छिपाकर रखते हैं।

यहाँ एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि आखिर स्वामीजी का नाम रामदास काठिया बाबा क्यों पड़ा। आप निम्बार्क-सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा में ५४वें आचार्य थे।

इस सम्प्रदाय के बारे में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—"सनकादि महर्षियों को निगूढ़ ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देने के लिए भगवान् हंस के रूप में अवतीर्ण हुए थे। नारद हंसरूपी भगवान् के अनुचर हैं। निम्बार्क नारद के शिष्य और भगवान् के सुदर्शन-चक्र के अवतार थे। वे जयन्ती देवी के गर्भ से उत्पन्न अरुणि मुनि के औरस पुत्र थे। उनके शिष्य श्रीनिवास भगवान् के शंख के अवतार थे, ऐसी प्रसिद्धि है। उन्होंने निम्बार्क के 'वेदान्त-पारिजात सौरभ' नामक ब्रह्मसूत्र-भाष्य पर वेदान्तकौस्तुभ नाम से उत्कृष्ट टीका की रचना की थी। गुरु-परम्परा क्रम में देवाचार्य श्रीनिवास के नीचे हैं। वे भगवान् के पद्म के अवतार एवं सिद्धान्तजाह्नवी नामक ब्रह्मसूत्र-व्याख्या के रचयिता थे, जिस पर सुन्दर भट्ट ने 'सेतु' नामक टीका लिखी। इस सम्प्रदाय का मूल प्रामाणिक ग्रन्थ वेदान्त-पारिजात सौरभ है।"

इस सम्प्रदाय के ५०वें आचार्य थे—श्री इन्द्रदासजी महाराज, जिन्होंने सर्वप्रथम लकड़ी का लँगोट पहनना शुरू किया। उन्हीं दिनों से इस सम्प्रदाय के आचार्य काठिया बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए। निम्बार्क-सम्प्रदाय की विशेष ख्याति नहीं है, क्योंकि अपने आदर्शों के अनुसार इस सम्प्रदाय के साधुओं को कठोर तपस्या करनी पड़ती थी।

पुष्करदास की धन-पिपासा बढ़ती गई। उसने सोचा—बाबा तो कभी सोते नहीं। आखिर कैसे लँगोट की तलाशी ली जाय। एक दिन आश्रम में भाँग पीने का कार्यक्रम बना। पुष्करदास ने भाँग में संखिया मिलाकर बाबा तथा अन्य तीन साधुओं को पिला दिया। बाबा पर संखिया का असर नहीं हुआ। शेष तीनों व्यक्ति बेहोश हो गये। रामदास स्वामी ने सोचा—आश्रम में दुर्घटना होने पर पुलिस परेशान करेगी। तुरंत उन्होंने कमण्डल से जल निकालकर बेहोश व्यक्तियों पर छिड़का। तीनों होश में आ गये। कारण ज्ञात होते ही उन लोगों ने कहा—"यह आदमी हत्यारा है। इसे पुलिस के हवाले कर देना चाहिए।"

बाबा ने कहा—"यह व्यक्ति अपने कर्म का फल स्वयं ही भोगेगा। आप लोग होश में आ गये हैं, काफी है। बेकार बखेड़ा करने से क्या लाभ? साधु होकर पुलिस के निकट नहीं जाना चाहिए। फिर भी अगर आप जायेंगे तो मैं कहूँगा कि आप लोगों से अधिक भाँग मैंने पी है, मुझे तो कुछ नहीं हुआ। अब आप लोग जो उचित समझें—करें।"

इस घटना से भी पुष्करदास को अक्ल नहीं आई। आगे चलकर उसने स्थानीय चोरों से समझौता किया। एक बार रात को बाबा सो रहे थे। चोरों ने उनके ऊपर पत्थर फेंका ताकि उसके आघात से बाबा मर जायँ। इससे उनका केवल बायाँ हाथ घायल हो गया। इस हालत में भी वे दाहिने हाथ में लाठी लेकर मारने दौड़े। अपनी असफलता देखकर चोर भाग खड़े हुए। बाबा सारा रहस्य समझ गये, पर उन्होंने कुछ नहीं कहा। इधर बाबा को कुछ न कहते देख, वह भी अनजान बनकर अपना कार्य करता रहा।

तीसरी बार उसने रोटी में काफी मात्रा में संखिया मिलाया। हालत खराब देखकर भक्तों ने डॉक्टर को बुलाया। बाबा का पेट काफी फूल गया था, इसलिए डॉक्टर की राय के अनुसार उनका लँगोट काट दिया गया। बाबा के इस संकट का समाचार तार से कई जगह भेजा गया।

श्री ताराशंकर चौधुरी तार पाते ही वृन्दावन आये। यही चौधुरी आगे चलकर इस आश्रम के महन्त बने, जिनकी रचनाओं का विद्वत्‌जन उद्धरण देते हैं। आप उच्चकोटि के सन्त और विद्वान् थे। बाद में आपने अपना पूर्वनाम बदलकर सन्तदास बाबाजी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

आश्रम में आते ही आप सीधे बाबा के पास गये और कहा—"यहाँ के लिए रवाना होने के पूर्व मैं प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के पास गया था। बातचीत के सिलसिले में आपके बारे में बातें हुईं। उन्होंने कहा कि आपका शरीर सिद्ध है। आपको कोई रोग नहीं हो सकता। लगता है किसी साधु ने जहर दिया है। हो सकता है कि और कोई कारण हो।"

बाबा ने कहा—"महात्माजी कितने अलौकिक शक्तिवाले हैं, सोचो। कलकत्ता में रहते हुए उन्होंने मेरे बारे में जान लिया। बाबा पुष्करदास ने दो तोला संखिया खिला दिया। अब बूढ़ा हो गया हूँ, इसलिए कष्ट हुआ।"

चौधुरी ने कहा—"बाबाजी, निस्सन्देह आप महान् हैं। इतना बड़ा काण्ड होने पर भी आपने अभी तक रसोइए को निकाला नहीं। उसे आज ही भगा दीजिए।"

बाबा ने कहा—"उसका भ्रम मिट गया है। उसका ख्याल था कि बाबा लँगोट के भीतर अशर्फियाँ रखते हैं। लँगोट कट गया और खाली निकला तब उसका भ्रम दूर हुआ। उसे तुम निकाल दो।"

चौधुरीजी पशोपेश में पड़ गये। उनकी कठिनाई समझते ही बाबा ने कहा—"जाने दो। मैं ही उसे जाने को कह देता हूँ।"

तुरत पुष्करदास को बुलाया गया। उसके आने पर बाबा ने कहा—"पुष्करदास, तुम ठीक से रसोई नहीं बनाते। कभी रामरस अधिक दे देते हो और कभी मुझे जहर खिला देते हो। अब तुम यहाँ मत रहो। अपना काला मुँह लेकर कहीं चले जाओ।"

इस समय तक प्रेमदास का मौनव्रत समाप्त हो चला था। मौन रहने के कारण आश्रम में वे 'मौनी बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। समय पूरा होते ही घोषणा हुई कि कल मौनी बाबा का मौन-भंग होगा। इस खुशी में कल भण्डारा होगा।

दूसरे दिन भण्डारे के समय बाबा ने कहा—"मौनी, अब तुम बोल सकते हो। बोलो।"

प्रेमदास ने प्रयत्न करके कहा—"श्रीजी।" इसके बाद वह स्वाभाविक रूप से बोलने लगा। पुष्करदास के जाने के बाद पुनः मौनी बाबा को रसोई की जिम्मेदारी दी गई।

इसका यह अर्थ नहीं कि स्वामी रामदास बहुत उदार या क्षमाशील थे, पर जिसके चरित्र में परिवर्तन नहीं हो सकता, उसके लिए प्रयत्न क्यों किया जाय? ऐसे लोगों पर कृपा करना भी कृपा का अपमान होता है।

* * *

स्वामीजी एक ओर कितने क्षमाशील थे, इसका उदाहरण पुष्करदास की घटनाओं से मिलता है, वहीं कितने कठोर थे इसका प्रमाण प्रेमदास के जीवन से मिलता है जो बारह वर्ष तक गूँगा बना रहा। इसी प्रकार की कसौटी पर गरीबदास को भी रगड़ा गया था। गरीबदास का उल्लेख इसके पूर्व किया जा चुका है।

स्वयं स्वामी रामदास ने कहा है—"गरीबदास को जानने के लिए मैं उसके साथ कठोर व्यवहार करता था। मेरे अत्याचारों को सहन करते हुए वह निरन्तर मेरी सेवा करता था। मैं चोरी-छिपे रसोईघर में जाकर उसकी बनाई चीजों को उलट-पुलट देता था और जब वह आता तब अन्य लोगों के सामने फटकारा करता था। लेकिन गरीबदास कभी संयमच्युत नहीं हुआ। बिना कोई जवाब दिये पुनः सुधार-कार्य में लग जाता था। एक बार तो उसने अपने धैर्य का अपूर्व परिचय दिया। ब्रज-परिक्रमा करते समय वह काफी सामान लादकर चलता था। गन्तव्य स्थान पर पहुँचकर उसे ४०-५० आदमियों का भोजन बनाना पड़ता था। सभी को खिलाने के बाद सबसे आखिर में भोजन करता था। एक दिन मैंने सोचा कि आज इसके धैर्य की आखिरी परीक्षा लूँगा। मुझे यह मालूम था कि कड़ी धूप में इतनी दूर पैदल बोझा लेकर आया है। तुरत वह ४०-५० व्यक्तियों के भोजन बनाने में जुट गया है। आज उसका वायु-पित्त जरूर खराब हुआ होगा। मेरे बिगड़ने पर निस्सन्देह क्रुद्ध होगा। यही सब सोचता रहा। भोजन तैयार हो जाने पर मुझे

बुलाया गया। सभी साधुओं के लिए वह मोटी-मोटी रोटियाँ बनाता था। केवल मेरे लिए पतली-पतली बनाता था। बाहर प्रचण्ड गर्मी और भीतर चूल्हे की गर्मी से उसका मिजाज जरूर गर्म होगा।

''आसन पर बैठने के बाद मैंने रोटी हाथ में ली और उसे दूर फेंक दिया। कहा—''मेरे लिए कच्ची रोटियाँ बनाता है?'' केवल इतना कहकर मैं चुप नहीं रहा। लाठी से उसके सिर पर मारा। तुरत रक्त बहने लगा और दर्द से वह कराहने लगा। कुछ ही पल बाद वह उठा और मेरे चरणों पर सिर रखते हुए बोला—''भगवन्, मुझसे अपराध हो गया है। क्षमा करें।''

उसके इस विनय से मुझे अपार पीड़ा हुई। रोटी ठीक बनी थी। गरीबदास को अकारण मारने की वजह से बड़ी ग्लानि हुई। लगातार कई दिनों तक मैं ठीक से भोजन नहीं कर सका। गरीबदास के धैर्य को देखकर मेरा मन प्रसन्न हो गया। इस घटना के बाद से सर्वाधिक प्रेम मेरा गरीबदास पर बना रहा।

* * *

वस्तुतः रामदास काठिया बाबा एक ऐसे योगी पुरुष थे जिनकी तुलना शिशुओं से की जा सकती है। बच्चों की तरह नटखटपन करना और दूसरे ही क्षण चिरशत्रु को क्षमा कर देना उनकी विशेषता थी। उनकी दृष्टि में राजा-रंक समान थे। यहाँ तक कि चोर-डाकू भी बाबा के पास आते थे जिन्हें दूसरे ढंग से उपदेश देते थे ताकि अपराधों के प्रति उनके मन में घृणा उत्पन्न हो।

स्वामीजी दूर-दूर तक निवास करनेवाले भक्तों का भी ख्याल रखते थे। उनका कहना था कि सत्य और निष्ठा के साथ कार्य करो। असत्य से लाभ उठाने का प्रयत्न मत करो।

बाबा के एक बंगाली शिष्य थे—श्री अभयचरण। एक बार अभयचरणजी अपने एक मित्र के अनुरोध पर उनके यहाँ गये। गर्मी का मौसम। सूखी पहाड़ियाँ दिनभर में तप गई थीं। मित्र महोदय रेलवे स्टेशन के सहायक स्टेशन मास्टर थे। रेलवे क्वार्टर में असह्य गर्मी थी। अभयचरण एक पेड़ के नीचे खटिया बिछाकर सो गये। दूर-दूर तक कहीं भी आदमी नजर नहीं आ रहे थे। अचानक अभयचरण ने महसूस किया कि सिरहाने कोई पंख झल रहा है। चौंककर उधर देखा तो गुरुदेव को देखा। झट उठकर प्रणाम करने गये तो वे गायब हो गये। रातभर में तीन बार ऐसी घटनाएँ हुईं।

यही अभयबाबू कलकत्ता में कागज का व्यवसाय करते थे। इनके कई साझेदार थे। एक बार व्यवसाय में काफी घाटा हो गया। कर्ज के बोझ से तंग आकर कलकत्ता से चल दिये। कई जगह घूमते हुए वे अयोध्या आये। कर्ज के बोझ के कारण मन अशान्त था। दिन-रात भगवान् से मनाते थे कि कर्ज से मुक्ति मिल जाय। लेकिन कहीं से कुछ नहीं हो रहा था। अचानक उनके मन में आया—पूजा-पाठ, दर्शन-भक्ति सब बेकार है। कल सरयू नदी में डूबकर आत्महत्या कर लूँगा। सारा झंझट समाप्त हो जायगा।

इसी चिन्ता में खोये हुए थे कि सहसा आपके सामने गुरुदेव प्रकट हुए और बोले—''इस तरह सोते रहने पर भगवान् मिलेंगे? तुम्हें नाम-मन्त्र दिया है, उसका जप क्यों नहीं करते? क्या भगवान् यों ही चले आयेंगे?''

इस फटकार को सुनते ही अभयबाबू को होश आया। वे बिछौने पर बैठकर मन्त्र जपने लगे। कुछ देर बाद उन्हें दर्शन हुआ। देर तक उस ज्योति का दर्शन करते रहे। फिर धीरे-धीरे वह ज्योति गायब हो गई तब वे स्वाभाविक रूप में आये।

अयोध्या से अभयचरण वृन्दावन आये। यहाँ गुरुदेव के दर्शन हुए। उन्होंने कहा—''भगवान् हैं अब विश्वास हुआ? अब तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं। चाहे घर पर रहो या अन्यत्र, आज से कर्ज के लिए तुम्हें कोई तंग नहीं करेगा। अब तुम निश्चिन्त होकर अपने घर जा सकते हो। तुम्हारे साझेदार अब सहयोग देंगे।''

अक्सर काठिया बाबा कहा करते थे कि परोपकार करने के लिए ही सन्त शरीर धारण करते हैं। लेकिन यह परोपकार जागतिक न होकर पारमार्थिक होना आवश्यक है, तभी जीवन सार्थक होता है। इसके लिए साधन-भजन और गुरु-कृपा अनिवार्य है। मोह-बन्धन से मुक्त होने पर ही मुक्ति मिलती है।

* * *

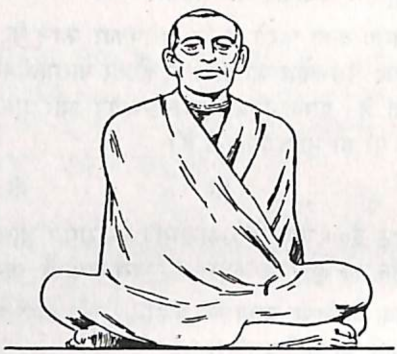
जनवरी, सन् १६०६ ई०। एक दिन अर्द्धरात्रि के समय बाबा सोते हुए उठ गये और रामफल नामक सेवक को बुलाकर कहा—''प्यास लगी है, जरा पानी दे।''

पानी पीने के बाद काठिया बाबा ने कहा—''तेरे हाथ का पानी पी लिया रामलाल। अब तू सो जा। मैं भी जाऊँगा।''

रामलाल उनींदी स्थिति में था। बाबा के कहने का आशय वह समझ नहीं सका। वह अपनी जगह पर जाकर सो गया।

भोर के समय काशीदास नामक एक साधु की नींद खुली तो उसने देखा—एक अपूर्व ज्योति से सारा आश्रम जगमगा रहा था। यह क्या था, जानने के लिए बाबा की कुटिया के पास गया तो देखा—बाबा चिरनिद्रा में लीन थे।

■ ■ ■



राम ठाकुर

अविभक्त बंगाल ने अनेक सन्तों को जन्म दिया है। तन्त्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी और राम ठाकुर इसी मिट्टी की देन हैं। बांगला देश के एक जिले का नाम है—फरीदपुर। इसी जिले में डिंगामानिक गाँव में श्री राधामाधव चक्रवर्ती सपत्नीक रहते थे। चक्रवर्ती महाशय अपने युग के श्रेष्ठ तान्त्रिक थे। आपके गुरु थे—तन्त्राचार्य मृत्युंजय।

प्रात:क्रिया से निवृत्त होकर चक्रवर्ती महाशय अपने नित्य के नियमानुसार साधना के लिए जब पंचवटी की ओर रवाना होने लगे तब पत्नी कमलादेवी ने कहा—''आज अभी न जाओ तो अच्छा होगा। लगता है कि कुछ देर बाद प्रसव होगा।''

चक्रवर्ती महाशय ने एक बार प्रसव-पीड़ा से कातर पत्नी की ओर देखते हुए न जाने क्या सोचा और फिर कहा—''चिन्ता की बात नहीं है। भगवत्-कृपा से मंगल ही होगा। मुझे रोको मत। मैं पोखर-स्थित चमारिन को खबर कर देता हूँ।''

इतना कहकर राधामाधव घर से बाहर निकल पड़े। गाँव के तालाब के किनारे चमारों की बस्ती में आकर उन्होंने एक परिचित चमारिन से सारी बातें कहने के बाद कहा—''तुम मेरे यहाँ जल्द चली जाओ। जो उचित व्यवस्था हो करो। मैं पंचवटी पूजा करने जा रहा हूँ।''

इसके बाद राधामाधव बिना एक क्षण देर किये पंचवटी चले गये। समयानुसार कमलादेवी को प्रसव हुआ। चमारिन को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सन्तान के स्थान पर

जच्चा ने एक थैली को प्रसव किया। नाल काटने की जरूरत नहीं पड़ी। थैली को इधर-उधर देखने के बाद उसने घर के पिछवाड़े बकुल वृक्ष के नीचे कूड़े में फेंक दिया।

थोड़ी ही देर में कई शृगाल आकर वहाँ शोर मचाने लगे। अचानक न जाने क्या हुआ कि एक शृगाल उस थैली को मुँह में दबाकर तेजी से पंचवटी की ओर चल पड़ा। उसके सभी साथी भी साथ-साथ दौड़ने लगे। वह शृगाल उस स्थान पर आकर रुक गया जहाँ राधामाधव ध्यानस्थ थे। शृगालों का कोलाहल सुनते ही उनका ध्यान भंग हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने उस थैली को स्पर्श किया। अचानक शिशु के रोदन-स्वर को सुनकर वे चौंक उठे।

राम ठाकुर ने अपने भक्तों से अपनी जन्म-कहानी सुनाते हुए कहा था—''मेरे जन्म के समय किसी पुरुष या नारी द्वारा नाल नहीं काटा गया था। मातृरूपिणी शिवा (शृगाल) द्वारा पंचवटी जैसे सिद्धस्थान में मैं भूमिष्ठ हुआ था। सन्तान जब रोने लगती है तब वही लगन का समय माना जाता है।''

राम ठाकुर के कथनानुसार उनका जन्म १ फरवरी, सन् १८६० ई० में हुआ था। उस थैली में जुड़वाँ बच्चे थे। एक का नाम राम और दूसरे का लक्ष्मण रखा गया।

राम और लक्ष्मण अपनी माँ की ममता और पिता की छत्रछाया में पलते रहे। लेकिन यह सौभाग्य अधिक दिनों तक उन्हें प्राप्त नहीं हो सका। अभी जीवन के आठ वसन्त वे देख पाये थे कि सहसा पिताजी का निधन हो गया। दोनों अनाथ बच्चों को लेकर माँ किसी तरह चार वर्ष तक गृहस्थी की नौका खेती रही। ठीक इन्हीं दिनों दो घटनाएँ हुईं।

पति के निधन के बाद घर में अभाव बढ़ता गया। दिन-प्रतिदिन स्थिति खराब होती जा रही थी। माँ ने सोचा—अगर अब ये कुछ नहीं करेंगे तो सभी को अनाहार रहना पड़ेगा। दूसरे ओर इन दुधमुँहे बच्चों को नौकरी करने को कहने में कलेजा मुँह को आने लगा था। काफी ऊहापोह करने के बाद माँ ने अपने बेटों से सारी समस्या कहने के बाद कहा—''शीघ्र कोई प्रबन्ध करो।''

दोनों बच्चे अभी पाठशाला में अपनी पोथी समाप्त नहीं कर पाये थे कि उन्हें माँ के आदेश पर जीविका की खोज में घर से बाहर निकलने के लिए मजबूर होना पड़ा। आसपास काफी दौड़-धूप करने पर भी राम अपने लिए कोई नौकरी जुटा नहीं सका।

एक दिन थका-माँदा घर पर आकर सो गया। स्वप्न में उसने देखा कि एक महात्मा उसके पास आये। उनके कानों में एक नाम बताते हुए कहा—''इस नाम का जप करते रहो। तुम्हारा सारा संकट दूर हो जायगा। जीवन सुखी होगा।'' और भी न जाने क्या-क्या कहते रहे। अपनी बातें कहने के पश्चात् महात्माजी जब वापस जाने लगे तब राम उनके पीछे-पीछे दौड़ा और गिर पड़ा। तभी उसकी नींद उचट गई।

राम ठाकुर ने उठकर देखा—कहीं कोई नहीं, पर मन्त्र-नाम याद है। पिता पंचवटी में पूजा और ध्यान किया करते थे, इतना वह माँ से जान-सुन चुका था। न जाने क्यों उसे इस स्वप्न पर विश्वास हो गया। उसने निश्चय किया कि आज से इस मन्त्र का

जप करूँगा। सम्भव है, परिवार का संकट दूर हो जाय। अगर दूर नहीं होता तो अपना क्या जाता है। ब्राह्मण का पुत्र हूँ, भगवान् का नाम लेने से कल्याण ही होगा। बालक राम की इसी आस्था ने उसे बचपन में ऐसी शक्ति दी।

चारों ओर से निराश होने के बाद एक दिन राम ठाकुर नौकरी की तलाश में भटकता हुआ नोआखली शहर आया। दो दिन से कुछ खाने को नहीं मिला था। शरीर लस्त हो गया था। अपरिचित स्थान होने के कारण और भी भयभीत-सा था। ठीक इसी समय एक राह-चलते भद्र पुरुष को देखकर उसने पूछा—''क्या यहाँ कोई छोटा-मोटा कार्य मिल सकता है, जहाँ रहने और भोजन की सुविधा प्राप्त हो।''

उक्त सज्जन ने गौर से राम ठाकुर की ओर देखा और तब पूछा—''तुम्हारी जाति क्या है?''

''मैं ब्राह्मण हूँ।''

उक्त सज्जन ने कहा—''मैं तुम्हें कोई नौकरी वगैरह नहीं दिला सकता। रहने और भोजन की सुविधा जरूर दे सकता हूँ। इसके बदले तुम्हें मेरे यहाँ भोजन बनाना पड़ेगा। अगर यह शर्त मंजूर हो तो मेरे साथ चलो।''

डॉ० गोपीनाथ कविराजजी ने लिखा है—''राम ठाकुर उस समय स्थानविशेष में पाचक ब्राह्मण का कार्य करते थे। बंगला में पाचक ब्राह्मण को 'ठाकुर' कहा जाता है। यह पदवी इनके वास्तविक नाम रामचन्द्र चक्रवर्ती के साथ जुड़ गई थी।''

'मरता क्या न करता' कहावत के अनुसार इस समय राम ठाकुर को आश्रय की आवश्यकता थी। यहाँ कार्य करते हुए वे शेष समय स्वप्न में प्राप्त मन्त्र-जप करते रहे। अचानक यहाँ एक ऐसी दुर्घटना हो गई जिसके कारण ठाकुर को यहाँ से भी भागना पड़ा। एक प्रकार से उसके लिए यह अच्छा ही हुआ। उसके सौभाग्य का द्वार खुल गया।

*   *   *

घूमते हुए वे कामाख्या मन्दिर में आये। यहीं उन्होंने सर्वप्रथम प्रत्यक्ष रूप में अपने गुरुदेव का दर्शन किया। कविराजजी ने लिखा है—''ठाकुर महाशय को सिद्धमन्त्र का लाभ बाल्यावस्था में ही हो गया था। जब ये बारह वर्ष के थे तब कामाख्या में गुरु अनंगदेव से भेंट हुई। गुरुदेव विदेही थे। रक्त-मांस का शरीर नहीं था। उनके साथ अन्तर्धान हो गये।

ठाकुर महाशय के गुरुदेव एक दिव्य अलौकिक पुरुष थे। उनकी अवस्था के बारे में कोई कुछ बता नहीं सकता था। अन्तरंग शिष्यों के अनुसार उनका नाम अनंगदेव था। अपनी भक्त-मण्डली के साथ वे आकाश-मण्डल में संचरण करते थे। यदाकदा वे इनके पास भी किसी विशेष प्रयोजनवश मण्डली-सहित आते थे। यह विशेष प्रयोजन जहाँ तक मैंने सुना है, किसी साधक को दीक्षा देना होता था। इनकी गुरु-परम्परा में 'दीक्षा' शब्द का कुछ विलक्षण तात्पर्य था। सामान्यतया साधन-मार्ग में चलने के लिए इनके यहाँ 'नाम' का उपदेश होता था। दीक्षा बिरलों को मिलती थी। सहस्र-सहस्र शिष्यों में से दो-चार ही दीक्षा प्राप्त कर पाते थे। मैंने सुना था कि इनके यहाँ दीक्षा-प्राप्ति

के साथ ही देह का परिवर्तन हो जाता था। केवल इतना ही नहीं, शिष्य इस अभिनव देह को लेकर गुरु की मुक्त-मण्डली में सम्मिलित हो जाता था। अनंगदेव स्वयं दीक्षा नहीं देते थे, उनके आदेश से ठाकुर महाशय को अपने भक्त-मण्डल से तिरोहित होना पड़ता था। किन्तु इनका जाना और लौट आना किसी के देखने में नहीं आता था।''

राम ठाकुर कामाख्या से अपने गुरु के साथ अज्ञात स्थान की रवाना हुए। यह सन् १८७२ ई० की घटना है। हिमालयस्थित अनेक आश्रमों में उन्होंने सन्तों के दर्शन किये। कौशिक आश्रम में आने पर उन्होंने गुफा के भीतर अनेक सन्तों को देखा। उनके बारे में प्रोफेसर दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य ने लिखा है—''इन सन्तों के हाथ-पैर तथा शरीर के अन्य अंगों के मांस जगह-जगह फट गये थे। कुछ लोगों की जटाएँ सिर से खिसककर नीचे गिर गई थीं। वे लोग इतने लम्बे थे कि सभी आसन पर बैठे थे और राम ठाकुर खड़े थे, पर वे उनकी लम्बाई के बराबर नहीं थे। उन सन्तों का चेहरा काफी बड़ा था। आँखें मांस से ढँकी हुई थीं। पुतलियाँ शेर की आँखों की तरह चमक रही थीं। ये लोग कितने युगों से यहाँ विराजमान हैं, इसका अन्दाजा लगाना कठिन है। राम ठाकुर के कथनानुसार इन लोगों ने कायाकल्प नहीं कराया था। अगर वे लोग ऐसा करते तो उनके शरीर का रंग-रूप अन्य प्रकार का होता। वस्तुतः तपोबल से उनका शरीर चैतन्यमय हो गया था। उनका कभी देहपात नहीं होगा।''

इस सम्बन्ध में एक बार एक शिष्य ने अपनी शंका प्रकट करते हुए पूछा था—''हिमालय की चप्पे-चप्पे भूमि पर जब मानव के चरण पड़ चुके हैं तब ऐसा अद्भुत आश्रम और ऐसे लोग कहाँ छिपे बैठे हैं?''

राम ठाकुर ने कहा—''मैंने अपनी आँखों से ऐसे सन्तों को देखा है, ऐसी हालत में कैसे मैं अविश्वास करूँ? सम्पूर्ण हिमालय रहस्यमय भूमि है। केवल उच्च साधक ही ऐसे स्थानों पर पहुँच सकते हैं और वे ही ऐसे महान् सन्तों के दर्शन पा सकते हैं। हिमालय में मानसरोवर से काफी आगे उत्तर दिशा में योगाश्रम है। यहाँ कोई मन्दिर नहीं है। पत्थर के चार खम्भों से घिरे स्थान पर स्फटिक का एक शिवलिंग है जिसमें से अनवरत प्रकाश निकलता है। आश्चर्य की बात यह है कि इस शिवलिंग की पूजा एक महिला करती है।''

इस स्थान के बारे में कविराजजी ने भी उल्लेख किया है—''शिवलिंग के समीप थोड़ा ऊपर एक आसन था जिस पर ध्यानस्थ मुनि बैठे थे। उज्ज्वल शान्त मूर्ति। उनकी ओर अनिमेष रूप में एक देवी मूर्ति देख रही है। मुनि का मुख-मण्डल जटा से आच्छादित था। अपूर्व सौन्दर्य था। कुमारी साक्षात् गौरी थी। ठाकुर महाशय वहाँ पाँच दिन थे। आश्रम से थोड़ी दूर नीचे एक पहाड़ी सोता था वहीं से जल लाते थे। आश्रम में प्रतिदिन पुष्पाभूषणयुक्त एक द्वादश वर्षीया बालिका आकर नृत्यगान करती हुई शिवगौरी को एक पुष्पमाला पहनाती थी। उस दिव्य कुमारी का ये नित्य दर्शन करते थे। शाम हो जाने के बाद वह गायन करती हुई लौट जाती थी। उसके गीत की भाषा पहाड़ी थी, इसलिए इनकी समझ में नहीं आती थी। ठाकुर महाशय का कहना था कि इस आश्रम जैसा रमणीक वातावरण इस संसार में कहीं देखने में नहीं आया। यहाँ से आगे बढ़ने पर

चार व्यक्तियों के साथ एक सुदीर्घ एवं अन्धकारपूर्ण पहाड़ी सुरंग पार करके कई दिनों तक यात्रा करते हुए वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ न दिन मालूम पड़ता था, न रात। गोधूलि के समान एक मृदु आलोक निरन्तर छाया रहता था। कुछ समय तक वहाँ ठहरने के पश्चात् इन्हें अनुभव हुआ कि वह प्रकाश कहीं बाहर से नहीं आ रहा है। कुछ आगे बढ़ने पर इन्होंने एक घोर अन्धकारपूर्ण स्थान में एक दीर्घकाय महापुरुष को बैठे देखा। वह मन्द प्रकाश उन्हीं के शरीर से विकीर्ण हो रहा था।

उक्त प्रकाश के अतिरिक्त वह स्थान पूर्णतया तिमिराच्छन्न था। उस खोह से बाहर निकलने पर इन्हें सूर्य का प्रकाश प्राप्त हुआ। इनका अनुमान था कि उक्त सुरंग दक्षिण से पर्वत भेदकर उत्तर की ओर गई है। सुरंग पार करके इन्होंने एक ऊँचे शृंग पर आरोहण किया, जिसके नीचे कौशिकी पर्वतमाला थी।

अन्तर की आवाज से वे वहाँ से उतरकर कौशिकी आश्रम आये। यह अत्यन्त रमणीक स्थान था। कमल के आकार जैसा काफी विस्तृत था। इसके चारों ओर बर्फ ही बर्फ दिखाई दे रही थी। आश्चर्य की बात यह थी कि आश्रम के भीतर बर्फ नहीं थी। वहाँ की भूमि शिलामय थी। उसके नीचे एक नदी बड़े वेग से बह रही थी जिसका नाम मन्दाकिनी था। इसे पार करना कठिन था। शिलाखण्डों पर सम्हलकर पैर रखते हुए पार होना पड़ता था। आश्रम में नाना प्रकार के फूलों और फलों के वृक्ष थे। उस प्रकार के फल भारत में कहीं नहीं मिलते। इस आश्रम में तेरह आसन लगे हुए थे। इस तेरह आसनों में से दस आसन इस प्रकार विन्यस्त थे कि व्यवधान के कारण उन पर बैठे व्यक्ति परस्पर एक-दूसरे को देख नहीं सकते थे। शेष तीन आसन उनके सम्मुख थे और ऐसे लगे थे कि दसों आसनों पर बैठे व्यक्तियों को देख सकते थे। ठाकुर महाशय ने पहले दस आसनों पर बैठे व्यक्तियों को देखा था। वे सभी निस्पन्द पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चेष्ट एवं प्रसन्न मुद्रा में थे। उनके दोनों हाथ नीचे थे। उनकी त्वचा पत्थर की भाँति कर्कश और कहीं-कहीं फटी थी। किसी-किसी की जटा खुलकर कन्धे पर लटक रही थी। वे लोग इतने दीघकाय थे कि उनके बैठे होने की स्थिति में भी ठाकुर महाशय को माला पहनाने के लिए पत्थर रखकर खड़ा होना पड़ा था। उनकी आँखें पलकों के लटकते हुए चमड़े से ढँकी थीं। नेत्रगोलक के भीतर छह इंच से अधिक की गहराई में पुतलियाँ चमकती हुई दिखाई देती थीं। उनके मुख-मण्डल पर लाली थी। वे कितने युगों से यहाँ बैठे थे, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता।

मैंने ठाकुर महाशय से पूछा—"क्या इन्होंने अपना कायाकल्प कराया था?"

उन्होंने कहा—"नहीं, कायाकल्प करने से शरीर नवीन हो सकता है, स्थायी नहीं। तपस्या के प्रभाव से इनका शरीर चिन्मय हो गया था।"

शेष तीन आसन खाली थे। वे महापुरुष प्रयोजन के अनुरोध से जगत्-कल्याण के लिए निम्न भूमि में चले गये थे। इस आश्रम में राम ठाकुर पन्द्रह दिन रहे। नियमित रूप से उन महात्माओं की सेवा फल-मूल-नैवेद्य से करते थे। सन्ध्या को फलाहार रख जाते थे। दूसरे दिन प्रातःकाल सेवा में उपस्थित होने पर इन्हें छिलके पड़े मिलते थे। सोलहवें दिन प्रत्येक महापुरुष को साष्टांग दण्डवत् करते हुए इन्होंने बिदा ली। प्रणाम करने पर

उन प्रस्तरवत् तपस्वियों ने हाथ उठाकर अभय मुद्रा प्रदर्शित कर आशीर्वाद दिया। ठाकुर महाशय को अपने इस पन्द्रह दिवस के सम्पर्क-काल में इन महापुरुषों के शरीर में यही एकमात्र स्पन्दन दिखाई दिया। इस आश्रम की स्थिति के बारे में उन्होंने कहा था कि यहाँ से मानसरोवर बहुत दूर है। मैंने जिज्ञासा की—''संसार के अनेक प्रसिद्ध यात्रियों ने मानसरोवर के आसपास का सारा प्रदेश छान डाला, किन्तु उनमें से किसी ने भी अपने यात्रा-विवरण में आपके द्वारा निर्दिष्ट इन दोनों आश्रमों तथा उनमें रहनेवाले तपस्वियों का उल्लेख नहीं किया है। इसका कारण क्या हो सकता है?''

ठाकुर महाशय ने कहा—''ये दिव्य आश्रम सहज ही गोचर नहीं हैं। योगसिद्ध देहधारी ही इनका सन्धान पा सकते हैं।''

* * *

ठाकुर महाशय की प्रकृति अत्यन्त नम्र और विनयशील थी। गले में तुलसी की माला, हरिनामी ऊर्ध्व वस्त्र तथा प्रसन्नता से मण्डित आकृति, दर्शकों के हृदय में आध्यात्मिक ज्योति विकीर्ण करती थी। ये विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे। अक्षर-ज्ञान अत्यन्त साधारण था। किसी तरह बंगला की सामान्य पुस्तकें पढ़ लेते थे और पत्र-व्यवहार कर लेते थे। विनीत तो इतने थे कि आगन्तुक का हाथ उठने के पहले ही उसे प्रणाम करते थे। इतने विनम्र और कम पढ़े-लिखे होने पर भी इनका ज्ञान अपरिसीम था और साधन-मार्ग में प्राप्त वैशिष्ट्य अनन्यसाधारण। भोजन तो करते ही नहीं थे। सामान्य दो-एक फल से इनकी क्षुधा तृप्त हो जाती थी।''

राम ठाकुर को १२ वर्ष की अवस्था में गुरुदेव मिले और वे अपने साथ पूरे ३५ वर्ष तक रखे रहे अर्थात् सन् १८७२ ई० से सन् १९०७ तक। इसके बाद गुरुदेव ने उन्हें वापस भेज दिया। मार्ग में उन्होंने देखा कि एक कोढ़ी एक वृक्ष के नीचे लेटा जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। उसके सड़े अंग से दुर्गन्ध निकल रही है। दयामय राम ठाकुर उसके पास बैठकर उसके बदन से कीड़े निकालने लगे।

कुछ देर तक वे इस तरह कीड़े निकालते रहे। सहसा गुरुदेव की आवाज आई—''इस तरह कब तक कीड़े निकालते रहोगे?''

''फिर?''

गुरुदेव ने किसी वृक्ष की पत्तियों का रस शरीर पर पोतने का आदेश देते हुए कहा—''इससे ठीक हो जायगा।''

थोड़ी देर में रोगी के शरीर के सभी घाव ठीक होने लगे। इसके बाद पुनः गुरुदेव ने किसी अन्य वृक्ष की पत्तियाँ देते हुए कहा—''इन पत्तियों को इसके बदन पर फेरते रहो।''

देखते ही देखते गुरु-कृपा से रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गया। कोढ़ के सभी दाग मिट गये। गुरुदेव ने राम ठाकुर से कहा कि अब सीधे घर चले जाओ। इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

एक अर्से के बाद बेटे को वापस आते देख माँ हर्ष से विभोर हो उठी। पूरे पैंतीस वर्ष बाद लौटा हैं। जब नौकरी के सिलसिले में गया था तब नन्हा-सा था और अब तो प्रौढ़ हो गया है।

राम ठाकुर ने देखा कि घर की स्थिति वही है जो यहाँ से नौकरी की तलाश में जाने के समय थी। कुछ देर के लिए उन्हें कष्ट हुआ। एकाएक उन्होंने निर्णय किया कि माँ को बुढ़ापे में कष्ट न हो, इसके लिए उन्हें पुनः नौकरी की तलाश करनी होगी।

इस निश्चय के बाद वे पुनः नोआखाली शहर में आये और एक इंजीनियर के यहाँ पाचक का कार्य करने लगे। खाली समय में गुरुदेव के आज्ञानुसार साधना करते रहे। सहसा इनके मालिक इंजीनियर को जब मालूम हुआ कि राम ठाकुर साधारण पाचक नहीं, बल्कि उच्च स्तर के साधक पुरुष हैं तब उन्होंने पाचक-कार्य से उन्हें हटाकर अपने विभाग में नौकरी दिला दी।

कुठ दिनों बाद राम ठाकुर की बदली (तबादला) फेनी में हो गया। उन दिनों बंकिमचन्द्र चटर्जी के घनिष्ठ मित्र बंगाल के सुप्रसिद्ध कवि नवीनचन्द्र सेन वहाँ डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। आपने राम ठाकुर के बारे में 'आमार जीवन' में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का जिक्र किया है। लोगों की जबानी उन्होंने सुना कि राम ठाकुर कमरे में पूजा करते-करते अचानक गायब हो जाते हैं। किसी ने बताया कि उन्हें लाल चन्दन लगाये पेड़ से उतरते देखा है।

* * *

राम ठाकुर चन्द्रनाथ दर्शन करने के लिए चतुर्दशी को जाना चाहते थे। उन्होंने ओवरसियर के पास छुट्टी के लिए आवेदन-पत्र भेजा। उसने यह लिखकर कि इंजीनियर साहब निरीक्षण के लिए आनेवाले हैं। इसलिए छुट्टी नहीं दी जायगी—आवेदन-पत्र वापस कर दिया। चतुर्दशी के दिन बड़े दुःखी मन से काम पर जाने की तैयारी करने लगे। राम ठाकुर ने गुरुदेव से कहा था कि चतुर्दशी के दिन चन्द्रनाथ में आपके श्रीचरणों का दर्शन करूँगा, पर इस बाधा से मुक्ति कैसे मिलेगी। इन्हीं बातों का चिन्तन कर रहे थे कि अचानक तार आया जिसमें इंजीनियर के न आने की सूचना थी। राम ठाकुर की छुट्टी मंजूर हो गई।

तुरत वे चन्द्रनाथ की ओर रवाना हो गये। यह चमत्कार गुरु-कृपा से हुआ है, यह समझते उन्हें देर नहीं लगी। इस प्रसन्नता में वे उल्टी दिशा की ओर रवाना हुए। काफी दूर आने के बाद उन्हें होश आया कि वे उल्टी दिशा में चले आये हैं। अब आज चन्द्रनाथ पहुँचना सम्भव नहीं।

बड़े सन्तप्त हृदय से एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। ठीक इसी समय एक संन्यासी ने आकर पूछा—"क्या आप चन्द्रनाथ दर्शन करने जा रहे हैं?"

राम ठाकुर ने कहा—जी हाँ, पर आज अब कैसे पहुँच सकता हूँ। भ्रमवश उल्टी दिशा की ओर आ गया।"

संन्यासी ने कहा—"चिन्ता की बात नहीं है। सामने की पहाड़ी के भीतर से चलने पर हम शाम के पहले ही चन्द्रनाथ पहुँच जायेंगे।"

इतना कहकर उन्हें साथ ले संन्यासी महाराज चल पड़े। फेनी से ३० मील और यहाँ से ४० मील दूर चन्द्रनाथ था। रात को वहाँ दर्शन आदि करने के बाद सबेरे संन्यासीजी पुनः फेनी के पास एक जंगल में इन्हें छोड़ गये। यहीं पर उनकी मुलाकात कार्यालय के एक चपरासी से हुई। इस चपरासी के माध्यम से इस घटना का प्रचार हुआ।

कवि नवीनचन्द्र ने स्वयं एक बार एक अद्भुत दृश्य देखा। वे अपने कमरे में बैठे थे। सहसा उन्होंने देखा कि उनके सामने राम ठाकुर मुँह लटकाये बैठे हैं। किधर से कब आये, यह बात उनकी समझ में नहीं आई। अगर दरवाजे से आते तो सामने वे जरूर दिखाई देते। पर ऐसी घटना नहीं हुई। उन्होंने उस समय राम ठाकुर से कुछ नहीं कहा। बाद में नवीनचन्द्र के सामने एक सज्जन ने इसी तरह का प्रश्न किया था—"क्या कोई मनुष्य शून्य मार्ग से यात्रा कर सकता है?"

ठाकुर महाशय ने कहा—"हाँ, जिस मार्ग से विद्युत् चल सकती है, मनुष्य उसी मार्ग से सभी वस्तुएँ साथ लेकर उसी प्रकार चल सकता है। इतना ही नहीं, एक ही समय में वह विभिन्न स्थानों में उपस्थित हो सकता है।"

गुरु के आदेश पर इस प्रकार की योग-विभूतियों का प्रदर्शन उन्हें कभी-कभी करना पड़ता था। राम ठाकुर के एक प्रिय भक्त थे—श्री इन्दुभूषण बनर्जी। आपने अपने गुरु की कई योग-विभूतियों का उल्लेख किया है।

एक बार आपका एक छोटा बच्चा शाम को कहीं खो गया। घर के लोग परेशान होकर चारों ओर दौड़-धूप करने लगे। उन दिनों पास ही अन्य भक्त के यहाँ राम ठाकुर ठहरे हुए थे। उन्हें समाचार दिया गया। उन्होंने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। लड़का मिल जायगा।"

माँ-बाप को इस आश्वासन पर सन्तोष नहीं हुआ। अखबारों में विज्ञापन दिया गया। थाने में रिपोर्ट की गई। दूसरे दिन एक सज्जन ने आकर कहा—"अखबार में विज्ञापन पढ़कर आया हूँ। आपका बालक अमुक थाने में है। दरअसल कल शाम को वह बालक मुझे खोया-खोया सा दीखा। पूछने पर पता चला कि घर भूल गया है। पता बता नहीं सका। आखिर कहाँ ले जाता?"

लोग तुरत उस बालक को थाने जाकर ले आये। जब उससे पूछा गया कि तू इतनी चौड़ी सड़कें कैसे पार करता था तब उसने कहा—"रास्ते में ठाकुर तो बराबर मेरे साथ थे। वही इधर से उधर सड़क पार कराते थे। उनके साथ रहने पर मुझे जरा भी डर नहीं लगा।"

इसी प्रकार एक बार अपने कई भक्तों के साथ राम ठाकुर ढाका से ग्वालन्दो आये। यहाँ से उन्हें रेल द्वारा आगे कलकत्ता जाना था। स्टीमर से उतरकर भक्तों ने गुरुदेव के लिए डिब्बे में बिस्तर लगा दिया। इसके बाद उन्हें वहीं बैठाकर सभी भक्त स्टेशन के होटल में भोजन करने चले गये। लौटकर वे लोग जब आये तब देखा कि गुरुदेव गायब हैं। गाड़ी छूटने का वक्त हो गया, पर गुरुदेव आते नहीं दिखाई दिये। फलस्वरूप झटपट सारा सामान उतारकर लोग प्लेटफॉर्म पर ठहर गये। सारी रात लोग गुरुदेव की प्रतीक्षा करते रहे।

भोर के वक्त गुरुजी आते दिखाई दिये। उनके साथ एक दस-बारह वर्ष का बालक था। पास आते ही राम ठाकुर ने कहा—"राह-खर्च रखकर बाकी फालतू रकम आप लोगों के पास जितनी हो, कृपया इस बालक को दे दें।"

रुपये पाकर लड़का चला गया। राम ठाकुर ने कहा—"इस बालक का पिता मेरा पुराना भक्त है। कल शाम को अचानक उसकी तबीयत बहुत खराब हो गई। अन्तिम दर्शन करने के लिए मुझे याद करने लगा। घर के लोगों से कहा कि तुम लोग जल्दी से भोजन कर लो। वे लोग भोजन करने गये और तभी मैं वहाँ पहुँच गया। मुझे देखते ही मेरे पैर पकड़कर रोते-रोते सुरधाम चला गया। दो अनाथ बच्चे, विधवा औरत घर पर हैं। खाने का ठिकाना नहीं। कैसे मृतक का कार्य करेंगे? आगे क्या होगा, भगवान् जाने।"

राम ठाकुर कितने बड़े साधक थे, इसका उदाहरण निम्न घटनाओं से पता चल जाता है। कैवल्यधाम के महन्त श्री श्यामाचरण चटर्जी एक बार राम ठाकुर से मिलने के लिए उनके यहाँ गये। दरवाजे के पास जाते ही उन्होंने देखा कि राम ठाकुर सामने बैठे हैं और बड़ा साँप उनके शरीर से लिपटा हुआ है।

जब तक चटर्जी महाशय चकित होकर कुछ पूछें, उसके पहले ही राम ठाकुर ने कहा—"आप यहाँ क्यों आये हैं? जल्दी चले जाइये।"

चटर्जी महाशय से रहा नहीं गया। पूछ बैठे—"आखिर यह क्या है?"

राम ठाकुर ने कहा—"मुझे बुखार आ गया है। पास में कोई नहीं है, इसलिए यह साँप सेवा करने आया है।"

यह बात सुनकर चटर्जी महाशय तुरत प्रणाम करने के बाद चले गये।

इसी प्रकार की एक घटना कलकत्ता के बीडन स्ट्रीट स्थित एक भवन में हुई थी। उस दिन वहाँ डॉ० इन्दुभूषण बनर्जी, जानकीदास गुप्त कविराज आदि लोग राम ठाकुर के सामने बैठे थे। एक दृश्य देखकर सभी लोग चौंक उठे। धीरे-धीरे राम ठाकुर के बदन में चेचक के दाने उभर आये। कविराजजी ने जाँचने के बाद कहा—"यह तो चेचक के दाने हैं। सभी लोग सावधानी से काम लें। मैं घर जाकर अभी दवा भेजता हूँ।"

कविराजजी के जाने के बाद राम ठाकुर ने कहा—"उनका कहना ठीक था। ये दाने चेचक के हैं। वे बेकार डर गये। मुझे दवा की जरूरत नहीं है।"

इतना कहने के बाद राम ठाकुर उँगलियों से उन दानों को दबाने लगे। एक घण्टे बाद सभी दाने गायब हो गये। बाद में उन्होंने कहा—"एक मरणासन्न चेचक रोगी को ठीक करने के कारण वही रोग अक्सर मुझ पर आक्रमण करता है।"

* * *

सिद्ध महापुरुष सूक्ष्म रूप में आकाश-मार्ग से यात्रा करते हैं। एक स्थान पर उपस्थित रहते हुए वे भक्तों की पुकार पर उन्हें संकट से बचाने के लिए बहुत दूर दूसरे स्थान पर तुरत पहुँच जाते हैं। स्वामी विशुद्धानन्द, श्यामाचरण लाहिड़ी, रामकृष्ण देव आदि इस प्रकार अपने भक्तों की सहायता के लिए उपस्थित हुए थे। स्वयं राम ठाकुर भी अपने एक भक्त डॉ० प्रभात चक्रवर्ती के घर गये थे।

कहा जाता है कि उन दिनों डॉ० चक्रवर्ती के यहाँ तीन व्यक्ति चेचक रोग से पीड़ित थे। बैठक में अपने मित्रों से इसी समस्या पर डॉ० चक्रवर्ती बातें कर रहे थे। तभी उन्हें महसूस हुआ कि राम ठाकुर सदर दरवाजे से भीतर आकर सीधे आँगन की ओर चले गये।

भीतर जमानखाने में चक्रवर्ती की पत्नी तीनों रोगियों की सेवा में व्यस्त थीं। अचानक सामने दीवार में टँगे आईने में राम ठाकुर को आते देख, वे एक आसन लाने गईं ताकि उस पर गुरुदेव को बैठा सकें। आसन लेकर जब वे आईं तब देखा कि राम ठाकुर अन्तर्धान हो चुके हैं। तभी तेजी से डॉ० चक्रवर्ती भीतर आये। गुरुदेव के स्वागत में कोई त्रुटि न हो, इस बात के लिए उन्हें चिन्ता थी। लेकिन गुरुदेव कहाँ गायब हो गये? पत्नी से पूछने के बाद वे घर में चारों ओर उन्हें खोजने लगे। लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कहीं भी गुरुदेव नहीं मिले। चक्रवर्ती महोदय सोचने लगे कि मुमकिन है कि मुझे भ्रम हुआ हो, पर पत्नी और मित्रों ने भी उन्हें आते देखा था। क्या सभी भ्रम के शिकार हुए थे।

राम ठाकुर उन दिनों हरिद्वार में थे। चक्रवर्ती ने गुरुदेव को पत्र लिखते हुए इस घटना का वर्णन किया। बाद में पता चला कि चक्रवर्ती की पत्नी छूत-रोगियों की सेवा करने में घबरा रही थी। उनके भय को दूर करने के लिए वे आये थे।

सन्तों की दृष्टि में न कोई हिन्दू होता है और न ईसाई या मुसलमान ही। जिस प्रकार किसी धर्म के सन्त को देखकर मस्तक अपने-आप झुक जाता है, ठीक उसी प्रकार सन्त भी भक्तजनों को अपना लेते हैं। राम ठाकुर की जन्मभूमि डिंगामानिक में उनका जन्म-दिवस मनाया जा रहा था। उनके बारे में गाँव में यह प्रसिद्ध हो गया था कि राम ठाकुर असाधारण सन्त हैं। हजारों भक्त दूर-दूर से आये थे।

अचानक इन्दु बनर्जी नामक एक भक्त ने देखा कि कुछ दूरी पर एक वृक्ष के नीचे एक मुसलमान बैठा है। अपनी गोद में एक गठरी रखे हुए है। डॉ० बनर्जी कुतूहलवश उसके पास जाकर बोले—''बड़े मियाँ, यहाँ बैठे क्यों हैं? क्या किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं?''

मुसलमान किसान ने कहा—''नहीं, मालिक। मैं तो अपने राम दादा के भोग के लिए थोड़ा फल ले आया हूँ।''

''तब यहाँ क्यों बैठे हैं? भीतर जाकर दे आइये।''

''इतनी भीड़ में जाने की हिम्मत नहीं हुई, साहब। ठाकुर की कृपा होगी तो स्वयं ही बुला लेंगे।''

मुसलमान किसान की श्रद्धा देखकर डॉ० बनर्जी स्वतः उसकी पोटली से केला, अमरूद, चावल आदि लेकर भीतर दे आये। बाहर आकर उन्होंने किसान से पूछा—''आपने तो हिन्दुओं की तरह नैवेद्य चढ़ाया। कहीं आपके मौलवी साहब ने सुन लिया तो इसे गुनाह करार देंगे।''

किसान ने कहा—''गुनाह क्यों करार देंगे? खुदा के फरिश्ते सब बराबर होते हैं। वे एक ऊँचे टीले पर बैठे हर किसी को देखते हैं। हमारे राम ठाकुर भी ऐसे टीले पर बैठे हैं।''

डॉ० बनर्जी समझ गये कि इस किसान की अन्तरात्मा को ठाकुर ने स्पर्श किया है तभी इतनी ऊँची बात कह गया। मन ही मन उन्होंने राम ठाकुर को स्मरण करते हुए प्रणाम किया।

* * *

राम ठाकुर की अलौकिक लीला देखकर भक्तों को महान् आश्चर्य होता था। पटना के एक गाँव में राम ठाकुर की एक भक्त महिला रहती थीं। उनके यहाँ पहली बार आम फला तो उन्होंने अमावट बनाई। महिला ने सोचा कि इस बार जब गुरुदेव आयेंगे तब उन्हें भोग में दूँगी। अमावट को सूखने के लिए धूप में रखती रही। एक दिन एक कौआ उसे चोंच में दबाकर उड़ गया। बेचारी मन ही मन कौए को गाली देने लगी। इतने श्रम से गुरुदेव के नाम पर बनाई अमावट भी गायब हो गई।

उन दिनों राम ठाकुर मुजफ्फरपुर में एक भक्त के यहाँ थे। इस भक्त का नाम रोहिणी मजुमदार था। नीचे बैठक में राम ठाकुर को घेरकर उनका प्रवचन सुन रहे थे। ठीक इसी समय श्रीमती मजुमदार बैठक में अमावट का टुकड़ा लेकर आईं।

उन्होंने कहा—''अभी-अभी एक कौआ अमावट के इस टुकड़े को लेकर छत पर आया और मेरे पास रखकर उड़ गया। आश्चर्य की बात यह है कि इस टुकड़े पर उसके चोंच के निशान कहीं नहीं हैं। मैं यह पता लगाने आई हूँ कि इस अमावट का क्या करूँ?''

राम ठाकुर ने कहा—''चिन्ता की कोई बात नहीं है। यह महाप्रसाद है। उपस्थित सभी लोगों को थोड़ा-थोड़ा बाँट दो।''

उपस्थित लोगों ने प्रसाद के रूप में अमावट को ग्रहण किया। कौए का उच्छिष्ट है, इस बारे में किसी को घृणा नहीं हुई। इस घटना के कुछ दिनों बाद राम ठाकुर पटना जिला स्थित उक्त गाँव में आये। सभी प्रसन्न थे। केवल वह महिला जरा खिन्न थी। राम ठाकुर को समझते देर नहीं लगी।

उन्होंने कहा—''आपने मेरे लिए जो अमावट बनाई थी, उसे एक कौआ ले गया था। मुजफ्फरपुर के सभी भक्तों ने प्रसाद के रूप में ग्रहण किया था। कौए के प्रति अब नाराज होने की जरूरत नहीं। मेरी सामग्री मुझ तक पहुँच गई थी।''

गुरुदेव के इस चमत्कार से वह महिला आनन्द से पुलकित हो उठी। बाद में उपस्थित लोगों को राम ठाकुर ने अमावटवाली सारी घटना सुनाई।

महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज ने राम ठाकुर की एक अलौकिक कहानी का वर्णन किया है—''उस समय राँची में एक साधु महाराज आये थे जिनकी ख्याति फैल रही थी। उनका कहना था कि मैं स्पर्शमात्र से किसी की कुण्डलिनी जाग्रत् कर

सकता हूँ। जो लोग इनके सम्पर्क में आये, वे इनसे काफी प्रभावित हुए। एक व्यक्ति को महात्माजी की कृपा से ग्रह, नक्षत्र-मण्डल के दर्शन हुए थे। उसे विराट् ज्योति का समुद्र जैसा दिखाई पड़ा था। फलतः उसे अपने गुरु की शक्ति पर अभिमान हो गया।

बातचीत के सिलसिले में उसने एक दिन राम ठाकुर के एक शिष्य से अपने गुरु की काफी प्रशंसा की। सारी बातें सुनने के पश्चात् राम ठाकुर के शिष्य ने सोचा—मेरे गुरु ने मुझे यह सब क्यों नहीं बताया?

मन में यह विचार उत्पन्न होते ही वे इस बात की जानकारी प्राप्त करने के लिए तुरत गुरु के निकट चल पड़े। ठाकुर उन दिनों नोआखाली में निवास कर रहे थे। ठाकुर अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति के जरिये शिष्य के आने का कारण समझ गये। उन्होंने कुशल-मंगल पूछने के बाद शिष्य से कहा—''जाओ, स्नान कर लो।''

शिष्य तो आक्रोश में था। उसने नाराजगी प्रकट करते हुए कहा—''स्नान नहीं करूँगा। मैं आपके निकट एक प्रश्न लेकर आया हूँ। आपने मन्त्रोपदेश दिया, मार्ग बताया, किन्तु उससे मुझे मिला कुछ भी नहीं। राँची में एक महात्मा स्पर्शमात्र से कुण्डलिनी जगा देते हैं। आपके श्रीचरणों का स्पर्श प्राप्त करते हुए भी मैं इस प्रकार के अनुभव से शून्य ही रह गया। आपने मुझे कुछ भी नहीं दिया।''

ठाकुर महाशय ने कहा—''वह सब भूतों का खेल है। उस ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं है।''

शिष्य को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने सोचा कि गुरुदेव मुझे बहला रहे हैं। ठाकुर के काफी समझाने-बुझाने पर भी वह स्नान-भोजन के लिए तैयार नहीं हुआ। यह देखकर ठाकुर ने कहा—''ठीक है। मेरे सामने आसन लगाकर बैठ जा।''

आज्ञानुसार भक्त ने आसन लगाया। उसके सामने बैठते हुए राम ठाकुर ने कहा—''अब सामने देखो।'' शिष्य जब सामने देखने लगा तब उन्होंने उसे धीरे से स्पर्श किया।

अचानक उसे लगा जैसे उसके सारे शरीर में बिजली दौड़ गई है और वह बेहोश हो गया। लगभग डेढ़ घण्टे तक वह बेहोश रहा। गुरु ने अनुभव किया कि अभी काफी कच्चा शरीर है, ज्योति सहन नहीं कर सकता। उन्होंने अपनी शक्ति वापस ले ली।

शिष्य ने आँखें खोलकर कहा—''नये प्रकार की ज्योति देखी।''

ठाकुर ने कहा—''मुझमें देने की शक्ति है, पर तुम उसे ग्रहण नहीं कर सकते। यह भीतर की वस्तु है। इसका अनुभव अपनी सत्ता से होगा। जब होगा तब अनन्तकाल के लिए होगा, अपने समय से होगा। इसके पूर्व अनुभव की आकांक्षा करके भूतों की कला में मत पड़ो।''

बाद में उन्होंने उसे समझाते हुए कहा—''कुण्डलिनी क्या है? यह कुण्ड स्थित अथवा कुण्डाश्रित शक्ति का नाम है। कुण्ड का अर्थ है—आधार। शक्ति जब आधार में रहती है अथवा आधार का अवलम्बन करके रहती है, उस समय उसका नाम कुण्डलिनी है। यहाँ शक्ति की सुप्तावस्था है। जब शक्ति शिव का या शून्य का अवलम्बन

करेगी अर्थात् निराश्रय अथवा निरालम्ब होगी तब समझना चाहिए कि कुण्डलिनी जाग गई। द्विदल के ऊपर शून्य अथवा निरालम्ब है। वहाँ किसी प्रकार का आश्रय है नहीं— 'निराश्रयं मां जगदीश रक्ष।' द्विदल का अभिप्राय है—दो पक्ष। वही केन्द्र है, वहाँ से दोनों ओर जाना सम्भव है अर्थात् ऊपर अव्यक्त की ओर, नीचे दृश्य की ओर।''

आगे आपने कहा है—''याचना नहीं करनी चाहिए। गुरु का दान अयाचित होता है। जो दिखाई पड़ता है, वह मिथ्या है, जो देखता है वह भी भ्रममूल देखता है।

गुरु जिस बीज को देते हैं, उसी बीज के साथ वास करना चाहिए। उसके साथ घरेलू सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए, उसे प्यार करना चाहिए। बीज के साथ वस्तुतः गुरु ही जन्म ग्रहण करते हैं, इसलिए छोड़कर जाने का उपाय नहीं है।''

''गुरु नाव को ठेल देते हैं। बाद में शिष्य को डाँड़ खींचना (चलाना) चाहिए। अन्यथा केवल गुरु के ठेलने से चलने पर शिष्य को अत्यन्त कष्ट होता है, क्योंकि वह सम्हाल नहीं सकता। अतएव डाँड़ स्वयं चलाना चाहिए, केवल सम्हालने के लिए गुरु की सहायता की जरूरत होती है। गुरु ने तो सब कुछ दे रखा है, आवश्यकतानुसार शिष्य को सब कुछ प्राप्त हो जाता है।''

राम ठाकुर में एक विशेषता यह थी कि वे भोजन नहीं करते थे। केवल दो-एक फल खाकर अपनी क्षुधा मिटाते रहे। अपने भक्तों को नाम जपने की सलाह देते थे। उनका कहना था—''हरे कृष्ण आदि सोलह नाम, बत्तीस अक्षर और प्रणव एक ही वस्तु है। हरे, कृष्ण और राम, ये तीन अंश ही प्रणव के तीन अवयव 'अ', 'उ' और 'म' हैं। राम के माने रति अथवा प्रेम। कृष्ण के माने है एकाग्रता। अतएव इसका अर्थ है, सर्वदा स्थिर होकर प्रेम के साथ हरि-नाम लो।''

राम ठाकुर के अनेक शिष्य भक्त थे जिनमें माधव पागला उच्चस्तर के साधक हुए थे। माधव पागला की लीलाभूमि काशी थी। वे अपने सभी भक्तों को केवल नाम जपने की सलाह देते थे।

आपका निधन चौमुहनी नामक स्थान में अप्रैल १६४६ ई० को हुआ था।

■ ■ ■

साधक रामप्रसाद

"सरकार, नये गुमाश्ते के कारण सारी कचहरी (ऑफिस) चौपट हो रही है। अगर यही हाल रहा तो सब चौपट हो जायगा।" प्रधान गुमाश्ते ने शिकायत की।

यह पहली शिकायत नहीं है। इसके पूर्व कई बार नये गुमाश्ते की शिकायत अन्य गुमाश्तों ने की है। आज जब प्रधान गुमाश्ते ने शिकायत की तब दुर्गाचरण झुँझला उठे। आखिर नया गुमाश्ता क्या कर रहा है, जिसकी वजह से सारी कचहरी नाराज है।

जमींदार दुर्गाचरण मित्र ने कहा—"कहाँ है नया गुमाश्ता? बुलाओ।"

नये गुमाश्ते के आने पर जमींदार ने पूछा—"क्यों जी, रामप्रसाद, क्या बात है? कचहरी के सभी लोग तुम्हारी शिकायत कर रहे हैं। तुम काम-धाम नहीं करते, सिर्फ बहियों में न जाने क्या अल्लम-गल्लम लिखा करते हो। काम ठीक से नहीं करना है तो अपना हिसाब लो और घर चले जाओ।"

सरकार को नाराज होते देख प्रधान गुमाश्ता प्रसन्न हो उठा। इधर जमींदार को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नाराजगी का रामप्रसाद पर कोई असर नहीं हुआ। अभी नौकरी से निकाला जा सकता है, इसका भय भी नहीं हुआ। छोटे बच्चे की तरह वह टुकुर-टुकुर देख रहा है।

दुर्गाचरण ने कहा—"कहाँ हैं बहियाँ? लाओ, देखूँ, क्या लिख मारा है?"

प्रधान गुमाश्ते ने बही पेश करते हुए कहा—"अब आप ही देखिये सरकार। हिसाब लिखने की जगह यह सब क्या लिख मारा है। अब आप ही बताइये इसे तहसील में कैसे दिखाया जायगा? कहीं पकड़े गये तो लेने के देने पड़ जायेंगे।"

गुमाश्ता अपनी शिकायत बराबर करता गया, पर दुर्गाचरण इन बहियों में लिखे गीतों में खो गये थे। रोकड़ बही के चारों ओर दुर्गा, काली आदि देवियों के नाम, गीत लिखे हुए थे। वे पढ़ने लगे—

मुझे दो माँ ताबेदारी,
मैं नहीं नमकहराम शंकरी।
तेरा पदरत्न सभी लूट रहे
होता नहीं यह सहन मुझसे,
भण्डार की जिम्मेदारी जिस पर है
वह है भोला त्रिपुरारि।

बिना वेतन का चाकर मैं,
केवल चरण-रज अधिकारी।

इस गीत को एक-दो नहीं, कई बार पढ़ने के बाद जमींदार साहब सहसा गम्भीर हो गये। उनके माथे पर सिकुड़न पड़ गई—"बिना वेतन का चाकर मैं, केवल चरण-रज अधिकारी।" इस पंक्ति को बार-बार पढ़ने के कारण उनकी आँखें सजल हो उठीं। कुछ देर तक वे अपलक दृष्टि से रामप्रसाद की ओर देखते रहे।

एकाएक बोल उठे—"रामप्रसाद, तुम गुमाश्ते के लायक नहीं हो। यह काम तुमसे हो नहीं सकता। तुम्हारे बारे में अगर मुझे पहले से जानकारी होती तो अपने यहाँ तुम्हें न रखता। दरअसल तुमने ताबेदारी की माँग की है जो समय आने पर प्राप्त हो जायगी। तुम्हारा जन्म साधारण कार्यों के लिए नहीं हुआ है। अब तुम आज ही घर चले जाओ और वहीं भजन करो। यहाँ तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है।"

जमींदार साहब की नाराजगी देखकर गुमाश्ते को प्रसन्नता हुई। कम-से-कम एक निकम्मे कर्मचारी से छुट्टी मिली। दूसरी ओर रामप्रसाद को लगा जैसे पैरों तले की धरती खिसक रही है। माँ, पत्नी, बच्चे आखिर क्या करेंगे? उनके लिए ही तो वह गाँव छोड़कर यहाँ नौकरी करने आया है। माँ काली, दया करो। अब बहियों में मैं कुछ भी नहीं लिखूँगा।

इसी तरह की कल्पना करते हुए रामप्रसाद ने सोचा कि जमींदार साहब से अपनी गलती के लिए क्षमा माँग ले, तभी उन्होंने उसे चौंकाते हुए कहा—"तुम्हारे द्वारा बहियाँ नष्ट नहीं हुई हैं, बल्कि पवित्र हुई हैं। मैं इन्हें अपने यहाँ सुरक्षित रखवा दूँगा। मेरे वंशधर निरन्तर इनका उपयोग करेंगे और सुरक्षित रखेंगे ताकि तुम चिरस्मरणीय बने रहो। अब तुम अपने घर वापस चले जाओ। तुम्हें जो वेतन दिया जाता है, वह आजीवन प्राप्त होता रहेगा।"

गुमाश्ता अवाक् रह गया। यह कैसा न्याय हुआ? एक तो सारी बहियाँ चौपट कर दीं, तिस पर घर बैठे मुफ्त में तीस रुपये वेतन भी प्राप्त करेगा! आखिर इन अल्लम-गल्लम गीतों में कौन-सा जादू है?

इधर अपने मालिक की राय सुनकर रामप्रसाद ने इसे काली माता की कृपा समझा। वहीं आनन्द से विभोर होकर गाने लगे—

अरे मन, तू है कहाँ कंगाल
तू कुछ नहीं जानता रे पागल
अनित्य धन की आशा में चक्कर काटता ठाँव-ठाँव
तेरे घर हैं चिन्तामणि, देख रे तू बैठा-बैठा।
गुरु द्वारा प्रदत्त रत्न को पकड़ कसके
दीन रामप्रसाद का विनय है उन चरणों में॥

इस गीत को सुनते-सुनते जमींदार साहब आत्मविभोर हो उठे। रामप्रसाद को वेतन के अलावा राह-खर्च देकर उन्होंने बिदा कर दिया। उधर गुमाश्ता सोचने लगा—सरकार जरूर पागल हो गये हैं।

* * *

बंगाल के २४ परगना जिले में हालीशहर नामक एक कस्बा है जिसके एक ओर पुण्यसलिला गंगा प्रवाहित है। प्राचीनकाल में इस कस्बे का नाम कुमारहाटी था यानी कुम्हारों का बाजार। यहाँ अधिकतर कुम्हार रहते थे। इनके अलावा कुछ ब्राह्मण भी रहते थे।

एक बार नवद्वीप के कुछ पण्डित कुमारहाटी आये। नवद्वीप के पण्डितों की विद्वत्ता सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध थी। देश के विभिन्न स्थानों से लोग यहाँ पढ़ने आते थे। यहाँ के पण्डितों को यह समझते देर नहीं लगी कि नवद्वीप के पण्डितों का दल हमसे शास्त्रार्थ करने आया है। सभी भयभीत हो उठे। कारण इन पण्डितों से शास्त्रार्थ करने का अर्थ था—पराजित होना। इससे अपने सम्मान को धक्का लगेगा। अपनी इज्जत बचाने के लिए स्थानीय पण्डितों ने एक तिकड़म किया। एक चतुर कुम्हार को सिखा-पढ़ाकर नवद्वीप के पण्डितों के पास भेजा। यह कुम्हार महिला वेष में अपने साथ एक लड़का लेकर आया।

नवद्वीप के पण्डितों के पास आकर कुम्हार ने कहा—''पण्डितजी, मैं आप लोगों की सेवा करने आई हूँ। जूठा माँज दूँगी, चौका लगा दूँगी और कपड़े साफ कर दूँगी।''

पण्डितों को ऐसी नौकरानी की जरूरत थी। उन्होंने रख लिया। इधर स्थानीय पण्डितों से बातचीत करने पर यह निश्चित हुआ कि कल शास्त्रार्थ होगा।

दूसरे दिन सबेरे कुम्हार चौका-बरतन कर रहा था। सहसा बाहर के पेड़ पर कौवे काँव-काँव करने लगे। यह सुनकर लड़के ने पूछा—''माँ, कौवे आपस में क्या कह रहे हैं?''

नौकरानी ने कहा—''मुझे क्या मालूम बेटा। यहाँ बड़े-बड़े पण्डित आये हैं, उनसे पूछ ले।''

माँ के कथनानुसार बालक पण्डितों के पास आया और अपना सवाल दोहराया। अब इस सवाल का कोई क्या जवाब देता। पण्डितों ने कहा—''सबेरा हुआ है, इसलिए वे चिल्ला रहे हैं। क्या कह रहे हैं, क्या बताऊँ?''

लड़का असन्तुष्ट होकर माँ के पास आकर जिद करने लगा। पण्डितों में कोई यह भाँप नहीं सका कि दरअसल दोनों नाटक कर रहे हैं।

माँ ने कहा—''बेटा, तुझे कैसे समझाऊँ? संस्कृत जानती नहीं। इसीलिए कहती हूँ कि पाठशाला जाया कर। संस्कृत में एक श्लोक है—

तिमिरारिस्तमो हन्ति शंकाकुलितमानसाः ।
वयं काका वयं काका इति जल्पन्ति वायसाः ॥

अर्थात् अन्धकार नाश करने के लिए सूर्य देवता प्रकाश दे रहे हैं। कौवों के मन में इस बात का भय हो रहा है कि उनके काले पंखों का अँधेरा समझकर कहीं उन्हें भी नष्ट न कर दें। इसी डर के कारण वे वयं काका, वयं काका यानी हम काक हैं, कह रहे हैं।''

एक बरतन माँजनेवाली नौकरानी को संस्कृत श्लोक की इस तरह व्याख्या करते सुनकर पण्डित-मण्डली चौंक उठी। उन्होंने उसे बुलाकर पूछा—''तुम्हें संस्कृत भाषा की जानकारी कैसे हुई, किसने सिखाया?''

नौकरानी ने कहा—''गाँव में मेरे घर के आसपास पण्डितों के मकान हैं। उनके यहाँ हमेशा संस्कृत भाषा के बारे में चर्चा होती है। उनकी जबानी मैंने सुनी है।''

इतना सुनना था कि पण्डितों के चेहरे का रंग उड़ गया। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि जहाँ की नौकरानी इतना ज्ञान रखती है, वहाँ के पण्डितों से शास्त्रार्थ करना मूर्खता है। उसी दिन सभी पण्डित पलायित हो गये।

हालीशहर के पण्डितों को इस समाचार से बड़ा आनन्द मिला। इस कुम्हार के बुद्धि-चातुर्य से प्रसन्न होकर उन लोगों ने इस गाँव का नाम कुमारटोली रखा। इसी गाँव में चैतन्य महाप्रभु के गुरु श्री ईश्वरपुरी रहते थे।

इसी गाँव में कीर्त्तिवास सेन वंश-परम्परा से निवास करते थे। तन्त्र-सम्बन्धी किसी भी कार्य के लिए कीर्त्तिवास दिल खोलकर खर्च करते थे। इन्हीं कीर्त्तिवास के प्रपौत्र थे—रामप्रसाद सेन।[1]

माता-पिता की एकमात्र सन्तान होने के कारण वे उनकी आँखों के तारे थे। बचपन से ही नटखट थे। समयानुसार पाठशाला पढ़ने गये। जिन प्रतिभाओं पर दैवी कृपा होती है, उनमें ईश्वर धी-शक्ति पहले से प्रदान कर देते हैं।

पिता गाँव में कुशल कविराज माने जाते थे। किसी को कोई बीमारी हुई, सीधे कविराजजी के पास चला आता था। पिता ने सोचा—मेरे बाद रामप्रसाद गाँव में वैद्यगी करेगा, अतएव संस्कृत भाषा का अध्ययन कर ले। संस्कृत भाषा का अध्ययन रामप्रसाद ने अच्छी तरह किया। रामप्रसाद की प्रगति देखकर पिताजी को गर्व अनुभव हुआ। अब वे स्वयं वैद्यगी पढ़ाने लगे।

लेकिन उन्हें यह देखकर अफसोस होने लगा कि लड़का पैतृक-कार्य की ओर मन नहीं लगा रहा है। जब कभी कुछ बताने लगते तब लड़के का ध्यान न जाने कहाँ चला जाता था। बंगला, संस्कृत, हिन्दी, फारसी आदि भाषाओं में इसकी पैठ है, पर वैद्यगी के प्रति अरुचि है।

कुछ दिनों तक लड़के के भविष्य के बारे में चिन्तन करने के बाद उन्होंने सोचा—अभी माँ-बाप के मत्थे पल रहा है। आर्थिक चिन्ता या कोई जिम्मेदारी नहीं है। अगर विवाह कर दिया जाय तो शायद इसके स्वभाव में सुधार हो। पत्नी के भरण-पोषण की चिन्ता उसे जब सतायेगी तब वह गृहस्थी की चिन्ता करेगा। उन दिनों रामप्रसाद २१ वर्ष पार कर २२वें में प्रवेश कर चुके थे।

अपने निश्चय के अनुसार पिता रामराम सेन एक दिन भाजनघाट निवासी लोकनाथ

---

१. श्री रामप्रसाद के जन्म सन् तथा तिथि के बारे में विद्वानों की भिन्न-भिन्न राय है।

दासगुप्त की सुपुत्री सर्वाणी को पुत्रवधू के रूप में घर ले आये। विवाह के समय ही परम्परा के अनुसार कुलगुरु ने नवदम्पती को दीक्षा दी।

दीक्षा प्राप्त करने के बाद रामप्रसाद के स्वभाव में तेजी से परिवर्तन होने लगा। पिता ने सोचा था कि पत्नी-प्रेम के कारण वह गृहस्थी की ओर ध्यान देगा। लेकिन उनका यह सपना व्यर्थ हो गया। अब पहले से अधिक उदासीन रहने लगा। कभी-कभी अनमने भाव से बैठा न जाने क्या सोचता रहता है। उसे सही मार्ग पर लाने के लिए पिता समझाते—''मेरे बाद इस घर की सारी जिम्मेदारी तुझ पर आ जायेगी। मैं बूढ़ा हो गया हूँ। पका आम हूँ; पता नहीं कब टपक पड़ूँ। कुछ कर। मेरे जीवितकाल में कुछ सीख लेगा तो भोजन-वस्त्र का अभाव नहीं होगा।''

रामप्रसाद एक कान से सुनता और दूसरे कान से इन बातों को निकाल देता। आखिर हारकर पिताजी सब कुछ भगवान् के ऊपर छोड़कर अपने काम में लग गये। इधर रामप्रसाद भी यह समझ नहीं पा रहा था कि आखिर ऐसा क्यों हो रहा है। जब वह अपनी आँखें बन्द कर लेता तब उसे अजीब-अजीब दृश्य दिखाई देने लगते थे। उस वक्त तन-मन की सुधि नहीं रहती थी।

ठीक इन्हीं दिनों उसके कुलगुरु का निधन हो गया। मन को सान्त्वना देनेवाला महारथी चला गया। अक्सर जब उसका मन बहुत उद्विग्न हो उठता था तब कुलगुरु के पास जाने पर वे एक न एक मन्त्र-जाप करने का निर्देश देते थे। इससे मन को शान्ति मिल जाती थी।

कुलगुरु के निधन के पश्चात् रामप्रसाद अधिक बेचैन रहने लगा। उसकी दशा देखकर घर के लोग चिन्तित रहने लगे। कुछ दिनों बाद बंगाल के सर्वश्रेष्ठ तान्त्रिक पण्डित माधवाचार्य आगमवागीश भ्रमण करते हुए कुमारहाटी आये। उन दिनों उनकी ख्याति चारों ओर फैली हुई थी। स्थानीय पण्डितों का दल उनके आगमन से प्रसन्न होकर हर्ष मनाने लगा। रामप्रसाद भी अक्सर उनके यहाँ जाता था, पर उनसे खुलकर बातें करने का मौका नहीं मिलता था। लगातार कई दिनों के बाद उसे यह मौका मिला। उसने बातचीत के सिलसिले में तन्त्र-साधना-सम्बन्धी जिज्ञासा प्रकट की। आगमवाग़ीश ने सोचा—फालतू जिज्ञासु है। इस तरह अधकचरे जिज्ञासु बराबर आते रहते हैं। लेकिन दूसरे प्रश्न ने उन्हें चौंका दिया। वे गौर से रामप्रसाद के चेहरे को देखने लगे। आगमवागीश की आघ्राण-शक्ति ने उन्हें सूचित किया कि यह साधारण जिज्ञासु नहीं है। आज जिस स्थान पर मैं खड़ा हूँ, वहाँ तक पहुँचने में मुझे अनेक कठिनाइयों को पार करना पड़ा है और यह युवक बिना साधना, बिना क्रिया के उसे प्राप्त कर चुका है। यदि इसकी कुण्डलिनी-शक्ति जागृत हो जाय तो यह महान् साधक बन सकता है।

यह विचार मन में आते ही आगमवागीशजी ने न केवल उसके प्रश्नों का समाधान किया, बल्कि उसे तन्त्र-साधना की प्रतिक्रियाएँ समझाने लगे।

रामप्रसाद के प्रपितामह, पितामह दोनों ही तन्त्र-साधक थे। वे स्वयं इस क्षेत्र में

गुरुओं द्वारा बताई गई पद्धति से अर्थात् पंच म-कार[1] का उपयोग करते हुए लगभग दस वर्ष तक साधना करते रहे। इन दिनों वे वाक्य-संयम का कठोरता से पालन करते थे। उनकी यह साधना वीर भाव में चलती रही। दिन-रात काली-माता का जप करते थे। रामराम सेन स्वयं धार्मिक प्रकृति के थे, इसलिए पुत्र से कुछ कहने में संकोच करते थे। अचानक एक दिन बीमार हुए और किसी को कोई कष्ट दिये बिना परलोकवासी हो गये।

पिता के निधन के पश्चात् रामप्रसाद की आँखें खुलीं। माँ, पत्नी और बच्चों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उन्होंने पहले-पहल अनुभव की। जप, क्रिया, ध्यान सब कुछ भूल गये। जिस व्यक्ति को व्यवसाय करना नहीं आता और न नौकरी की दुर्गति ज्ञात थी, अब वह केवल बेचैनी से काली माता का स्मरण करने लगा।

कहा जाता है कि काली माँ ने उन्हें दर्शन देकर कलकत्ता जाने का निर्देश दिया था। कलकत्ता आने पर माँ अपने भक्त की सहायता करने लगीं। उनकी प्रेरणा से ही उन दिनों गरनहाटा के जमींदार के यहाँ वे तीस रुपये मासिक वेतन पर गुमाश्ता बने। भक्त को हिसाब-किताब से क्या लेना-देना। हिसाब लिखने के स्थान पर वे लिखने लगे—'मुझे दो माँ ताबेदारी, मैं नहीं नमकहराम शंकरी।'

रामप्रसाद की इन हरकतों को देखकर अन्य गुमाश्ते परेशान हो गये। समझाने-बुझाने पर जब वे नहीं माने तब दुर्गाचरण मित्र के पास शिकायत पहुँची। इसके आगे की घटना का उल्लेख किया जा चुका है।

* * *

एकाएक बिना कोई सूचना दिये लड़के के आगमन पर माँ आश्चर्यचकित रह गई। धीरे से पूछा—"कैसे आ गया? तबीयत ठीक है न?"

रामप्रसाद ने कहा—"ऐसी कोई बात नहीं है माँ। काली माँ ने घर वापस भेज दिया।"

माँ ने कहा—"सो तो ठीक है, पर गृहस्थी कैसे चलेगी, बेटा। छह-छह आदमियों का पेट चलाना है।"

रामप्रसाद ने कहा—"तुम्हें घबराने की जरूरत नहीं है। काली माँ ने उसका प्रबन्ध करके मुझे यहाँ भेजा है। अब हर माह घर बैठे तीस रुपये आ जायेंगे।"

---

१. पंच म-कार का सीधा अर्थ है—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन। गुरु द्वारा बताई गई पद्धति से साधक पंच म-कारों का आस्वादन प्राप्त करता है। बाद में षट्चक्र को भेदकर बीज और शक्ति को प्राप्त करता है। तब जाकर कहीं वह सहस्रार तक पहुँच पाता है। सहस्रार यानी ब्रह्मरन्ध्र से जो अमृत क्षरित होता है, उसे मद्य कहा जाता है। ब्रह्मज्ञान होने पर इसी मद्य को साधक पीता है। साधक जब ब्रह्मानन्द में रहता है तब बातें नहीं करता। वाक्य-संयम मांस-भक्षण है। इड़ा, पिंगला रजः-तमरूपी श्वास-प्रश्वास को प्राणायाम के माध्यम से निरोध करना पड़ता है। इसी को मत्स्य-भक्षण कहते हैं। सहस्रदल पद्म में ज्योतिपूर्ण आत्मा को जानना ही मुद्रा है। नाभिचक्र में स्थित अजपारूपी श्वास-प्रश्वास तथा आज्ञाचक्रस्थित महायोनि का मिलन ही मैथुन है।

लड़के की बात पर माँ को विश्वास नहीं हुआ। भला लड़के ने ऐसा कौन-सा कार्य किया है जो कोई मुफ्त में रुपये देता रहेगा? उन्होंने सोचा—देखा जाय क्या होता है।

अगले माह जब रुपये आ गये तब रामप्रसाद ने कहा—"माँ, अब मुझे छुट्टी दो। काली माँ की कृपा से घर-खर्च का प्रबन्ध हो गया। अब मैं उनकी शरण में जाकर कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ।"

गृहस्थी तथा नौकरी के कारण रामप्रसाद की साधना में व्याघात पहुँचता था। अब उन्होंने अपने-आपको पूर्ण रूप से देवी के चरणों में आत्मसमर्पित कर दिया। दिन-रात काली माँ के उद्देश्य से गीत बनाकर डगर-डगर गाने लगे। जिस वक्त नदी में खड़े होकर वे समधुर कण्ठ से गीत गाते, उस वक्त स्नानार्थी स्नान करना भूल जाते थे। घाट पर लोगों की भीड़ जुट जाती थी। नाव से गुजरनेवाले यात्री भी इन गीतों के आकर्षण से किनारे चले आते थे। एक प्रकार से इनके गीतों में चुम्बक-सा असर था।

* * *

एक बार नवद्वीप के राजा कृष्णचन्द्र नाव पर गंगा-विहार करने निकले थे। हवा में तैरती हुई स्वर-लहरियों से प्रभावित होकर वे गायक के पास चले आये। रामप्रसाद आँखें बन्द कर अपनी भक्ति में मग्न थे। महाराजा के आगमन का पता उन्हें नहीं चला। उपासना-गीत समाप्त होने पर सामने बैठे महाराजा को देखते ही उन्होंने नमस्कार किया।

बंगाल के देशी नरेशों में कृष्णचन्द्र की ख्याति थी। वे सम्राट् विक्रमादित्य और अकबर की तरह अपने दरबार में सभारत्न रखे थे। उनके सभारत्नों में हरिराम सिद्धान्त, कृष्णानन्द वाचस्पति, रामगोपाल सार्वभौम, प्राणनाथ न्यायपंचानन, गोपाल न्यायालंकार, रामानन्द वाचस्पति, रामवल्लभ विद्यावागीश, वीरेश्वर न्यायपंचानन, वाणेश्वर विद्यालंकार, रामरुद्र विद्यानिधि जैसे विद्वान् थे। वहीं मनोरंजन के लिए गोपाल भाँड़ भी था।

पारखी राजा ने रामप्रसाद की प्रतिभा को पहचान लिया। उन्होंने रामप्रसाद से आग्रह किया कि आप मेरी सभा की शोभा बढ़ायें। रामप्रसाद ने कहा—"काली माँ से आज्ञा लेकर आपको उत्तर दूँगा, महाराज।"

महाराजा के जाने के बाद रामप्रसाद ऊहापोह में फँस गये। जिस मुँह से काली माँ का गुणगान करता हूँ, उसी से दिन-रात महाराजा की चाटुकारिता करनी पड़ेगी। अगर इनकार करता हूँ तो और भी बुरा होगा। पानी में रहकर क्या मगर से वैर करना उचित होगा? रात को वे साधना पर बैठकर काली माँ से प्रार्थना करने लगे—"माँ, इस संकट से मुक्ति दिलाओ।"

काली माँ की कृपा हुई। महाराजा स्वतः समझ गये कि रामप्रसाद सभारत्न नहीं बनना चाहते। साधक अपनी साधना में मग्न रहना चाहता है। रामप्रसाद के इस त्याग पर वे मुग्ध हो उठे। उन्होंने घोषणा की कि राज्य की ओर से तुम्हें एक सौ बीघा भूमि बिना लगान दान में दी जा रही है ताकि तुम और तुम्हारे वंशज महामाया के गुण-गान बराबर करते रहें। दरबार में 'कविरंजन' की उपाधि से सम्मानित करते हुए महाराजा ने यह घोषणा की।

राज-रोष का भय रामप्रसाद के मन से हट जाने पर वे पूर्ण रूप से काली माँ की शरण में चले गये। अपने घर के समीप पंचमुण्डी आसन के पास पंचवटी का रोपन कर वे साधना में डूब गये। वे जिस आसन पर बैठकर साधना करते थे, वहाँ आमतौर पर लोग दिन के वक्त भी जाने में कतराते थे। लोगों का विश्वास था कि वहाँ अशरीरी लोग आते हैं। यह बात एक हद तक सही है। अक्सर वहाँ भूत-प्रेत उनकी साधना में जब विघ्न पहुँचाते तब वे तेजी से जप प्रारम्भ करने लगते।

तभी ''वत्स, मा भैः—मैं आ गई हूँ। अब तुम मुझे अपने हृदय में, भावनेत्र से देख सकते हो' की आवाज सुनाई देने लगती। उस समय अशरीरियों का उपद्रव शान्त हो जाता था।

रामप्रसाद के घर के समीप एक गड़ही है जहाँ उन्हें माँ जगदम्बा ने प्रत्यक्ष रूप से दर्शन दिया था। इस दर्शन के पश्चात् रामप्रसाद में अद्भुत परिवर्तन हुआ। बंगाल का साँवलापन दूर हो गया। उसके स्थान पर उनका सारा शरीर अपूर्व क्रान्ति से चमकने लगा। गाँव के लोग रामप्रसाद में होनेवाले इस परिवर्तन को देखकर चकित रह गये।

घर पर नित्य रामप्रसाद काली माता को भोग लगाया करते थे जिसे साधक के आग्रह पर चिन्मयी महामाया प्रकट होकर ग्रहण करती थीं। एक दिन पत्नी को सन्देह हुआ कि काली माँ का यह चित्र क्या वास्तविक है? जिज्ञासु हृदय ने उस चित्र को स्पर्श करके देखा। तुरत देवी प्रकट हो गईं। काली के उस रूप को देखकर पत्नी बेहोश हो गईं। होश आने पर उन्होंने देखा—फिर वही सामान्य चित्र है। रामप्रसाद की पत्नी यह समझ नहीं पाईं कि यह आँखों का भ्रम था अथवा वास्तव में देवी प्रकट हुई थीं।

एक बार एक अपूर्व सुन्दरी रामप्रसाद के घर आई। रामप्रसाद उस समय स्नान के लिए नदी की ओर जानेवाले थे। सुन्दरी ने कहा—''मैं आपका गायन सुनने आई हूँ।''

रामप्रसाद ने कहा—''अभी मैं स्नान करने जा रहा हूँ। आप थोड़ी देर बैठिये। वापस आकर मैं गीत सुनाऊँगा।''

स्नान समाप्त कर जब रामप्रसाद वापस आये तो देखा—वह सुन्दरी जा चुकी थी। चारों ओर उसकी तलाश करते समय उन्होंने देखा कि सामने दीवार पर लिखा है—''मैं अन्नपूर्णा हूँ। तुम्हारा गायन सुनने आई थी। इन्तजार करने का मौका नहीं था। काशी आकर गीत सुनाना।''

इस लिखावट को पढ़कर रामप्रसाद हाय-हाय कर उठे। माता अन्नपूर्णा मेरे घर मेरा गायन सुनने आई थीं और मैं चूक गया। तुरत रामप्रसाद ने निर्णय किया कि काशी जाकर माँ को अपना गायन सुनाऊँगा।

कब मैं काशीवासी होऊँगा,
उस आनन्द कानन में जाकर निरानन्द होऊँगा।
गंगा जल बिल्वदल से विश्वेश्वर पूजूँगा,
वाराणसी के जल-थल में ही मोक्ष पाऊँगा॥
अन्नपूर्णा अधिष्ठात्री की शरण पाऊँगा,
नाच-नाच बमभोला कहते गाल बजाऊँगा॥

मार्ग में इसी गीत को गाते हुए वे सबसे पहले त्रिवेणी-तट पर आये। यहाँ स्नान करने के बाद गाने लगे—

> **अन्नपूर्णा की धन्य काशी**
> **शिव धन्य, काशी धन्य, धन्य माँ आनन्दमयी ।**
> **भागीरथी विराजित, प्रवाह में अर्द्ध शशि,**
> **उत्तरवाहिनी गंगा प्रवाहित है दिवा निशि ॥**
> **शिव के त्रिशूल पर काशी, वेष्टित वरुणा असि,**
> **यहाँ मरने पर जीव शिव शरीर में प्रवेसि ।**
> **कैसी महिमा अन्नपूर्णा की, कोई नहीं उपवासी,**
> **माँ रामप्रसाद तेरे चरण-रज का अभिलाषी ॥**

यह गीत गाते हुए वे त्रिवेणी-तट पर सो गये। उसी दिन रात्रि को उन्होंने स्वप्न में देखा एक छाया-मूर्ति जो ठीक अन्नपूर्णा जैसी थीं, कह रही हैं—''वत्स, मैं तुम्हारे गीत को सुन चुकी। अब तुम्हें काशी आने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी भक्ति और गायन से मैं सन्तुष्ट हो गई हूँ। भविष्य में जब तुम मुझे स्मरण करोगे, अनायास दर्शन प्राप्त कर सकोगे।''

इस स्वप्न को देखते ही उनकी नींद खुल गई और वे अपनी जन्मभूमि की ओर लौट गये। इन दिनों उनकी मनःस्थिति पागलों जैसी हो गई थी। न खाने की चिन्ता और न सोने की। घर पर बहुत कम आते थे। माँ और पत्नी उनकी इस हालत को देखकर समझ गईं कि अब रामप्रसाद उनका अपना नहीं रह गया। पत्नी को जब कुछ कहना होता था तब बड़े संकोच के साथ अपनी बात कहती थी। आजकल घर की सारी जिम्मेदारी उसी पर थी। रामप्रसाद केवल माँ के आकर्षण के कारण घर आते थे और शेष समय पंचवटी में व्यतीत करते थे।

जिस प्रकार मीराबाई कृष्ण-प्रेम के पीछे दीवानी थीं, ठीक उसी प्रकार रामप्रसाद काली माता की भक्ति के पीछे दीवाने थे। मीरा के भजनों की तरह रामप्रसाद के श्यामा-गीत बंगाल के गाँव-गाँव में प्रचारित हैं। कहा जाता है कि रामप्रसाद ने एक लाख पदों का निर्माण किया था, पर मिलते हैं ढाई सौ।

पंचवटी में जिस वक्त वे भावविभोर होकर श्यामा-गीत गाते थे, उस वक्त गाँव के निवासियों के अलावा राजा कृष्णचन्द्र भी यदा-कदा चले आते थे। ठीक इन्हीं दिनों रामप्रसाद की माँ स्वर्गवासी हो गईं। घर से रहा-सहा नाता भी टूट गया। अब रामप्रसाद पंचवटी से हटकर श्मशान-भूमि में आकर साधना करने लगे। जब कभी उनका मन व्याकुल हो उठता तब देवी प्रत्यक्ष रूप में दर्शन देकर उन्हें सान्त्वना देती थीं।

एक बार घर के सामने का बेड़ा (बाँस के टट्टरों का घेरा) सड़ जाने के कारण वे अपनी लड़की की सहायता से मरम्मत करने लगे। लड़की टट्टर के उस पार से फन्दा लगाकर इधर रस्सी का छोर पकड़ने को देती और रामप्रसाद बाहर से भीतर की ओर देते थे। इसी बीच उनकी लड़की जगदीश्वरी निजी काम से भीतर चली गई। लेकिन

रस्सियों का आना-जाना बराबर जारी रहा। उधर से अब कौन रस्सी दे रहा है, इसका पता नहीं चला।

कुछ देर बाद जगदीश्वरी आई तो देखा कि बेड़े की बुनाई काफी दूर तक हो गई है। उसने पूछा—"पिताजी, इधर से रस्सी कौन देता रहा? क्या आप अकेले दोनों ओर का काम करते थे?"

रामप्रसाद ने कहा—"क्यों? उस पार तो तुम थी।"

जगदीश्वरी ने कहा—"मैं तो एक घण्टा पहले चली गई थी। अब आई हूँ।"

लड़की की बातें सुनकर रामप्रसाद चकित रह गये। जगदीश्वरी ज़ब उधर नहीं थी तब अब तक उधर से रस्सी कौन पकड़ाता था। लहमेभर में वे समझ गये कि यह कार्य जगज्जननी करती रहीं। लड़की की ओर देखते हुए रामप्रसाद गुनगुनाने लगे—"मन क्यों माँ के चरणों से दूर है?"

इस घटना के कुछ दिनों बाद रामप्रसाद को ज्ञात हुआ कि राजा कृष्णचन्द्र का स्वर्गवास हो गया है। यह एक ऐसा समाचार था जिसे सुनकर रामप्रसाद मर्माहत हो उठे। अपने जीवनकाल में राजा साहब बराबर रामप्रसाद के गीत सुनने आते थे और हर प्रकार की सहायता करते थे। आज एक बड़ा सहायक चल बसा।

महाराजा कृष्णचन्द्र का निधन रामप्रसाद के जीवन की मर्मान्तक घटना थी। सम्भवत: रामप्रसाद उन्हें हृदय से प्यार करते थे। उनकी स्थिति पागलों जैसी हो गई। न खाने की चिन्ता और न सोने की। उनकी यह हालत देखकर पत्नी और लड़कों ने सोचा कि अब रामप्रसाद को घर से बाहर कहीं जाने नहीं देंगे। पता नहीं, क़ब, कहाँ, कोई दुर्घटना हो जाय।

घर पर आबद्ध हो जाने पर वे सिद्धासन पर बैठे-बैठे गीतों की रचना करने लगे। एक अर्से के बाद 'विद्या सुन्दर' नामक ग्रन्थ तैयार हुआ। उस ग्रन्थ को उन्होंने महाराजा कृष्णचन्द्र के नाम समर्पित किया। इस कार्य के बाद उनका हृदय शान्त हो गया। घर के लोगों ने देखा कि अब पहले की तरह विक्षिप्त भाव उनमें नहीं है। यह देखकर सभी प्रसन्न हुए।

दीपावली के दिन अपने घर रामप्रसाद ने प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी काली-पूजा का आयोजन किया। रातभर भजन-कीर्तन होता रहा। दूसरे दिन गाँव के लोगों के साथ मंगल घट लेकर भागीरथी के तट पर आये।

नदी में कमरभर पानी में खड़े होकर वे अपनी आराध्य देवी काली माता की स्तुति करने लगे। गीत गाते-गाते सहसा गंगा में गिर पड़े। जब तक लोग उन्हें बचाने का प्रयत्न करें, उसके पहले ही गंगा अपनी गोद में अपने बालक को लेकर सागर की ओर चली गई।

आज रामप्रसाद नहीं हैं, पर उनका श्यामा संगीत बंगाल के गाँव-गाँव गूँजता रहता है।

■ ■ ■



भूपतिनाथ मुखोपाध्याय

झूलन-पूर्णिमा के दिन घर में प्रथम पुत्र का आगमन हुआ। मुखर्जी-परिवार में शंख-ध्वनि हुई। पड़ोस के लोगों को ज्ञात हो गया कि बिहारीलाल मुखोपाध्याय के यहाँ वंशधर ने जन्म लिया है।

अन्नप्राशन के दिन कुल-पुरोहित आये। माँ बच्चे को गोद में लेकर बैठ गई। सामने खिलौने, वस्त्र, पुस्तक, मिष्टान्न आदि सामग्रियाँ रखी हुई थीं। कुलाचार के समय पुरोहित ने पूछा—''क्यों बेटी, लड़के का क्या नाम रखा है?''

बच्चे की माँ ने कहा—''इसके पिता ने इसका नाम झूलनचन्द्र रखा है।''

कुल-पुरोहित ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए पूछा—''क्या?''

माँ ने कहा—''झूलन पूर्णिमा को पैदा हुआ था, इसलिए यह नाम रखा है, उन्होंने।''

कुल-पुरोहित ने कहा—''अगर जन्माष्टमी, महालया, दोल (होली) को होता तो क्या यही सब नाम रखा जाता? बिहारी भी विचित्र है।''

माँ ने कहा—''आज शुभ दिन है। आप ही कोई अच्छा नाम रख दीजिए।''

कुल-पुरोहित ने कहा—''इस बालक के ग्रह साफ बता रहे हैं कि आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट् जैसा सम्मान प्राप्त करेगा। अपने वंश का श्रेष्ठ नायक बनेगा। इसके आगे बड़े-बड़े लोग अपना मस्तक झुकायेंगे।''

थोड़ी देर जन्म-कुण्डली देखने के बाद उन्होंने कहा—''बालक की धनु राशि है। इसका नाम आज से भूपतिनाथ हुआ।''

अन्नप्राशन के दिन पिता द्वारा प्रदत्त नाम झूलनचन्द्र के बदले भूपतिनाथ हो गया।

उस दिन किसी को इस बात की कल्पना नहीं थी कि बालक का वास्तविक नामकरण हुआ है। भले ही चक्रवर्ती सम्राट् की तरह भूपति न बने, परन्तु शिशुकाल से ही बिना गुरु के वह यौगिक चमत्कारों से पूर्ण होकर आया है।

गर्मी का मौसम था। शुक्लपक्ष का चाँद आकाश में उदय हो गया था। पिता बिहारीलाल कहीं से दूरबीन ले आये थे। बिस्तर पर लेटकर वे दूरबीन से चाँद का निरीक्षण करने लगे। भूपतिनाथ उत्सुक दृष्टि से सारा दृश्य देखता रहा।

सहसा उसने पूछा—''यह क्या है पिताजी?''

''दूरबीन।''

दूरबीन का अर्थ बालक नहीं समझ सका। उसने जिद पकड़ी कि वह भी दूरबीन के जरिये चाँद को देखेगा। फलतः बिहारीलाल ने उसे दूरबीन देते हुए कहा—''ले। एक आँख बन्द कर ले और दूसरी आँख दूरबीन की छेद में लगाकर चाँद को देख।''

बालक ने पिता के निदेशानुसार चाँद की ओर देखा। चाँद को देखते ही उसे अद्भुत दर्शन हुआ। बालक होने के कारण उस ज्योति के अनुभव को वह व्यक्त नहीं कर सका, परन्तु उसकी स्मृति बराबर बनी रही। दीक्षा लेने के बाद जब अनुभूति हुई तब भूपति को बचपन की वह घटना याद आ गई। उसे समझते देर नहीं लगी कि बचपन से ही उस पर दैव-कृपा प्राप्त होती रही।

तेरह वर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत हुआ। कुल-पुरोहित के निदेशानुसार वे नियमपूर्वक प्रातः, मध्याह्न और सायं गायत्री-पाठ करने लगे।

बचपन की ड्योढ़ी को पार कर भूपति ने किशोरावस्था में प्रवेश किया। उन दिनों उनकी उम्र २२-२४ वर्ष के लगभग थी। शाम का वक्त था। अपने पैतृक भवन के आगे स्थित बाग में वह टहल रहा था। टहलते हुए वह एक स्थान पर चिन्तन की मुद्रा में बैठा। अचानक दैव-कृपा से उसे समाधि लगी। इस समाधि में प्रथम बार उसे अनेक प्रकार के दर्शन हुए तब उसे याद आया कि बचपन में मुझे चाँद में इसी प्रकार की ज्योति दिखाई दी थी। इस घटना का उल्लेख उसने किसी से नहीं किया।

यह घटना उस समय की है जब वह पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के कॉलेज में अध्ययन करता था। अध्ययन-काल से ही वह तत्त्वज्ञान की तलाश में योग्य व्यक्तियों के पास जाने लगा। लेकिन कहीं से उसे वास्तविक ज्ञान नहीं मिला।

लेकिन यह अवसर उसे अनायास प्राप्त हो गया। उन दिनों परमहंस रामकृष्ण देव की चर्चा न केवल कलकत्ता में बल्कि पूरे बंगाल में होने लगी थी। एक दिन अपने कई मित्रों के साथ वह रामकृष्ण देव का दर्शन करने गया।

भूपतिनाथ के साथ आये मित्रों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उन लोगों के आते ही रामकृष्ण देव समाधिस्थ हो गये। मित्रों को भूपतिनाथ की यौगिक-शक्ति की जानकारी नहीं थी। रामकृष्ण देव को समाधि भूपतिनाथ के कारण लगी थी।

थोड़ी देर बाद जब रामकृष्ण देव वास्तविक रूप में आये तब हिन्दी में एक गीत गाने लगे—

राम को जो नहीं चीन्हा है
दिल चीन्हा है, सो क्या रे।
और जाना है, सो क्या रे
सन्त वही जो रामरस चाखे
और विषयरस चाखे, सो क्या रे।
पुत्र वही जो कुल को तारे
और जो सब पुत्र हैं, सो क्या रे॥

परमहंस रामकृष्ण देव के यहाँ जाना भूपति के लिए वरदान साबित हुआ। न जाने कौन-सी आकर्षण-शक्ति बार-बार उनके निकट जाने के लिए प्रेरित करती रही। परमहंसजी इन्हें देखकर आनन्दित होते रहे। इस प्रकार भूपतिनाथ परमहंसजी के निकट आते गये।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में भूपतिनाथ ने प्रश्न किया—"प्रकृति और पुरुष में क्या भेद है?"

रामकृष्ण देव ने कहा—"साँप स्थिर होकर रहता है या चलता-फिरता है। अगर वह स्थिर है तो पुरुष और चलते रहने पर प्रकृति। पुरुष निर्गुण और प्रकृति सगुण है।"

केवल शब्दों के जरिये भूपतिनाथ को तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया जिसकी तलाश में वे अब तक व्याकुल थे। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि जिस गुरु की तलाश में वे चक्कर काट रहे थे, वे सदेह यही हैं। पहले यहाँ कभी-कभी आते थे। इस घटना के बाद से वे बराबर आने लगे।

एक दिन जाने पर भूपतिनाथ ने देखा कि परमहंसजी नंगे बदन बैठे हैं और उनका शिष्य लाटू महाराज उनकी मालिश कर रहे हैं।

परमहंसजी के सामने बैठकर हाथ जोड़ते हुए भूपतिनाथ प्रार्थना-गीत गाने लगे। इस गीत को सुनते-सुनते परमहंसजी भावाविष्ट हो गये।

एकाएक भूपतिनाथ ने अनुभव किया कि भावाविष्ट स्थिति में परमहंसजी ने अपना एक पैर उनकी जाँघ पर रख दिया है। भूपतिनाथ ने उस पैर को श्रद्धा के साथ उठाकर सिर से लगाया। परमहंसजी के चरण-स्पर्श से ही भूपतिनाथ को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया। एक अजीब आनन्द-लोक में उनका अन्तर विचरण करने लगा।

भूपतिनाथ में यह स्थिति लगातार तीन दिनों तक बनी रही। इन दिनों उनकी नजर जिधर जाती, उधर ही सब कुछ सच्चिदानन्दमय दिखाई देता था। यहाँ तक कि एक बार जब वे ब्राह्म समाज में विद्वानों का भाषण सुनने गये तो वहाँ चारों ओर रामकृष्ण देव दिखाई देते रहे।

तीसरे दिन गंगा-स्नान करने के पश्चात् भपतिनाथ घर की ओर आ रहे थे, ठीक उसी समय रामकृष्ण देव के यहाँ से एक अदृश्य शक्ति उनके सामने आकर खड़ी हो गई। उस शक्ति ने कहा—"मैं तुम्हें अपने में समाहित करना चाहता हूँ।"

भूपतिनाथ ने कहा—"अभी नहीं। निधन के बाद।"

इतना सुनते ही उस शक्ति ने अपना त्रिशूल भूपतिनाथ के मस्तक पर रखा।

उनका षट्चक्र भेद हो गया।

भूपतिनाथ को अनुभव हुआ जैसे वे शिवमय हो गये। यह स्थिति थोड़ी देर तक रही।

पुन: शक्ति ने कहा—"अब तुम अपने गुरु के पास चले जाओ। तुम्हारे गुरु हैं—श्री परमहंस रामकृष्ण।"

इतना कहने के पश्चात् वह शक्ति शून्य में गायब हो गई। इस घटना को भूपतिनाथ के सिवा राह चलते किसी ने देखा नहीं।

भोजन के पश्चात् भूपतिनाथ अपने गुरु रामकृष्ण देव के पास आये। अदृश्य शक्ति के आज्ञानुसार सबेरेवाली घटना का वर्णन उन्होंने किया।

रामकृष्ण देव ने चौंककर कहा—"जल्दी से महादेव का स्तव-पाठ करो। चलो, शुरू करो।"

भूपतिनाथ स्तव-पाठ करने लगे। एकाएक रामकृष्ण देव के शरीर से बिजली की तरह एक प्रकाश निकला और भूपति के शरीर में प्रवेश कर गया।

भूपतिनाथ ने स्वत: अनुभव किया कि वे हरिहर बन गये हैं। थोड़ी देर बाद परमहंस रामकृष्ण देव ने 'हंसेश्वर मुक्ति'[१] प्रदान की।

इस घटना के पश्चात् एक बार जब भूपतिनाथ अपने गुरुदेव के पास गये तब उन्होंने हँसते हुए पूछा—"क्यों रे, विवाह करने की इच्छा है न?"

गुरुदेव ऐसा परिहास करेंगे, इसकी कल्पना भूपतिनाथ को नहीं थी। लज्जा से उनका चेहरा लाल हो उठा। भूपतिनाथ यह अनुमान नहीं लगा सके कि गुरुदेव भवितव्य की चर्चा कर रहे हैं।

आखिर में प्रारब्ध के भोग के कारण उन्हें विवाह करना पड़ा। श्री कृष्णधन की सुपुत्री सरोजनी देवी उनकी पत्नी बनी।

विवाह के कुछ दिनों बाद भूपतिनाथ के जीवन में एक भयंकर दुर्घटना हो गई। परमहंस रामकृष्ण देव ने अपना शरीर त्याग दिया। भूपतिनाथ शोक से विह्वल हो उठे।

---

१. दिव्य अविनाशी चैतन्य अधीश्वर।

गनीमत यह थी कि अपने निधन के पूर्व रामकृष्ण देव ने भूपतिनाथ को नित्य-गोपाल के जिम्मे सुपुर्द कर दिया था। परमहंसजी ने पहले ही अनुमान लगा लिया था कि भूपतिनाथ की ज्ञानपिपासा को नित्यगोपाल पूर्ण कर सकेगा।

अब भूपतिनाथ प्रतिदिन नित्यगोपाल के यहाँ जाने लगे। इन्हीं नित्यगोपाल के बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए भूपतिनाथ ने योग-राज्य में प्रवेश किया। भूपतिनाथ की साधना में केवल परमहंस देव और नित्यगोपाल ही सहायक नहीं थे, बल्कि इस दिशा में महात्मा तैलंग स्वामी, योगिराज भास्करानन्दजी भी थे जिनसे वे योग की शिक्षा प्राप्त करते रहे।

* * *

अर्द्धरात्रि का समय था। भूपतिनाथ कमरे में सो रहे थे। पूरा परिवार ही नहीं, पड़ोस में भी सन्नाटा था। सोते ही सोते भूपतिनाथ को समाधि लग गई। उन्होंने अनुभव किया कि अब वे भगवत्मुक्त हो गये। उनका नरत्व लोप हो गया है।

कई दिनों तक उनकी स्थिति चिन्ताजनक रही। माँ, पत्नी और छोटे भाई आदि भूपतिनाथ की हालत देखकर घबरा उठे। स्वयं भूपतिनाथ को अनुभव हुआ जैसे वे मृत्यु के द्वार पर आ गये हैं।

बेटे की इस पीड़ा को देखकर माँ व्याकुल हो उठी। वह ओझा, पण्डित, संन्यासियों के निकट जाकर जन्त्र-मन्त्र माँगने लगी। देखते ही देखते बाँहों तथा गले में अनेक 'जन्तर' बाँध दिये गये। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। अक्सर वे गंगा-किनारे दौड़ते रहे। माँ समझ नहीं पा रही थी कि आखिर बेटे को क्या हो गया है।

वास्तव में यह उग्र साधना का क्रम रहा, पर आगे की राह उन्हें नहीं मिल रही थी।

ठीक इन्हीं दिनों उन्हें सही मार्ग का आभास हुआ। उन्होंने अपने ज्ञान-नेत्र से देखा कि महायोगी तैलंग स्वामी उन्हें काशी आने के लिए आकर्षित कर रहे हैं।

अब भूपतिनाथ काशी जाने के लिए व्याकुल हो उठे। परमहंसजी तथा नित्यगोपालजी की जबानी वे तैलंग स्वामी के बारे में सुन चुके थे। जब महायोगी स्वयं ही आकर्षित कर रहे हैं तब उनके श्रीचरणों का दर्शन करना अनिवार्य है।

माँ से अनुमति लेकर वे काशी चले आये। यहाँ आकर वे तैलंग स्वामी के आश्रम में गये। तैलंग स्वामी ने उन्हें क्रियाएँ बताते हुए कहा—"तुम्हारी स्थिति ठीक नहीं है। गलत ढंग से क्रिया करने के कारण यह हालत हो गई है। जैसा तुम्हें बताया है, उसे करो। कुछ ही दिनों में सब ठीक हो जायगा। चिन्ता करने की जरूरत नहीं। यही कारण है कि तुम्हें कलकत्ते से बुलाना पड़ा।

महायोगी तैलंग स्वामी द्वारा निर्देशित क्रियाओं को करने पर उनकी मनःस्थिति पूर्ववत् हो गई अर्थात् उन्होंने पुनः नरत्व प्राप्त कर लिया।

काशी से वापस आकर तैलंग स्वामी द्वारा बताई गई क्रियाओं को वे निरन्तर करते रहे। कुछ दिनों बाद भूपतिनाथ को पता चला कि महायोगी तैलंग स्वामी ने

समाधि ले ली है। इस समाचार को सुनकर उन्हें असह्य पीड़ा हुई। धीरे-धीरे वे विक्षिप्त-से हो गये।

उनकी यह स्थिति देखकर एक दिन श्री नित्यगोपाल ने कहा कि तैलंग स्वामी के समकक्ष एक और योगी काशी में हैं। वे हैं—स्वामी भास्करानन्द। एक बार उनसे जाकर मिलो। उनसे अपनी स्थिति बताओ। मेरी जानकारी में उनसे बढ़कर कोई योगी इस समय भारत में नहीं है।

इस बार काशी रवाना होते समय भूपतिनाथ ने निश्चय किया कि अगर स्वामीजी की कृपा प्राप्त कर सका तो एक अर्से तक वहाँ रहूँगा ताकि साधना-प्रक्रिया अधूरी न रहे।

इस निश्चय के बाद वे काशी आये और दुर्गाकुण्ड स्थित कोठी में स्वामी भास्करानन्दजी से मिलने गये। इन्हें आते देख स्वामीजी ने स्वागत किया। सारी राम-कहानी सुनने के पश्चात् स्वामीजी इन्हें योग-शिक्षा की प्रक्रिया बताने लगे।

काशी में रहते समय भूपतिनाथ उग्र तपस्या करने लगे थे। आखिर स्वामी भास्करानन्द ने इन्हें 'सरस्वती'[1] बना दिया।

कहा जाता है कि भूपतिनाथ की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने इन्हें साक्षात् दर्शन दिया था। स्वामी भास्करानन्द इनके अन्तिम गुरु थे।

काशी से वापस अपनी जन्मभूमि में आते ही भूपतिनाथ ने अपनी पत्नी से कहा—"अब तुम अपने नैहर चली जाओ। मैं शीघ्र ही भारत-भ्रमण के लिए जाऊँगा। अपने वहाँ रहोगी तो तुम्हारी देखरेख और अन्न-वस्त्र का प्रबन्ध हो जायगा।"

बाद में अपने गुरुभाइयों से गेरुआ वस्त्र, मृगछाला आदि लेकर तीर्थयात्रा के लिए रवाना हो गये। पास में रकम नहीं थी, इसलिए अधिकतर पैदल यात्रा करते रहे। प्रयाग, अयोध्या, हरिद्वार आदि तीर्थों के भ्रमण में कितना समय लगा, यह बताना कठिन है।

* * *

तीर्थाटन करने के बाद पुनः भूपतिनाथ घर वापस आये। इस दौरान उन्होंने अद्भुत ऐशी-शक्ति प्राप्त कर ली थी। स्वयं इस शक्ति से वे अपरिचित थे। फलतः आप जिसे आशीर्वाद देते, तुरत उस व्यक्ति को समाधि लग जाती थी।

शशधर कथकराज नामक एक व्यक्ति परमहंस देव का भक्त था। एक बार वह भूपतिनाथ को अपने घर आदर के साथ ले गया।

यहाँ लोग बड़ी श्रद्धा के साथ उनका स्वागत करने लगे। इसके बाद दुर्घटना होने लगी। जो कोई इन्हें प्रणाम करता, उसे भूपतिनाथ आशीर्वाद देते और तुरत उसे समाधि लग जाती थी। समाधि-अवस्था में लोगों को प्रभु-मूर्ति के दर्शन होने लगे। कथक की पत्नी, समधिन, दामाद सभी की यह स्थिति हो गई।

इसी प्रकार एक बार एक कायस्थ परिवार में भोजन के लिए आमन्त्रित होकर गये। यहाँ भी काफी लोग आपको प्रणाम करने आये। जितने लोगों को आपने

---

१. सर्व-विद्या-विशारद, वेद-वेदांग पारदर्शी।

आशीर्वाद दिया, सभी को समाधि लग गई। लेकिन एक युवती को लेकर आप परेशान हो गये।

समाधि लगने के कुछ देर बाद अपने-आप भंग हो जाती थी, पर इस युवती की समाधि भंग नहीं हो रही थी। अधिक देर तक यह स्थिति बनी रहें, यह ठीक नहीं है।

चिन्तित भाव से आप स्वयं समाधिस्थ हुए और कारण पता लगाने लगे। इधर ज्योंही आप समाधिस्थ हुए, उसके कुछ देर बाद युवती की समाधि भंग हो गई। युवती की समाधि भंग हो गई है, पता लगते ही आपने अपनी समाधि भंग कर दी।

गौर से उस युवती को देखने के पश्चात् भूपतिनाथ ने उसे थोड़ा-सा प्रसाद देते हुए कहा—''लो, इसे ग्रहण करो। आज तुम्हें घर जाने की जरूरत नहीं है। कल सुबह चली जाना।''

फिर एक महिला की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—''देवीजी, आज आप इसे अपने पास सुलाना।''

* * *

भूपतिनाथ की यौगिक-शक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ती गई। एक बार इनके एक परिचित नरेन्द्रनाथ कुण्डू भूपतिनाथ से दीक्षा लेने के लिए आये।

कुण्डू की इच्छा जानकर भूपतिनाथ ने कहा—''मुझसे क्यों? अपने कुलगुरु से दीक्षा ले लो।''

कुण्डू ने कहा—''उनके प्रति मेरी धारणा अच्छी नहीं है।''

भूपतिनाथ ने कहा—''तब अपना सारा असबाब ठीक करके रखो। जहाज आने पर सवार हो जाना।''

कुण्डू बाबू को समझते देर नहीं लगी कि भूपतिनाथ उन्हें दीक्षा देना नहीं चाहते। निराश होकर वे वापस लौट गये।

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक दिन कुण्डू बाबू की मुलाकात भूपतिनाथ के प्रिय शिष्य श्री अजित बन्धु राय से हुई। बातचीत के सिलसिले में उलाहना देते हुए उन्होंने दु:ख का रोना रोया।

अजित बाबू ने कहा—''इसके पूर्व जब आपने गुरुदेव से दीक्षा लेने की चर्चा मुझसे की थी तभी मैं समझ गया था कि उनसे आप दीक्षा प्राप्त नहीं कर सकेंगे। अच्छा, अगर आपको घर बैठे दीक्षा मिल जाय तो कैसा रहे?''

''यह तो मेरे लिए अहोभाग्य की बात होगी।''

अजित बाबू ने कहा—''सद्गुरु पाने का मन्त्र मैं जानता हूँ। वह मन्त्र आपको लिखकर दे रहा हूँ। इसका निरन्तर जाप करने पर घर बैठे गुरु प्राप्त कर लेंगे।''

अन्धे को क्या चाहिए, दो आँखें। अजित बाबू के बताये हुए नियमों के अनुसार उनसे प्राप्त मन्त्र-जाप कुण्डू बाबू करने लगे।

मन्त्र ने एक दिन अपना प्रभाव दिखाया। एक दिन उन्होंने स्वप्न में देखा कि वे महासागर में डूब रहे हैं। उनके चारों ओर पत्नी, बच्चे, परिवार के अनेक सदस्य, घर-द्वार का मायाजाल है। दूर-दूर तक कहीं किनारे का पता नहीं है। इस आकस्मिक संकट से बचने के लिए वे तेजी से भगवान् को पुकारने लगे।

ठीक इसी समय शून्य में एक मन्त्र उभरा। उसे पढ़ते ही सारा मायाजाल बिखर गया। वे चौंक उठे। उनकी आँखें खुल गईं तब उन्हें मालूम हुआ कि यह सब स्वप्न था।

लेकिन शून्य में उभरे मन्त्र को वे भूल नहीं पाये। उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि अजित बाबू द्वारा प्रदत्त मन्त्र तथा इस मन्त्र में पर्याप्त साम्य है। केवल कुछ प्रभेद है। कुण्डू बाबू पहलेवाले मन्त्र का जाप करते रहे।

इस घटना के सात-आठ दिन बाद एक बार अजित बाबू से मुलाकात हुई। उन्होंने पूछा—''इस बीच आपने कोई स्वप्न देखा था?''

कुण्डू बाबू ने स्वप्न के बारे में सारी घटना बताई, पर मन्त्र भी पढ़ा था, इसका उल्लेख नहीं किया।

अजित बाबू ने कहा—''भले ही आप प्रकट न करें, पर मैं सब समझ गया। गुरु महाराज ने उस मन्त्र में किंचित् परिवर्तन कर आपको दिया है। बहरहाल आप उसी मन्त्र को जपते रहिये। शीघ्र ही सिद्ध हो जायगा।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद भूपतिनाथ ने इन्हें स्वप्न में दीक्षा दी। दीक्षा प्राप्त करने के दूसरे दिन कुण्डू बाबू यह समाचार देने के लिए अजित बाबू के घर गये। सारी बातें सुनने के बाद अजीत बाबू प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कुण्डू बाबू को बताया कि अब आगे क्या-क्या करना होगा।

* * *

सबेरे का समय था। लगभग आठ बज चुके थे। ठीक इसी समय बाहर सदर दरवाजे पर कोई साँड की तरह हँकारने लगा—''गुरु महाराज, गुरु महाराज।''

भूपतिनाथ ने सोचा—शायद किसी शिष्य को कोई कष्ट है। वे झटपट बाहर निकले। सामने उनका शिष्य ज्ञानदेव चौधुरी खड़ा था। इन्हें देखते ही आगन्तुक ज्ञानदेव चौधुरी ने कहा—''गुरुदेव, अब आप जैसे व्यक्ति की मुझे कोई जरूरत नहीं है। आपमें कोई दम नहीं है। मुझे आपसे बढ़कर सिद्ध योगी मिल गये हैं। अब आपका दिया मन्त्र भेड़-बकरियों के कान में डाल दूँगा।''

इतना कहने के पश्चात् बड़ी उपेक्षा के साथ ज्ञान चौधुरी पलटकर चल पड़े।

भूपतिनाथ ने बड़े स्नेह से पुकारा—''अरे ज्ञान, मेरी बात तो सुन ले।''

पास आकर ज्ञान चौधुरी ने कहा—''कहिये, क्या कहना चाहते हैं, पर यह सुन लीजिए कि अब आपके दिये मन्त्र का उपयोग नहीं करूँगा। उसे जानवरों को सुना दूँगा।''

भूपतिनाथ ने कहा—''तेरे मन में जो आये, वही करना। मैं तुझे मना नहीं कर

रहा हूँ। लेकिन जब कभी तुझ पर संकट आये तब तू इस मन्त्र का जाप करना। इससे तुझे राहत मिलेगी।''

इतना कहने के पश्चात् उन्होंने एक मन्त्र सुनाया। ज्ञान बाबू अपने घमण्ड में चूर रहे। बड़ी उपेक्षा के साथ उन्होंने गुरुदेव की ओर देखा और फिर तेज कदमों से आगे बढ़ गये।

बात यह थी कि इधर कुछ दिनों से ज्ञान बाबू एक कापालिक के चक्कर में आ गये थे। कापालिक के चमत्कारों से प्रभावित हो गये थे। उसने ज्ञान बाबू को यह विश्वास दिलाया था कि चन्द दिनों में वह इन्हें सिद्ध बना देगा। जब सहज ही किसी से सिद्धि प्राप्त हो जायेगी तब ऐसे पण्डित के दिये मन्त्र की साधना क्यों करूँ?

अमावस्या के दिन कापालिक रात दस बजे क्रिया करने लगा। क्रिया समाप्त होने के एक घण्टा बाद ज्ञान बाबू के शरीर में असह्य पीड़ा प्रारम्भ हो गई। धीरे-धीरे यह पीड़ा इतनी बढ़ गई कि वे मिर्गी के रोगी की तरह जमीन पर छटपटाने लगे।

इनके घर के सामने कुछ वेश्याएँ रहती थीं। इनके कराहने की आवाज सुनकर एक वेश्या ने अपनी नौकरानी से कहा—''मालती, देख तो ज्ञान बाबू को क्या हो गया है? क्यों इतना कराह रहे हैं?''

यह बात कान में जाते ही सहसा ज्ञान बाबू को अपने गुरुदेव द्वारा दिये गये मन्त्र की याद आ गई। याद आया कि गुरुदेव ने कहा था कि जब संकट आये तब इसका जाप करना। इधर पीड़ा इस कदर बढ़ती जा रही थी कि लगा, जैसे मौत आ जायगी।

लाचारी में भूपतिनाथ के दिये मन्त्र का मन ही मन जप करने लगे। लहमे-भर में राहत मिलने लगी। तुरत कुण्डू बाबू ने समझ लिया कि गुरुदेव का मन्त्र लाभ पहुँचा रहा है।

इसके बाद चौकी पर बैठकर तेजी से जाप जपने लगे। इसी बीच उन्होंने देखा कि सामने तेजी से 'रक्षा करो—रक्षा करो' आवाज लगाता हुआ कापालिक चला आ रहा है। ज्ञान बाबू समझ गये कि इसी कापालिक के कारण उनकी यह दशा हुई है। क्रोध से आगबबूला होकर वे बाहर आये और कापालिक की गर्दन पर हाथ लगाकर सड़क की ओर ढकेल दिया।

कुण्डू बाबू की उग्र मूर्ति और यह व्यवहार देखकर कापालिक भाग खड़ा हुआ। उसकी सारी सामग्री कुण्डू बाबू ने बाहर फेंक दी।

* * *

पावना जिले में राधानगर नामक एक गाँव है। वहाँ के एक जमींदार अपनी गलती के कारण एक मुकदमे में फँस गये। यहाँ तक कि उन्हें अपमानित करने के लिए अपर पक्ष ने उनके नाम वारण्ट निकलवाया।

इस समाचार को सुनते ही जमींदार साहब रात को ही फरार होकर कलकत्ता चले आये। उन दिनों भूपतिनाथ कलकत्ते के श्यामपुकुर स्ट्रीट में रहते थे। जमींदार प्रफुल्लकुमार श्री भूपतिनाथ के शिष्य थे। गुरुदेव के पास आकर उनके चरणों पर गिर पड़े।

प्रफुल्लकुमार की सारी कहानी सुनने के बाद उन्होंने ध्यान लगाया। कुछ देर के बाद गुरुदेव ने कहा—"डरो मत बेटा। कुछ नहीं होगा। तुम्हारे सभी वकील-मुख्तार कमजोर हैं। वे ठीक से बहस नहीं कर पाते। अब अपने लिए कोई बैरिस्टर रख लो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम्हारी विजय निश्चित है।"

भूपतिनाथजी उन दिनों अपने एक अन्य शिष्य सुरेन्द्रनाथ मजुमदार के घर ठहरे हुए थे। नित्य सुबह-शाम भक्तों की भीड़ आती जिन्हें भूपतिनाथ उपदेश देते थे। उस समय कोई इन्हें पंख झलता तो कोई पैर दबाता था। इस प्रकार लोग इनकी सेवा करते रहते थे।

सुरेन्द्रनाथ की एक बहन का नाम था—श्रीमती सरलादेवी। उसे भूपतिनाथजी की ऐशी-शक्ति के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। हाल ही में यहाँ आई थी। भूपतिनाथ की सेवा और सत्कार देखकर वह सोचने लगी कि मेरी भाभी को यह कौन-सी सनक सवार हो गई है जो इस पागल की सेवा कर रही हैं।

सरलादेवी अन्तःपुर के दरवाजे के पास खड़ी थी। तभी भूपतिनाथ ने उसकी ओर देखते हुए पूछा—"क्यों बेटी, तुम मुझे पागल समझ रही हो?"

इतना सुनना था कि सरलादेवी अनजाने भय से पीली पड़ गई। आखिर इस व्यक्ति को कैसे यह मालूम हो गया कि मैं इसे पागल समझ रही हूँ। क्या यह वृद्ध लोगों के मन की बात समझ लेता है? अत्यधिक भय के कारण उसके पैर काँपने लगे। बिना कोई जवाब दिये वह भीतर चली गई।

इस घटना के बाद सरलादेवी कभी भी भूपतिनाथ के सामने नहीं गई। भूपतिनाथ सूजी का पायस खाना अधिक पसन्द करते थे। यह बात उनके सभी भक्तों को मालूम थी। जब वे किसी भक्त के यहाँ जाते तब भोजन के समय उन्हें एक कटोरा पायस जरूर परोसी जाती थी।

उस दिन सरलादेवी ने बड़े अच्छे ढंग से पायस बनाई। कटोरे में उड़ेलते समय खाँसी आ गई। अचानक सुपारी का एक कण पायस में गिर गया। सरलादेवी का कलेजा काँप उठा। अब क्या होगा? सारी पायस तो जूठी हो गई।

उधर भूपतिनाथ भोजन करने के लिए बैठ चुके थे। वहाँ से आवाज आई—"पायस तैयार हो गया हो तो भेजो।"

सरलादेवी समझ नहीं पा रही थी कि अब क्या करूँ? जूठी पायस खिलाने से महापाप होगा। नये सिरे से बनाने में समय की जरूरत है और अगर अपनी गलती स्वीकार करती है तो भाई, भाभी तथा अन्य लोगों के सामने अपमानित होना पड़े। इसी कशमकश में सरलादेवी ने मन ही मन कहा—"महाराज, आप अन्तर्यामी हैं। लोगों के मन की बात जान लेते हैं। यह पायस जूठी हो गई है। कृपया इसे ग्रहण न करें।"

इन्हीं बातों को मन ही मन कहती हुई वह पायस की कटोरी लेकर आई और भोजन की थाली की बगल में रखकर वापस चली गई।

वहाँ उपस्थित सभी लोग जानते थे कि पायस भूपतिनाथ के लिए अमृततुल्य है। लेकिन अभी तक उन्होंने स्पर्श नहीं किया। भोजन समाप्त हो गया। लोगों ने पायस ग्रहण करने का अनुरोध भी किया, पर वे केवल मुस्कराकर रह गये। सारी बातें सुनकर सरलादेवी समझ गईं कि गुरु महाराज पागल नहीं, सर्वज्ञ हैं। मन ही मन उन्हें प्रणाम करने लगी।

* * *

कलकत्ते के डायमण्ड हार्बर मुहल्ले में डॉ० सुरेन्द्रनाथ घोष नामक एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति रहते थे। दिन-रात जब देखो तब शिव-राम कहा करते थे। यहाँ तक कि शौच के वक्त भी उनका जप चलता था। घर के लोगों का कहना था कि नींद में भी उनके ओठ जप करते थे।

उनकी इस आदत को देखकर एक दिन छोटे भाई ने परिहास में पूछा—"दादा, दिन-रात जप करते हो, कभी कोई लाभ हुआ?"

घोष बाबू ने कहा—"दिन-रात उन्हें पुकारता हूँ। शायद कभी कृपा हो जाय।"

छोटे भाई ने कहा—"दादा, अगर सचमुच साधना का लाभ उठाना चाहते हो तो भूपतिनाथजी की शरण में जाओ। वे योगी पुरुष हैं। वे तुम्हें सही मार्ग बता देंगे।"

घोष बाबू अपने छोटे भाई की राय सुनकर प्रसन्न हो गये। अपने मित्रों से भूपति बाबू के बारे में सुन चुके थे। अकेला जाने के बदले वे अपने एक परिचित संन्यासी मित्र को लेकर भूपतिनाथजी के यहाँ गये।

बातचीत के सिलसिले में संन्यासी ने कहा—"घोष बाबू आपसे दीक्षा लेने आये हैं। कृपया इन्हें शिष्य के रूप में स्वीकार कर लीजिए।"

भूपतिनाथ ने कहा—"आजकल मेरा समय ठीक नहीं है। अभी दीक्षा नहीं दे सकता।"

भूपतिनाथ की राय सुनकर घोष महाशय निराश नहीं हुए। उनके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि अगर गुरुदेव 'शिवराम' होंगे तो आज ही मुझे दीक्षा देंगे, वरना मुझे दीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। आदत के अनुसार वे 'शिवराम-शिवराम' जपने लगे।

एकाएक भूपतिनाथ ने कहा—"आपको अभी दीक्षा दूँगा।"

घर वापस आकर अपने छोटे भाई को गले लगाते हुए घोष बाबू ने कहा—"प्यारे भाई, आज तेरे कारण मुझे 'शिवराम' मिल गये।"

* * *

कभी-कभी गुरु भी चूक जाते हैं। सुरेन्द्रनाथ मजुमदार की बड़ी भाभी भूपतिनाथजी की ऐशी-भक्ति से परिचित थी। काफी दिनों से वह भूपतिनाथजी से दीक्षा लेने को सोचती रही।

एक दिन दृढ़ निश्चय कर वह भूपतिनाथजी के निकट गई। महिलाओं के लिए यह

नियम है कि जब तक पति से अनुमति प्राप्त न हो जाय तब तक दीक्षा नहीं लेनी चाहिए। लेकिन भूपतिनाथ ने बड़ी भाभी के प्रति रियायत कर दी।

दीक्षा लेने के बाद भाभी घर चली आईं। दूसरे दिन शाम के समय भाभी के कमरे से भयंकर चीख की आवाज आई। घर के अधिकांश लोग उस कमरे में दौड़े हुए गये तो देखा—बड़ी भाभी आसन पर बैठी हैं, परन्तु रीढ़ की हड्डी धनुष की तरह मुड़ गई है। जीभ बाहर निकल आई है। आँखें बन्द हैं, पर आँसू अविरल गति से बह रहे हैं। सारा शरीर लोहे की तरह सख्त हो गया है।

भाभी की यह दशा देखकर सभी घबरा गये। उन लोगों ने सोचा—शायद हिस्टीरिया हो गया है। तुरत सिर पर पानी डालने लगे, कोई हवा करने लगा। कोई उन्हें हिलाने-डुलाने लगा। दो घण्टे लगातार श्रम करने के बाद स्थिति में किंचित् परिवर्तन हुआ। लेकिन इसके बाद दूसरी घटना प्रारम्भ हो गई।

अब वे तेजी से रोने लगीं। बार-बार यह कहने लगीं—''मैं गुरुदेव के पास जाऊँगी।''

समय काफी गुजर चुका था। इतनी रात गये कौन गुरुदेव के पास ले जायगा। कहीं वे नाराज न हो जायँ। व्यर्थ में उन्हें कष्ट देना उचित नहीं है। मँझले देवर ने कहा—''भाभी, इस वक्त काफी रात हो गई है। कल सबेरे मैं आपको गुरुदेव के पास ले चलूँगा। अभी आराम कीजिए।''

सारी रात बेचैनी में गुजरी। भाभी के कारण कोई सो नहीं सका। दूसरे दिन देवर के लड़के ने कहा—''काकी के ऊपर किसी भौतिक देवता का प्रकोप है। इन्हें गुरुदेव के पास ले चलने की अपेक्षा उन्हें यहाँ ले आया जाय।''

मँझले देवर तुरत रवाना हो गये। गुरुदेव ने गौर से बड़ी भाभी को देखा और कहा—''घबराने की बात नहीं है। बेटी को समाधि लग गई है। आप लोग इस बात को ध्यान में रखें कि आइन्दा कभी ऐसी दुर्घटना हो जाय तो कुछ मत करियेगा। केवल इनके कान के पास 'गुरुपद भरोसा' शब्द दुहराते रहियेगा। अपने-आप थोड़ी देर में सब ठीक हो जायगा। देर तक इस स्थिति में रहना शरीर के लिए घातक है।''

इतना कहने के बाद भूपतिनाथ बड़ी भाभी के सामने बैठकर जाप करने लगे। जप पूर्ण करने के बाद बोले—''माँ, शान्त हो जाओ।'' कई बार इसी वाक्य को दोहराते रहे।

इसी प्रकार लगातार कई दिनों तक सुबह आकर भाभी को सामने बैठाकर जप करते रहे। पन्द्रह दिनों के बाद भाभी सही स्थिति में आईं।

तब गुरुदेव ने कहा—''बेटी, जरा भावों को संयत करने की कोशिश किया करो। अभी आगे न जाने कितने भाव-महाभाव आयेंगे। उन्हें बराबर आदर देने का प्रयत्न करना। सत्य की पत्नी की तरह तुम्हें भी समाधि लगने लगी है। मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारा कल्याण होगा। मेरी समझ से तुम्हारा मन्त्र आवश्यकता से अधिक तेजस्वी हो गया है। अब आगे केवल १२ बार जप करना।''

बड़ी भाभी ने कहा—"आपसे जब दीक्षा ले रही थी तब ऐसा लगा जैसे काँसे के अंनेक बरतन एक साथ गिर पड़े हैं। मैं अपने को संयत नहीं कर पा रही हूँ। जीभ और मन दोनों ही बेकाबू हो जाते हैं। भोजन करते वक्त, लड़के के रोने में, यहाँ तक कि देवर जब तबला बजाता है, उस आवाज में भी मन्त्र सुनती हूँ। उस वक्त अपने को स्थिर नहीं रख पाती। ऐसी हालत में मैं क्या करूँ, गुरुदेव?"

गुरुदेव ने गम्भीर होकर कहा—"मुझे डर लग रहा है। फिलहाल चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। जितना कह चुका हूँ, आगे से उतना ही करना। शेष उपचार मैं करूँगा।"

इस घटना के बाद बड़ी भाभी में तेजी से सुधार होने लगे। आगे पुनः कोई दुर्घटना नहीं हुई। कमजोर व्यक्ति को उच्चशक्ति का मन्त्र देने पर कभी-कभी अनर्थ हो जाता है।

* * *

शाम का समय था। अपने कई भक्तों से घिरे भूपतिनाथ वार्तालाप कर रहे थे। इतने में एक युवक बौखलाया-सा आया और उनके चरणों पर सिर रखकर रोने लगा।

देखते ही देखते आशुतोष भूपतिनाथ महारुद्र बन गये। अपना पैर खींचते हुए उन्होंने कहा—"दूर हो जा मेरी नजरों से। मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता। तेरे लिए कुछ भी नहीं कर सकता। तू गुरु-त्यागी है। तेरा मुँह देखना पाप है। तू कुत्ता है।"

उपस्थित सभी भक्त सकते में आ गये। इन लोगों ने अपने जीवन में भूपतिनाथ को कभी क्रोधित नहीं देखा था। स्वभाव से बहुत शान्त और उदार हैं। आखिर आज क्या हो गया।

भूपतिनाथ की फटकार सुनकर वह युवक चुपचाप चला गया, पर उसका आना बन्द नहीं हुआ। नित्य आता और इसी प्रकार अपशब्द सुनकर वापस चला जाता था। बाद में लोगों को मालूम हुआ कि यह युवक नित्यगोपालजी का शिष्य है। साधना करते-करते उन्नीत हो गया तो स्वयं गुरु बनकर शिष्य बनाने लगा। गलती यह हुई कि नये इष्ट मन्त्र के स्थान पर वह अपने गुरु से प्राप्त इष्ट मन्त्र सभी को देने लगा। फलस्वरूप उन्नत स्थिति से स्खलित हो गया।

नित्यगोपालजी का निधन हो गया था। भूपतिनाथ के गुरुओं में वे भी एक थे। अब यह युवक इनकी शरण में आया है। कुछ दिनों बाद भूपतिनाथ का क्रोध ठण्ढा हुआ तब उन्होंने कहा कि अब आज से तुम लगातार एक वर्ष तक मौन व्रत धारण करो। उसके बाद मेरे पास आना तब नया मार्ग बताऊँगा।

एक साल मौन रहने के बाद जब वह युवक भूपतिनाथ के पास आया तब उसे उन्होंने प्रार्थित वस्तु दे दी।

गुरु का महत्त्व और उनके मन्त्र की क्या मर्यादा होती है, इसके दो उदाहरण उपर्युक्त घटनाओं से प्राप्त हो जाते हैं।

भूपतिनाथ बचपन से ही दैवकृपा के कारण ऐशी-शक्ति प्राप्त कर चुके थे। जब इनमें ज्ञान का उदय हुआ तब परमहंस रामकृष्ण देव, नित्यगोपालजी, महायोगी तैलंग

स्वामी और भास्करानन्दजी ने योग की शिक्षाएँ दीं। आम तौर पर भूपतिनाथ कभी भी यौगिक शक्ति का प्रदर्शन नहीं करते थे। मन्त्र-दान के पश्चात् जप करने पर जोर देते थे।

कभी-कभी अनजाने इनसे चमत्कार अपने-आप हो जाता था। एक बार श्री ज्ञानेन्द्र चौधुरी नामक एक व्यक्ति भूपतिनाथजी से मिलने आया। शिष्यों ने इन्हें ऊपर नहीं जाने दिया तो वे बाहर से ही चिल्लाने लगे—''गुरुदेव, गुरु महाराज।''

तेज आवाज में चिल्लाने के कारण भूपतिनाथ नीचे आये। इन्हें देखते ही चौधुरीजी ने कहा—''जरा अपने शिष्यों को समझाइये। मुझे ऊपर आपके निकट जाने से रोक रहे हैं। इन्हें क्या मालूम कि मैं आपका प्रथम शिष्य हूँ। इस दृष्टि से आप पर मेरा कितना अधिकार है।''

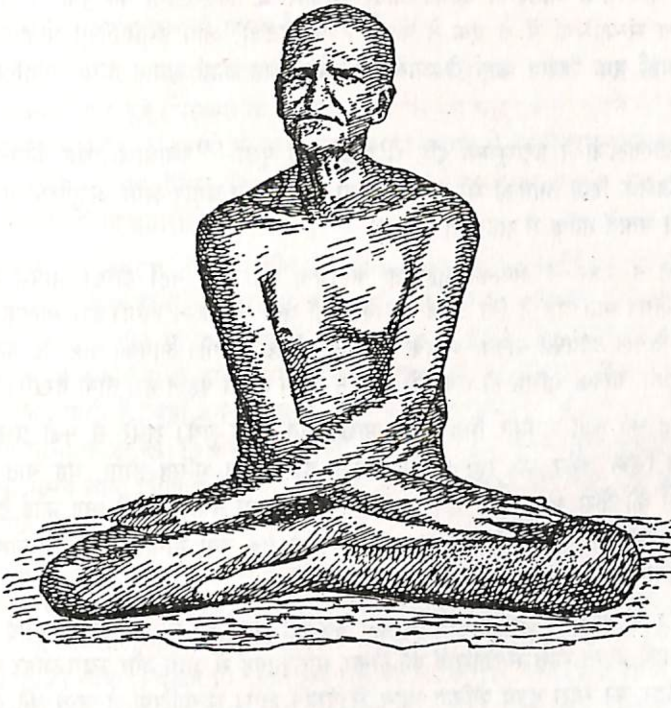
इसके बाद भूपतिनाथ को प्रणाम करते हुए उपस्थित शिष्यों को अपनी राम-कहानी सुनाने लगे—''आज आप लोगों को अपनी कहानी सुना दूँ तब पता चलेगा कि मैं कौन हूँ और कैसे पहली बार गुरुदेव को मैंने पहचाना। आज से काफी दिनों पहले मैं सिद्ध योगी की तलाश में आगरा के जंगलों में चक्कर काट रहा था। गुरुदेव भी मेरे साथ थे। आप तीर्थयात्रा करने निकले थे। अपने भाव में मग्न थे। जब हम दोनों किसी मन्दिर में पहुँचते तब भूपतिनाथजी होम करते। होम के लिए मुझे सूखी लकड़ियाँ लानी पड़ती थीं। उस समय तक मैं भूपतिनाथजी के बारे में कुछ भी नहीं जानता था। मुझे इसका आभास नहीं था कि आप ऊँचे दर्जे के योगी पुरुष हैं। अपनी तरह इन्हें साधारण आदमी समझता था। उन्हीं दिनों मेरे साथ एक दुर्घटना हो गई। नागफनी का एक काँटा मेरी आँख में धँस गया। आँख जैसे कोमल अंग में काँटा धँसने से कितनी पीड़ा होती है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इलाज कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। पीड़ा धीरे-धीरे असह्य हो गई। सात-आठ दिन बाद डॉक्टरों ने कहा—''कल आपकी आँखों का ऑपरेशन होगा।''

''मैंने इस बात की सूचना भूपतिनाथजी को दी तब इन्हें मेरे रोग का पता चला। दरअसल ये हमेशा खोये-खोये-से रहते थे। किसी बात की चिन्ता नहीं थी। इन्होंने सहज स्वर में पूछा—''मुन्ना, क्या हुआ है?'' इतना सुनना था कि मुझे क्रोध आ गया। अपने स्वभाव के अनुसार चिढ़कर मैंने कहा—''मैं मर रहा हूँ और तुम्हें पता भी नहीं? क्या दिखाई नहीं देता? मेरी एक आँख खराब हो गई है। कल ऑपरेशन होगा।''

''गुरुदेव ने मेरी पीड़ावाली आँख पर दो बार अपना हाथ फेरा। आप लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि सारा दर्द छू मन्तर हो गया। लगा जैसे कभी दर्द था ही नहीं। उस समय भी मैं कल्पना नहीं कर सका कि भूपतिनाथ सिद्ध योगी हैं। मैं केवल इस चमत्कार से चकित रह गया। दूसरे दिन अस्पताल ऑपरेशन के लिए गया। सारी तैयारी हो गई। स्ट्रेचर पर लेटने के बाद जब डॉक्टरों ने मेरी आँख देखी तो बोले—''कहीं कोई शिकायत नहीं है। ऑपरेशन की जरूरत नहीं है।''

''डॉक्टरों की बातें सुनकर मुझे पक्का विश्वास हो गया कि यह जादू भूपतिनाथजी के कारण हुआ है। आप सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। उच्चकोटि के योगी हैं। यह तो मेरा अहोभाग्य है जो इन्होंने मुझे अपना लिया है वरना मैं इस लायक नहीं हूँ।''

■ ■ ■



स्वामी भास्करानन्द

कानपुर जिले का मैथालालपुर गाँव। संवत् १८६०, आश्विन मास की सप्तमी के दिन शाम होने के पूर्व तीन अपरिचित संन्यासी गाँव में मिश्रीलाल मिश्र का पता पूछते हुए उनके घर आये।

इन संन्यासियों को देखकर गाँव के लोगों को आश्चर्य नहीं हुआ। पण्डित मिश्रीलाल मिश्र के यहाँ अनाहूत की तरह बराबर साधु-संन्यासी आते रहते हैं। सन्तों की सेवा करने की उनकी आदत है। उन्हें भोजन देते हैं, आश्रय देते हैं और राह-खर्च देकर गाँव के बाहर तक पहुँचा आते हैं। केवल साधु-सन्तों के प्रति वे दयालु नहीं हैं बल्कि किसी भी अभावग्रस्त व्यक्ति की सहायता करने को सदा उन्मुख रहते हैं। मिश्रीलाल जाड़े के दिनों में गली-कूँचे में टहलते हुए यह देखते हैं कि कोई कपड़े के

अभाव में सर्दी से ठिठुर तो नहीं रहा है? कोई भूख के कारण परेशान तो नहीं है? ऐसे लोगों को अपने यहाँ लाकर भोजन देते हैं और रात गुजारने के लिए आश्रय देते हैं।

आजकल तो नवरात्र चल रहा है। इन दिनों वे किसी को भी अपने यहाँ भोजन-आश्रय देने में प्रसन्नता अनुभव करेंगे। भगवान् की कृपा से खुशहाल हैं, इसलिए यह सब कर पाते हैं।

अपने दरवाजे पर एकसाथ तीन संन्यासियों को खड़े देखकर मिश्रीलालजी बड़े आदर के साथ उन्हें भीतर ले आये। आदर-सत्कार के लिए लोगों को पुकारने लगे। तभी आगत संन्यासियों में से एक ने कहा—''पण्डितजी, आप हमारे लिए परेशान न हों। हम यहाँ एक विशेष कार्य से आये हैं। ज्योंही वह कार्य समाप्त होगा त्योंही हम चल देंगे।''

मिश्रीलालजी ने प्रश्नसूचक दृष्टि से देखते हुए पूछा—''स्वामीजी, वह कौन-सा कार्य है जिसके लिए आपको मेरे घर आने का कष्ट करना पड़ा। अगर असुविधा न हो तो मुझे भी बतायें ताकि मैं सहायता करूँ।''

सन्त ने कहा—''आपकी सहायता के बिना यह कार्य नहीं होगा। आपसे हम सहायता लेंगे। बात यह है कि आज आपके यहाँ एक पुत्र जन्म लेगा। इस बालक के कारण न केवल आपकी बल्कि आपके वंश की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। आपको कष्ट यह करना है कि ज्योंही बालक भूमिष्ठ हो तब उसे कोई न देखे। सबसे पहले हम तीनों देखेंगे।''

सन्त की बातें सुनकर मिश्रीलाल आश्चर्यचकित रह गये। सबेरे से पत्नी प्रसव-वेदना का जिक्र जरूर कर रही थी, पर आज ही सन्तान भूमिष्ठ होगा, यह बात इन संन्यासियों को कैसे मालूम हो गई? आखिर ये लोग उसे क्यों देखेंगे? क्या कोई देव-पुरुष आ रहा है? सम्भव है कि लड़की जन्म ले तब क्या होगा? इसी ऊहापोह में उन्होंने संन्यासियों से पुनः कोई प्रश्न नहीं पूछा।

रात्रि के दो प्रहर व्यतीत होने के बाद नवजात शिशु की क्रन्दन-ध्वनि सुनाई दी। मिश्रीलालजी अपने साथ संन्यासियों को लेकर सूतिकागृह में आये और स्वयं बाहर खड़े होकर भीतर का सारा दृश्य शंकित हृदय से देखने लगे। संन्यासियों ने बच्चे को देखा और कहा—''पण्डितजी, जल्दी से होम की सामग्री लाइये।''

मिश्रीलाल ने कहा—''आधी रात को होम की सामग्री कहाँ से लाऊँगा। होम करना था तो आप शाम को.....''

बीच ही में उन्हें रोककर एक संन्यासी ने कहा—''आपको कहीं से लानी नहीं है। बगल के कमरे में सामग्री है, उसे ले आइये। समय गुजरता जा रहा है।''

मिश्रीलालजी चकित भाव से बगल के कमरे में गये तो देखा—सारी सामग्री तैयार है। पता नहीं, कैसे यह सब सामग्री आ गई। लगता है, बाबा लोग अपने साथ ले आये हैं। सामान लाकर उन्होंने संन्यासियों को दे दिया। थोड़ी ही देर में सूतिकागृह होमाग्नि से गमक उठा। होम करने के बाद तीनों संन्यासी बाहर निकल आये।

इसके बाद घर के लोग आकर हर्ष मनाने लगे। अचानक मिश्रीलाल को सन्तों की सेवा की याद आई। वे बैठक में आये। तीनों संन्यासी अन्तर्धान हो चुके थे। बाहर चाँदनी फैली हुई थी। दूर-दूर तक देखने पर वे कहीं नहीं दिखाई दिये। ये लोग कौन थे, क्यों आये थे और होम क्यों किया, इन प्रश्नों का उत्तर देनेवाला कोई नहीं था।

दूसरे दिन पूरे गाँव में यह समाचार फैल गया कि मिश्रीलाल मिश्र के यहाँ जो लड़का पैदा हुआ है, उसे देखने के लिए देवलोक से ब्रह्मा, विष्णु और महेश आये थे। किसी ने कहा—''ऐसा भला हो सकता है?'' दूसरे ने पूछा—''उन्हें होम करने की क्या गरज पड़ी थी? फिर तुरत हवा में गायब कैसे हो गये?''

अन्नप्राशन के दिन बालक का नामकरण हुआ—मोतीराम। इसके बाद क्रमशः मुण्डन, उपनयन आदि हुए। परम्परा के अनुसार पिता संस्कृत पढ़ाने लगे। पढ़ने के बाद बालक अक्सर न जाने कहाँ गायब हो जाता था। उसकी तलाश में मिश्रीलाल परेशान हो जाते थे। उन्होंने अनुभव किया कि शायद मैं अधिक कड़ाई करता हूँ। अब इसे पाठशाला भेजना उचित होगा।

पिता के आदेशानुसार मोतीराम गाँव से दूर न जाकर अपने हमजोलियों के साथ खेलते-कूदते रहे। कुछ दिनों बाद सहसा बालक में अपने-आप परिवर्तन होने लगा। जिस बालक के लिए तीन महात्मा जन्म के समय आये थे, उसके प्रति मिश्रीलाल की ममता अधिक थी; इसीलिए वे हमेशा उसका ख्याल रखते थे। इस उम्र के बालक जहाँ वाचालता प्रकट करते हैं, वहाँ उनका बालक शिव की प्रतिमा बनाता या चुपचाप बैठा न जाने क्या सोचा करता था। मिश्रीलाल की पत्नी ने कहा—''यह सब लक्षण ठीक नहीं हैं। जन्म के समय बाबा लोगों ने न जाने क्या कर दिया है। इसकी शादी कर दो। कहीं साधु बन गया तो क्या होगा?''

पत्नी की सलाह मानकर वे योग्य लड़की की तलाश करने लगे। अन्त में एक रूपवती योग्य बालिका को पुत्रवधू के रूप में घर ले आये। उन दिनों मोतीराम की उम्र बारह साल थी। मिश्रीलाल का ख्याल था कि रूपवती पत्नी के कारण अब इसका अनमनापन दूर हो जायगा। देखते ही देखते छह वर्ष का समय गुजर गया। इसी समय दो विचित्र घटनाएँ हुईं। मोतीराम प्रथम पुत्र के पिता बने। दादा बनने की प्रसन्नता में मिश्रीलाल ने उस दिन गरीबों को अन्न-वस्त्र दान किया। पड़ोसियों का मुँह मीठा किया। इस घटना के एक सप्ताह बाद मोतीराम घर से गायब हो गये।

आसपास के गाँवों से लेकर प्रत्येक रिश्तेदारों के यहाँ पता लगाने पर भी मोतीराम का कहीं पता नहीं लगा। पौत्र के जन्म का सारा आनन्द निरानन्द में परिवर्तित हो गया।

* * *

घर से रवाना होकर मोतीराम कई तीर्थों का चक्कर काटते हुए उज्जैन आये। इस बीच कई सन्तों के दर्शन हुए। उनका प्रभाव मोतीराम पर पड़ चुका था। नित्य शिप्रा नदी में स्नान करने के पश्चात् वे महाकालेश्वर का दर्शन करने जाते थे। इसके बाद सुनसान स्थान में आकर ध्यान लगाते थे।

कुछ दिनों बाद जब राहगीर उनसे तरह-तरह के प्रश्न करने लगे तब वे श्मशान-भूमि के निकट चले आये जहाँ कुछ साधु रहते थे। इनकी जमात से दूर अपने लिए उन्होंने एक गुफा खोज ली। इस निर्जन गुफा में उन्हें आनन्द मिलने लगा। काफी दिनों तक एकान्तं-सेवन करने के पश्चात् मोतीराम ने अनुभव किया कि जब तक किसी योग्य गुरु से योग की शिक्षा नहीं लूँगा तब तक साधना का सही मार्ग नहीं मिलेगा।

मोतीराम के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि जिस दिन उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ, ठीक उसी दिन दक्षिण भारत के प्रसिद्ध स्वामी पूर्णानन्द तीर्थयात्रा करते हुए उज्जैन आये। इस समाचार को सुनते ही मोतीराम उनके निकट गये और अपनी इच्छा प्रकट की।

स्वामी पूर्णानन्द योगी पुरुष थे। उन्होंने मोतीराम को तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। उसकी शक्ति पहचानकर उन्होंने कहा—"ठीक है। पहले प्राणायाम से प्रारम्भ करूँगा।"

मोतीराम ने कहा कि प्राणायाम की समस्त विधियाँ मुझे ज्ञात हैं। पूर्णानन्दजी की आज्ञा पर उन्होंने कई कठिन प्राणायाम करके दिखाया। पूर्णानन्दजी ने कहा—"तब योग तुम्हारे लिए सरल है।"

स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से योग की शिक्षा प्राप्त कर उन्हीं की आज्ञा से एक बार तीर्थ-भ्रमण के लिए निकले। वहाँ से गुजरात आकर यहाँ के पण्डितों से वेदान्त का अध्ययन करने लगे। चार वर्ष तक अध्ययन करने के बाद वे पुनः उज्जैन वापस आये। उस समय तक स्वामी पूर्णानन्द वहीं थे।

स्वामीजी के निकट आकर उन्होंने कहा—"स्वामीजी, आपके आज्ञानुसार तीर्थ-भ्रमण और वेदान्तों का अध्ययन कर चुका। अब कृपया मुझे दीक्षा देकर शिष्य बना लीजिए।"

स्वामीजी ने कहा—"परसों स्नान के पश्चात् यहाँ चले आना। उसी दिन तुम्हें पूर्ण रूप से संन्यास दूँगा।"

निश्चित समय पर मोतीराम मिश्र स्वामीजी के पास आये। उन दिनों मोतीराम की उम्र सत्ताईस वर्ष थी। स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती ने गुरु-मन्त्र देने के बाद कहा—"आज से तुम अपना पूर्वनाम त्यागकर भास्करानन्द सरस्वती नाम ग्रहण करोगे।" इसके बाद एक दण्ड देते हुए कहा—"आज से तुम दण्डी स्वामी-सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये।"

गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम करने के बाद वे कुछ दिनों तक उनके सान्निध्य में उपदेश ग्रहण करते रहे। इसी बीच उन्हें पता चला कि उनके एकमात्र पुत्र का देहान्त हो गया है। इस समाचार से उन्हें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं हुई।

कुछ दिनों बाद वे उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के असनी गाँव में आये। यहाँ वे एक ब्राह्मण के घर रहने लगे। एक दिन उन्होंने सोचा कि अब मैं सर्वत्यागी बन गया हूँ तब इस दण्ड को बेकार लिए फिरता हूँ। यह विचार आते ही एक दिन स्नान करते समय उसे गंगा में प्रवाहित कर दिया।

असनी गाँव से वे कानपुर चले आये। संन्यास लेने के पश्चात् व्यक्ति को एक बार अपनी जन्मभूमि में आना पड़ता है। यह विचार आते ही वे मैथालालपुर आये। संन्यासी के रूप में उन्हें पाकर गाँववालों ने इनका बड़ा आदर किया। इस आदर-स्नेह से मुक्ति पाने के लिए एक दिन वे रात को चुपचाप चल दिये। साथ में जितने वस्त्र तथा वस्तुएँ थीं, वह सब फेंक दीं। केवल कौपीन पहनकर पूर्ण रूप से वैरागी बन गये।

कानपुर से हरिद्वार होते हुए बदरीनाथ आये। यहाँ से केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्तरी दर्शन करते हुए मानसरोवर चले आये। यहाँ से पुनः दक्षिण भारत के तमाम तीर्थों का दर्शन करने के बाद आप हरिद्वार आकर विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन में जुट गये।

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि अब यायावर-जीवन समाप्त कर निश्चित रूप से कहीं रहना आवश्यक है। उन्हें सभी तीर्थों से उत्तम काशी नगरी अधिक उपयुक्त प्रतीत हुई। तत्काल वे काशी आकर गंगा किनारे रहने लगे। प्रचण्ड गर्मी में तप्त बालू पर चुपचाप बैठे रहते। भयंकर शीत और वर्षाकाल में भी वे अपने स्थान पर ध्यान लगाये रहते। किसी भी प्रकार के प्राकृतिक दुर्योग का आप पर प्रभाव नहीं पड़ता था।

कहते हैं कि लोग सोते हैं, पर उनकी जबान चलती रहती है। आपके त्याग-तपस्या के प्रति काशी के नागरिक आकृष्ट हुए। आपकी चर्चा होने लगी। फलस्वरूप आर्त-पीड़ित लोग आशीर्वाद पाने के लिए आपके निकट आने लगे। इससे आपकी साधना में व्याघात पहुँचने लगा। कभी-कभी लोगों से बचने के लिए वे गंगा के उस पार चले जाते थे।

ठीक इन्हीं दिनों अमेठी के नरेश ने आपसे आग्रह किया कि उनके बाग में चलकर रहें। स्थान मनोरम है और वहाँ सर्वसाधारण आकर तंग नहीं कर सकेंगे। अमेठी-नरेश की कोठी नगर के दक्षिणी छोर पर दुर्गाकुण्ड की बगल में थी। पहले यह बाग राजा अमृत पेशवा का था। सन् १८५७ ई० के विद्रोह के समय इस कोठी को अपने कब्जे में लेकर सरकार ने नीलाम कर दिया था। उस समय अमेठी-नरेश श्री लालमाधव सिंह ने खरीद लिया। उन्होंने ही इस कोठी का नाम 'आनन्दबाग' रखा था।

राजा साहब के आग्रह पर स्वामी भास्करानन्दजी आनन्द बाग में चले आये। यहाँ स्वामीजी को राजा की ओर से पर्याप्त सम्मान दिया गया। आपकी सेवा के लिए आठ नौकर नियुक्त किये गये थे। इन आठों नौकरों की देखरेख से घबराकर स्वामीजी ने एक दिन उन्हें बुलाकर कहा—"देखो बेटा, मुझे तुम लोगों की सेवा की कोई जरूरत नहीं है। मैं ठहरा बैरागी बाबा, मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है। अगर तुम लोग मेरी सेवा करना चाहते हो तो इतना करना कि मेरे पास कोई अचानक न आने पाये।"

यहाँ आने के बाद सर्वसाधारण की भीड़ में कमी जरूर हो गई, पर सम्पन्न घराने की भीड़ बढ़ने लगी। बालिका, युवती, सधवा, विधवा, बहुएँ, रजवाड़े की रानियाँ आने लगीं। इस संकट से बचने के लिए वे आनन्दबाग स्थित एक भूमिगत कमरे में रहने

लगे। यहाँ उन्होंने नियम बना लिया कि मेरे कमरे में कोई नहीं आ सकता। मैं दिन में एक बार कुछ देर के लिए ऊपर आऊँगा और तभी दर्शनार्थियों से मिलूँगा।

* * *

अमेठी-नरेश के यहाँ एक बार किसी राज्य के एक देशी नरेश आकर ठहरे। स्वामीजी का व्यवहार उन्हें ढोंग प्रतीत हुआ। दरअसल वे स्वामीजी के बारे में अन्य ढोंगी संन्यासियों जैसा विचार रखते थे। उन्होंने स्वामीजी की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए जाल फेंका। नगर से तीन वारवधुओं को बुलाकर उन्होंने कहा—"इस मकान में एक संन्यासी रहते हैं। अगर तुम अपने हाव-भाव और कर्त्तव्य से उन्हें अपने जाल में फाँस सको तो तुम्हें १००-१०० रुपये इनाम दूँगा।"

उन दिनों १०० रु० की काफी कीमत थी। इतनी बड़ी रकम पाने के लालच में वे तुरत राजी हो गईं। शाम ढले तीनों वारवधुएँ मनमोहिनी शृंगार किये आईं। उन्हें यह बता दिया गया कि स्वामीजी कहाँ हैं। तीनों वेश्याएँ हाथ में दीपक लेकर भूगर्भ स्थित बाबा के कमरे में आईं तो देखा—वे समाधि लगाये बैठे हैं। आँखें बन्द हैं। कुछ पल उन्हें देखने पर इनके मन का कलुष दूर हो गया। वे झटपट ऊपर चली आईं।

राजा केतकी फूलों के कुंज में छिपे सारा दृश्य देख रहे थे। इन्हें वापस आते देख वे चौंककर पास आये। नगरवधुओं ने कहा—"महाराज साहब, हमसे यह काम नहीं होगा। हमें घर पहुँचा दीजिए।"

राजा मायूस होने के बदले पुरस्कार की रकम दस गुना बढ़ाते हुए बोले—"मैं तुम लोगों में प्रत्येक को एक-एक हजार रुपये दूँगा। जाओ, हुक्म का पालन करो।"

हजार रुपये के लालच में पुनः तीनों भूगर्भ में आईं। उन्होंने देखा—स्वामीजी की समाधि भंग हो गई है। वे विस्मय से देख रहे हैं। तुरत सिंह की तरह गरजते हुए बोले—"अगर तुम लोगों को अपनी जान प्यारी है तो तुरत यहाँ से भाग जाओ।"

यह बात सुनते ही दो भाग गईं, पर हजार रुपये पाने के लालच में एक रुक गई। तभी न जाने कहाँ से एक काला नाग आकर उसके पैरों से लिपटकर फुफकारने लगा। वह प्राणपण से चिल्लाने लगी—"महाराज, मुझे बचाइये। क्षमा करें महाराज। मैं मर जाऊँगी। स्वामीजी, मुझे बचाइये।"

वह इस प्रकार चिल्लाती रही। उसे उसी हालत में छोड़कर स्वामीजी ऊपर आकर अन्य कमरे में चले गये। इधर राजा ने सोचा—तीसरी आखिर क्या कर रही है? यह देखने के लिए उसने भूगर्भ स्थित कमरे के प्रवेश-द्वार से नीचे की ओर देखा। उस दृश्य को देखते ही वह भी भाग खड़ा हुआ।

इस घटना के बाद से फिर किसी को स्वामीजी की परीक्षा लेने का साहस नहीं हुआ। भोर के समय नाग नगरवधू के पैरों से अलग होकर एक ओर चला गया। कहा जाता है कि आगे चलकर उक्त नगरवधू शरीर बेचने का रोजगार छोड़कर भगवत्पूजन में लग गई।

* * *

आनन्दबाग में रहते हुए स्वामीजी कठोर साधना करते रहे। संवत् १९२५ में उन्होंने कौपीन को भी तन से अलग कर दिया। अब वे पूर्ण रूप से दिगम्बर रहने लगे। इन दिनों की स्थिति के बारे में श्री भूधर बाबू ने लिखा है—"कड़ाके की सर्दी में स्वामीजी किसी प्रकार वस्त्र नहीं ओढ़ते थे। यहाँ तक कि धूनी भी नहीं जलाते थे। बायें हाथ पर सिर रखकर सोते रहते थे। शरीर पर ओस के कण साफ-साफ दिखाई देते थे। प्यास लगने पर किसी पात्र में पानी नहीं पीते थे बल्कि अंजलि में पानी पीते थे।"[1]

वेंकटेश्वर समाचार के अनुसार स्वामीजी का दर्शन करने के लिए नित्य हजारों लोग आते थे। कभी-कभी भीड़ के कारण सदर गेट बन्द करवा दिया जाता था। फिर भी दर्शनार्थियों की श्रद्धा और विनय से त्रस्त होकर स्वामीजी को दर्शन देना पड़ता था। स्वामीजी के शिष्यों की संख्या एक लाख से अधिक थी। इनमें राजा-महाराजा अगणित थे। उनकी योग-विभूति से प्रभावित होकर तत्कालीन अनेक देशी नरेशों ने अपनी कोठियाँ दुर्गाकुण्ड के समीप बनवाईं थीं। अयोध्या, काश्मीर, रींवा, नाटोर, भिनगा, डुमराँव, बेतिया, शियारसोल, दरभंगा-नरेश के भवन काशी में बने। बाबा के भक्त अनेक सरकारी कर्मचारी थे।[2]

भारत ही नहीं, भारत के बाहर विदेशों में भी स्वामीजी की ख्याति फैली हुई थी। भारत के अनेक राजा, महाराजा स्वामीजी की सेवा में विभिन्न प्रकार के व्यंजन, फल भेजा करते थे। सिंगापुर से केसूर, ईरान से बैर, चीन से केले, काबुल से सरदे, हैदराबाद से तरबूज आदि पोस्ट पार्सल से आते थे। स्वामीजी यह सब चीजें जिलाधीश, सिविल सर्जन, कोतवाल, जज आदि को दान कर देते थे। काशी, दरभंगा, बड़हल, नेपाल, नागौद, बेतिया, अयोध्या आदि नगरों के राजा भी ऐसे पदार्थ भेजते थे जिन्हें स्वामीजी कुत्तों, बन्दरों, बिल्लियों, गायों आदि को खिला देते थे।[3]

प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी काशी-प्रवासकाल में अक्सर स्वामीजी का दर्शन करने आते थे। एक दिन आने पर उन्होंने देखा कि एक देशी नरेश एक थाली में मोहरें भरकर उसे स्वीकार करने का अनुरोध कर रहे हैं। स्वामीजी चुपचाप बैठे हैं। यह देखकर गोस्वामीजी कहने लगे—

न योगी न भोगी न वा मोक्षाकांक्षी
न वीरो न धीरो न वा साधकेन्द्रः ।
न शैवो न शाक्तो न वा वैष्णवो वा
वधूतश्चिदानन्दरूपो महेशः ॥
श्मशाने गृहे वा हिरण्ये तृणे वा
तनूजे रिपौ वा हुताशे जले वा ।
स्वकीये परे वा समत्वेन बुद्धे
विरजेहवधूते द्वितीयो महेशः ॥

---

१. दि इण्डियन डेली न्यूज, १९०० ई०, पृष्ठ ८।

२. वेंकटेश्वर समाचार, २१ जुलाई, सन् १८९९ ई०।

३. अमृत बाजार पत्रिका, १८ मई, १९०० ई०।

रूस के युवराज अपने छोटे भाई के साथ भास्करानन्दजी स्वामी का दर्शन करने आये थे। योगियों के पास आते ही उनके तेज का प्रभाव पड़ता है। युवराज स्वामीजी से अत्यन्त प्रभावित हुए। चार वर्ष बाद अपने एक दूत के द्वारा अनेक रूसी फल भिजवाए थे।

अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कथाकार मार्क ट्वेन को भारत में सबसे अधिक भास्करानन्दजी के व्यक्तित्व ने प्रभावित किया था। स्वामीजी के बारे में उनके कई लेख प्रकाशित हुए हैं।

भारत के तत्कालीन जनरल लंकहर्ट, उनकी पत्नी, लेफ्टिनेण्ट जनरल और मेजर जनरल के साथ अमेठी-कोठी में स्वामीजी का दर्शन करने गये। सन् १८९८ ई० में उत्तर प्रदेश के गवर्नर श्री जे० डिगेश आये थे।[1]

जब मार्क ट्वेन के लेख प्रकाशित हुए तब जर्मनी के सम्राट् कैसर विलियम द्वितीय ने श्री ग्रफ कर्णिगसमार्क को अपना दूत बनाकर काशी भेजा ताकि स्वामीजी कुछ दिनों के लिए जर्मनी में आकर उस देश को पवित्र करें। स्वामी ने दूत से कहा—''मेरी यह प्रतिज्ञा है कि काशी छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा।''

अमेरिका, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के पत्रों में उन दिनों स्वामीजी के बारे में अनेक लेख प्रकाशित हुए थे। भारत में हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, मराठी पत्र-पत्रिकाओं में जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए हैं।

संवत् १९३० में पण्डित मिश्रीलाल मिश्र का मन उचट गया। लड़का संन्यासी बन गया। एकमात्र पौत्र की अकालमृत्यु हो गई। एक दिन किसी को बिना कोई सूचना दिये वे काशी चले आये और यहाँ संन्यास लेकर रहने लगे। बाद में यहीं उनका निधन हो गया। उधर घर पर मिश्रीलालजी की पत्नी अपने पति, पुत्र, पौत्र को खोने के बाद बदरीनाथ दर्शन करने गईं। वहाँ ऐसी बीमार हुईं कि भगवान् ने उन्हें भी अपने यहाँ बुला लिया।

* * *

कलकत्ते से एक लखपति सेठ काशी आये। नगर में रहने की अपेक्षा वे छावनी-क्षेत्र में किराये का मकान लेकर रहने लगे। यहाँ रहते हुए उन्होंने देखा कि इस क्षेत्र के अधिकांश अंग्रेज नर-नारी किसी भारतीय योगी की चर्चा करते हैं। उनका दर्शन करने जाते हैं। कौतूहलवश एक दिन वह भी स्वामीजी के पास आये।

कुछ देर बाद स्वामीजी ने आदेश दिया कि अब तुम वापस चले जाओ। लखपति सेठ गया नहीं, बल्कि चुपचाप वहीं बैठा रहा। सुबह से दोपहर, फिर शाम हो गई। स्वामीजी ने कहा—''भूख-प्यास को रोककर यहाँ बैठने से क्या लाभ होगा। जाओ, घर जाकर आराम करो।''

सेठ ने कहा—''घर जाकर क्या करूँगा? मन में बड़ी अशान्ति है। यहीं भूखा-प्यासा प्राण दे दूँगा। अगर आपकी कृपा प्राप्त......।''

---

१. भारत जीवन, २६ दिसम्बर, १८९८ ई०।

स्वामीजी ने बात काटते हुए कहा—''मैं जानता हूँ कि तुम्हारी पत्नी गुजर गई है और अभी तक अशौच दूर नहीं हुआ है, पर यहाँ तुम नित्य क्लब जाते हो, विदेशी रमणियों के साथ रंगरेलियाँ मनाते हो।''

देखते ही देखते सेठ के चेहरे का रंग उड़ गया। उन्होंने अनुभव किया कि यह सब बातें मेरे सिवा कोई जानता भी नहीं। स्वामीजी कैसे जान गये। जरूर त्रिकालदर्शी हैं। आत्मग्लानि और पश्चात्ताप ने उन्हें प्रायश्चित्त के लिए प्रेरित किया। स्वामीजी के चरण आँसुओं से धोते रहे। दयालु स्वामीजी ने उनके अपराधों को क्षमा करते हुए बाद में उन्हें दीक्षा दी।

* * *

इसी प्रकार की एक घटना का उल्लेख श्री क्षेत्रचन्द्र बसु ने किया है। उन्होंने लिखा है—''पत्नी के निधन के बाद मेरा मन उचाट हो गया। शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से स्वामीजी के निकट गया। मुझे देखते ही उन्होंने कहा—'क्यों बेकार परेशान हो रहे हो? अभी तुम्हें पुनः नये सिरे से गृहस्थी बसानी है'।''

''स्वामीजी की बातें सुनकर मैं चौंक उठा। मैंने अपनी पत्नी के निधन की चर्चा तक नहीं की थी, पर अन्तर्यामी ने सब कुछ जान लिया। मैं गुरुदेव के समीप काफी देर तक बैठा था। सहसा मैंने देखा कि एक महिला की छाया-मूर्ति जो गोद में बालक लिए हुए थी, मेरे आसपास टहल रही है।

तभी उस छाया-मूर्ति की ओर देखते हुए स्वामीजी ने कहा—'मेरी राय है कि अब तुम घर चले जाओ। मेरा यह भी आदेश है कि तुम पुनः एक विवाह कर लो। अगर ऐसा नहीं कर सके तो भविष्य में मेरे यहाँ मत आना।' इस आदेश को शिरोधार्य कर मैं घर वापस आया। पुनर्विवाह हुआ। सोहागरात को देखा—यह वही मूर्ति थी जिसे काशी में गुरुदेव के पास देखा था।

''विवाह के तीसरे दिन मैं हैजे से पीड़ित हो गया। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। माँ ने व्याकुल होकर गुरुदेव के पास तार भेजा—''आपके आदेश पर मैंने लड़के का विवाह किया। अब वह मरणासन्न है, इसे बचाइये।'' तुरत तार से जवाब आया—''घबराओ मत। तुम्हारा लड़का ठीक हो जायगा।'' स्वामीजी का तार आने के बाद मेरी हालत में सुधार होने लगा।

''मुझे इस तरह मौत के मुँह से निकलते देख मेरे बहनोई राय रमानाथ घोष स्वामीजी के प्रति श्रद्धा से विगलित हो उठे। वे स्वयं अपनी एक समस्या लेकर बाबा के पास गये। बात यह थी कि उनका एकमात्र पुत्र था। वे उसका विवाह करने में हिचक रहे थे। जन्म-पत्रिका के अनुसार १६वें वर्ष में मारकेश योग था। स्वामीजी से राय माँगने पर उन्होंने कहा—'आप लड़के का विवाह कर दीजिए।'

''स्वामीजी से आश्वासन पाकर रमानाथ सपत्नीक वापस चले आये। उनके जाने के बाद एक ज्योतिषी जो कि स्वामीजी के पास बैठा था, बोले—'महाराज, इस बालक पर संकट आनेवाला है और आपने उसके विवाह की आज्ञा कैसे दे दी?'

"स्वामीजी ने कहा—'जिस लड़की के साथ इस लड़के का विवाह होनेवाला है, उसके भाग्य में वैधव्य लिखा है, उसे कौन मिटा सकता है? उसके कर्म इस लड़के के कर्म से संयुक्त हैं। उसे विधवा होना ही है। लेकिन जब तक मैं जीवित हूँ तब तक उसकी अकालमृत्यु नहीं होगी।'

"आगे चलकर स्वामीजी हैजे से पीड़ित हुए। उधर लड़का घोड़े से गिर पड़ा। कुछ दिनों तक स्वामीजी अचेतावस्था में थे और बाद में अपना कलेवर छोड़ दिया। ठीक उसी समय वह बालक भी चल बसा।"

* * *

महाराजा के शिष्यों में अयोध्या के नरेश श्री प्रतापनारायण सिंह थे। एक बार काशी आकर वे स्वामीजी की सेवा में काफी दिनों तक रह गये। अचानक एक दिन राज्य से तार आया। तार पाते ही राजा साहब यात्रा की तैयारी करने लगे। बाद में स्वामीजी के पास आकर अनुमति माँगी।

स्वामीजी ने कहा—"यात्रा स्थगित कर दो। अभी तुम काशी के बाहर नहीं जा सकते।"

यह आज्ञा सुनकर राजा साहब सहम गये। राजा साहब के राज्य में एक घटना हो गई जिसके लिए उन्हें जाना आवश्यक है और इधर स्वामीजी जाने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं। अजीब कशमकश थी। उन्होंने निवेदन किया कि मेरा जाना बहुत जरूरी है।

स्वामीजी ने कहा—"अगर इतना आवश्यक है तो जिस गाड़ी से जाने का निश्चय किया है, उससे मत जाओ। बाद में जो गाड़ी जानेवाली हो, उससे जाओ।"

इस आज्ञा को शिरोधार्य कर राजा साहब यथासमय स्टेशन आये तो पता चला कि इसके पहलेवाली गाड़ी जौनपुर के समीप मालगाड़ी से टकरा गई है। रास्ता साफ होने में समय लगेगा। गुरुदेव की भविष्यवाणी पर उनका तन-मन पुलकित हो उठा।

एक बार स्वामीजी ने संवत् १९५२ में कानपुर के भक्त गयाप्रसाद के विशेष आग्रह पर उनके यहाँ जाने का निश्चय किया। वे चाहते थे कि यह यात्रा चुपचाप हो, मन में एक शंका थी कि अयोध्या-नरेश को अगर पता चल गया तो वह जरूर रोक लेगा। स्वामीजी की शंका सही साबित हुई। अयोध्या स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही कई हजार लोग स्वामीजी की जयजयकार करने लगे। महाराजा ने नतजानु होकर चरणधूलि ली। भक्त के आग्रह पर स्वामीजी को उनके महल तक जाना पड़ा।

अयोध्या के इतिहास में वह महान् दिवस था। ऐसा दृश्य बीसवीं शताब्दी में किसी को कभी देखने के लिए नहीं मिला था। स्टेशन के बाहर खड़े रथ में तेरह घोड़े लगे हुए थे और उस पर स्वामीजी को बैठाकर स्वयं राजा प्रतापनारायण सिंह बहादुर कोचवान के रूप में रथ को आगे बढ़ाने लगे। सड़क के दोनों ओर अपूर्व सजावट थी। लाखों लोग पलक-पाँवड़े बिछाये फूलों की बरसात कर रहे थे।

महल में लाकर राजा साहब ने उनके चरणों को सरयू के जल से धोया। इसके

बाद छत्रपति शिवाजी ने जिस प्रकार समर्थ गुरु रामदास के चरणों में सब कुछ समर्पित किया था, ठीक उसी प्रकार प्रतापनारायण सिंह ने कोषागार, अस्त्र, सेना, पूरे परिवार को गुरुदेव को समर्पित कर दिया।

अयोध्या से स्वामीजी कई जगह होते हुए मैथालालपुर अपने गाँव आये। यहाँ कई लाख लोगों की भीड़ एकत्रित थी। स्वामीजी के लिए पहले से मंच तैयार था। स्वामीजी जिस रास्ते से पैदल आ रहे थे, उस पर हजारों लोग लोटने लगे, क्योंकि उन्हें चरण-रज लेना था, पर इस माहौल में सभी के लिए सुलभ नहीं था। कम-से-कम इस पवित्र भूमि पर पड़े पावन चरण-रज की गन्ध शरीर स्पर्श कर ले।

मंच पर बैठते ही स्वामीजी ने इधर-उधर देखने के बाद पूछा—''यहाँ लछमन मल्लाह कहीं हो तो बुलाओ।''

यह आदेश पाते ही पुलिस और कार्यकर्ता तत्पर हो गये। दो घण्टे बाद वह मिला। स्वामीजी के पास जाते ही उन्होंने उसका हाथ पकड़कर अपनी बगल में बैठाया। आज उसके भाग्य पर लोग धन्य-धन्य कह उठे। कुछ ने कहा—''स्वामीजी गरीबों के देवता हैं।''

स्वामीजी के यहाँ काफी बड़े-बड़े लोग आते थे, इसलिए उनके बारे में यह प्रचारित हो गया था कि वे बड़े आदमियों से सम्पर्क रखते हैं जब कि उपर्युक्त उदाहरण से यह धारणा गलत प्रमाणित हो गई। उनकी दृष्टि में राजा-रंक समान थे।

काशी में सहाय नामक एक तेली रहता था। उसका नित्य का नियम था कि सबेरे स्नान करने के बाद वह सबसे पहले स्वामीजी का दर्शन करता था। इसके बाद अपने काम पर जाता था। उसे देखते ही स्वामीजी कह उठते थे—''आओ, मेरे बाप।''

केवल यही नहीं, काशी के कुछ खोमचेवाले, दुकानदार, नौकरी पेशेवाले साधारण लोग स्वामीजी का दर्शन करने के बाद अपने-अपने गन्तव्य स्थल जाते थे। नगर के संगीतज्ञ सबसे पहले स्वामीजी को अपना संगीत सुनाने के बाद समारोह में जाते थे। एक प्रकार से स्वामीजी सभी के लिए गृह-देवता थे।

* * *

ख्यातिप्राप्त डॉक्टर भादुड़ी महाशय डकारों से परेशान थे। अक्सर यह पीड़ा इतनी बढ़ जाती थी कि वे परेशान हो जाते थे। स्वामीजी के निकट आकर उन्होंने अपने कष्ट का वर्णन करते हुए कहा कि प्रभु, आशीर्वाद दीजिए।

स्वामीजी ने उन्हें सो जाने को कहकर उनके पेट पर हाथ फेरते हुए कहा—''ठीक हो गया।'' उसी दिन से उनका कष्ट दूर हो गया।

एक शिष्य अपने गुरुदेव का दर्शन करने आया। प्रणाम करने के बाद उसने कहा—''भगवन्, आज मैं घर वापस जा रहा हूँ।''

स्वामीजी ने उसे एक फल देते हुए कहा—''इस फल को साथ लेते जाओ। घर जाकर सबसे पहले अपने तीसरे पुत्र को खिला देना।''

शिष्य महोदय समझ नहीं पाये कि आखिर तीसरे पुत्र को क्यों खाने को दे रहे हैं। प्रसाद तो सभी खा सकते हैं। कलकत्ता आने पर उन्होंने देखा कि उनका तीसरा पुत्र मरणासन्न है। झट सारी बातें समझ गये। डॉक्टरी इलाज रोककर उन्होंने अपने तीसरे पुत्र को वह फल खिलाया। उसी दिन से वह स्वस्थ होने लगा।

* * *

वाराणसी का ब्रह्मनाल-निवासी शीतलाप्रसाद स्वामीजी का परम भक्त था। एक दिन शीतलाप्रसाद का पुत्र तीसरी मंजिल से नीचे गिर पड़ा। हालत चिन्ताजनक हो गई। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। यह देखकर वे उसी हालत में बच्चे को लेकर स्वामीजी के पास आये।

दयामय स्वामीजी ने उसे अपना पादोदक दिया। बच्चे के मुँह में पादोदक पड़ते ही वह होश में आ गया और स्वस्थ हो गया।

इस घटना के कुछ ही रोज बाद सुखीरपुर-निवासी एक ब्राह्मण आया। उसकी बीमारी अजीब थी। वह जो कुछ खाता, तुरत कै हो जाती थी। इस रोग के कारण उसका स्वास्थ्य काफी खराब हो गया था। आगन्तुक अपनी व्यथा को व्यक्त करे, उसके पहले ही स्वामीजी ने कहा—''पाण्डेजी, आप जरा जल्दी से खिचड़ी बनाइये।''

खिचड़ी बन जाने पर स्वामीजी के सामने परोसी गई। भास्करानन्दजी ने उस थाली से एक दाना चावल लेकर खाया। शेष खिचड़ी ब्राह्मण महाशय से खाने को कहा। पाण्डेजी ने डरते-डरते खाया। काफी देर बाद स्वामीजी ने कहा—''जाओ, अब डर नहीं है।''

कानपुर जिले के बाबू नारायण सिंह स्वामीजी के शिष्य थे। नारायण सिंह जब स्वामीजी के दर्शन के लिए काशी आते थे तब सपत्नीक आते थे। इस बार वे चुपचाप अकेले रवाना हो गये, क्योंकि पत्नी गर्भवती थी। इस हालत में उन्हें ले जाना उचित नहीं था। गाड़ी मुगलसराय पहुँची तो देखा—जनाने डिब्बे से उनकी पत्नी बाहर निकल रही हैं। अब क्या करते। लाचारी में सपत्नीक बाबा के दरवाजे में आये।

दूसरे ही दिन पत्नी को प्रसव-वेदना होने लगी। उसकी हालत देखकर नारायण सिंह उद्विग्न हो उठे। शहर में कहीं रहते तो कुछ करते। बाबा के आश्रम में कौन मददगार बैठा है।

ठीक इसी समय मानकी नामक एक महिला बाबा को प्रणाम करने आई। उसे देखते ही स्वामीजी ने कहा—''मेरे साथ आ।''

नारायण सिंह जिस कमरे में ठहरे हुए थे, वहाँ जाकर नारायण सिंह से बिना कोई प्रश्न किये उन्होंने मानकी से कहा—''भीतर कमरे में ठकुराइन हैं। तू भीतर चली जा और उनके सिर पर हाथ फेरती हुई कहना—''दस दिन देर से बच्चा हो।'' यह वाक्य केवल तीन बार कहना।''

स्वामीजी की आज्ञानुसार मानकी भीतर गई और तीन बार स्वामीजी की बातों को दोहराया। तुरत प्रसव-वेदना दूर हो गई। स्वामीजी मुस्कराते हुए वापस चले गये।

* * *

ढाका जिले में स्थित बहरमपुर गाँव के निवासी श्री चण्डीचरण बसु मधुमेह रोग से पीड़ित थे। धीरे-धीरे रोग बढ़ता गया। चारों ओर से निराश होकर वे स्वामीजी के पास आये। उद्देश्य था कि मरने के पहले दीक्षा ले लूँगा वरना पशु-योनि में जन्म लेना पड़ेगा।

बसु महोदय का संकल्प सुनकर स्वामीजी ने कहा—''तुम्हें दीक्षा देने में कोई आपत्ति नहीं है, पर पहले अपने कुलगुरु से मन्त्र ले लो। इसके बाद दीक्षा लेने आना।''

स्वामीजी की राय सुनकर बसु महोदय निराश हो गये। कुलगुरु ढाका में हैं, ऐसी हालत में ढाका जाना, फिर वापस आना सम्भव नहीं था। मुमकिन था कि इस तरह की यात्रा में प्राण-नाश हो जाय। इसी चिन्ता में वे परेशान रहने लगे। एक दिन गंगा-स्नान कर लौट रहे थे तो सहसा कुलगुरु से उनकी मुलाकात हो गई। वे खुशी से उछल पड़े। कुलगुरु को सारी बातें बताकर उनसे मन्त्र लिया और इसके बाद स्वामीजी से दीक्षा।

इस घटना के बाद वे स्वामीजी के पास बराबर जाते रहे। एक दिन स्वामीजी ने कहा—''अब घर वापस चले जाओ। तुम्हारी बीमारी ठीक हो गई है।''

बसु महोदय ने सोचा—गुरुदेव केवल आश्वासन दे रहे हैं। तकलीफ तो पहले की तरह मौजूद है।

स्वामीजी ने कहा—''तुम्हारा रोग उनतालीसवें दिन बिलकुल ठीक हो जायगा, अब बेकार समय बरबाद मत करो।''

बसु महोदय मन में द्विधा लेकर कलकत्ता चले आये। कुछ दिनों बाद यहाँ रहते समय उनके नाम इस आशय का एक तार आया कि तुरत ढाका चले आइये।

बसु महोदय अपने डॉक्टरों से राय लेने के लिए गये कि सफर करने लायक मेरी स्थिति है या नहीं? डॉक्टरों ने उन्हें सफर करने से मना किया। लेकिन कार्य इतना जरूरी था कि उन्हें जाना ही पड़ा। ढाका आने के ठीक चौथे दिन उन्होंने अनुभव किया कि उनका सारा कष्ट दूर हो गया है।

तुरत डायरी खोलकर उन्होंने देखा तो ज्ञात हुआ कि आज से उनतालीस दिन पूर्व स्वामीजी ने जो भविष्यवाणी की थी, आज वह सत्य प्रमाणित हो गई।

इस घटना के कुछ दिनों बाद बसु महाशय ढाका शहर में डिप्टी कलक्टर बन गये। इस पद पर कार्य करते हुए एक बार गुरुदेव का दर्शन करने के लिए काशी आये।

अचानक एक दिन बसु महोदय की इच्छा हुई कि स्वामीजी को अपने हाथ का बनाया भोजन खिलाऊँ, पर दूसरे ही क्षण ख्याल आया कि मैं तो शूद्र जाति का हूँ। भला मेरे हाथ का बनाया भोजन गुरुदेव कैसे करेंगे?

बसु महोदय इसी प्रकार का ख्याली पुलाव पका रहे थे कि उन्होंने देखा—दरवाजे के पास स्वामीजी खड़े हैं। उन्हें प्रणाम करते ही स्वामीजी ने कहा—''देखो चण्डी, तुम्हें लोग शूद्र समझते हैं जब कि तुम ब्राह्मण हो। मेरी आज इच्छा हुई कि तुम्हारे हाथ का बनाया भोजन करूँ। कल ऐसा आयोजन करना।''

बसु महाशय का हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठा। लगा, जैसे शबरी के घर राम भोजन करने आये हैं। उनकी आँखों से आँसू ढुलक पड़े। दूसरे दिन गुरुदेव ने बसु महोदय को बुलाकर जनेऊ पहनाया और उनके हाथ का भोजन प्रेम से किया।

भोजन के पश्चात् स्वामीजी ने कहा—''देखो चण्डी, अब आगे से तुम ब्राह्मण के अलावा अन्य किसी के हाथ का बनाया भोजन मत करना।''

इसी प्रकार की कृपा उन्होंने प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के एक शिष्य पर की थी। उक्त शिष्य ने एक बार स्वामीजी से प्रश्न किया—''प्रभो, भक्ति कैसे होती है?''

इस प्रश्न का उत्तर देने के बदले उन्होंने कहा—''तुम इसी वक्त आनन्दबाग से निकल जाओ।''

वह व्यक्ति नाराज होकर चला गया। एक सामान्य प्रश्न पूछने पर इतना क्रोध क्यों? रात को उसके स्वप्न में आकर स्वामीजी ने उसके प्रश्न का उत्तर विस्तार से दिया था।

* * *

बड़हल की रानी एक बार मुकदमे के चक्कर में बुरी तरह उलझ गईं। समय गुजरता गया। यहाँ तक कि इस मुकदमे में सारा धन स्वाहा होता गया। किसी ने रानी साहिबा को सलाह दी कि स्वामी भास्करानन्दजी के पास चले जाइये। वे आपको राहत दिला देंगे।

स्वामीजी के पास आने पर उन्होंने कहा—''घबराओ मत। तुम्हारी जीत होगी।''

मुकदमे में विजय प्राप्त करने के बाद बड़हल की रानी ने स्वामीजी के पास डेढ़ लाख रुपये भिजवाये जिसे उन्होंने लेने से इनकार कर दिया। जब स्वामीजी ने यह धन नहीं लिया तब उन्होंने आनन्दबाग के समीप एक शिव-मन्दिर बनवा दिया। स्वामीजी के मना करने पर भी उनकी एक संगमरमर की मूर्ति बनवाकर स्थापित की।

स्वामीजी से काशी-नरेश ईश्वरीप्रसाद सिंह भी प्रभावित थे। उन्होंने स्वामीजी की एक मूर्ति बनवाकर अपने किले में स्थापित की थी।

* * *

जिन दिनों स्वामीजी आनन्दबाग में थे, उन दिनों काशी में दो अन्य योगिराज रहते थे। साक्षात् विश्वनाथ के अवतार तैलंग स्वामी जो अक्सर भास्करानन्दजी के यहाँ चले आते थे। दूसरे स्वामी विशुद्धानन्दजी थे जिन्हें स्वामीजी बड़े भैया कहा करते थे।

एक बार तैलंग स्वामी आनन्दबाग में आये। स्वामी भास्करानन्दजी ने पहरेदार को बुलाकर कहा—''देखो, अब कोई भी मुझसे मिलने आये तो उसे मत आने देना। चाहे कोई भी हो। फाटक बन्द करके वहीं पहरा दो।''

इस घटना के आधे घण्टे बाद बिहार के किसी स्टेट के एक राजा साहब अपने तामझाम सहित आये। पहरेदार ने कहा—''आज स्वामीजी से मुलाकात नहीं हो सकती। आप कल आइयेगा।''

राजा गरजे—''जानते हो मैं कौन हूँ? खोलो दरवाजा।''

पहरेदार ने कहा—''सख्त हुक्म है कि इस वक्त स्वामीजी किसी से नहीं मिलेंगे और न फाटक खोला जायगा।''

एक सामान्य पहरेदार इस प्रकार राजाज्ञा की उपेक्षा करे, इसे वे कैसे सहन कर सकते थे? राज-रोष उमड़ा। तुरत उन्होंने अपने साथ आये प्यादों से कहा—''फाटक तोड़ डालो। हम स्वामीजी से मिलकर ही रहेंगे। देखें, कैसे कोई रोकता है?''

फाटक टूट गया। डर से पहरेदार भीतर खबर देने दौड़ा। उसके पीछे-पीछे राजा साहब बाग के भीतर आये तो एक अद्भुत दृश्य देखा—बाग में तैलंग स्वामी और भास्करानन्दजी मृतावस्था में पड़े हैं। कहीं दोनों संन्यासी नाटक तो नहीं कर रहे हैं, इसे जाँचने के लिए उन्होंने तैलंग स्वामी के शरीर को स्पर्श किया।

स्पर्श करते ही दोनों व्यक्ति प्रकृतिस्थ होकर बैठे और तीव्र दृष्टि से राजा की ओर देखने लगे। राजा को लगा, जैसे आग की एक लहर उनके पूरे बदन को जला रही है। वे भयवश भाग खड़े हुए। थोड़ी दूर जाते-जाते गिर पड़े और बेहोश हो गये। बाद में उनके प्यादे उन्हें गाड़ी पर लादकर ले गये।

कुछ दिनों बाद पचास कर्मचारियों के साथ उपहार लेकर राजा साहब स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए थे। काफी अनुनय करने पर उन्हें क्षमा मिल गई। लेकिन इस घटना के बाद से बिना आज्ञा कोई भी व्यक्ति स्वामीजी का दर्शन नहीं कर पाता था।

* * *

नेपाल के एक राणा मीना बहादुर नेपाल की ओर से कलकत्ता में कौंसिलर थे। आप बाबा के शिष्य थे। बाबा के उपदेशों का आप पर इतना प्रभाव पड़ा कि आप पत्नी, पुत्र, परिवार, सम्पत्ति आदि छोड़कर हिमालय में जाकर साधना करने लगे। आप अपनी साधना में इतने उन्नत हो गये थे कि जब इच्छा होती थी तभी अपने गुरुदेव का दर्शन कर लेते थे। स्वामीजी सूक्ष्म रूप में वहाँ पहुँच जाते थे।

एक बार यही मीना बहादुर बाबा के पास बैठे थे। ठीक इसी समय कलकत्ता हाईकोर्ट के जज सर रमेशचन्द्र मित्र बाबा के पास आये और बातचीत के सिलसिले में उन्होंने बाबा से पूछा—''महाराज, कल आपने बताया था कि जगत् कुछ नहीं है। यह तो बन्ध्या-पुत्र की तरह अलीक है। ऐसी स्थिति में जब हम कुछ स्पर्श करते हैं तब उसकी अनुभूति क्यों होती है?''

इस प्रश्न को पूछने के बाद उन्होंने स्वामीजी के चरण को स्पर्श किया और उसे अपने माथे से लगाने को थे कि सहसा स्वामीजी अपने आसन से अदृश्य हो गये।

दोनों व्यक्ति आश्चर्यचकित हो रहे थे कि बाबा शून्य से नीचे आकर पुनः अपने आसन पर बैठ गये। इसके बाद उन्होंने कहा—''देखो रमेश, मेरा यह शरीर शून्य में वृक्ष की तरह अगर अलीक नहीं होगा तो अभी मैं था और अभी नहीं, ऐसा क्यों होता है?''

इतना कहकर स्वामीजी पुनः अदृश्य हो गये। इस बार भी दोनों व्यक्ति दंग रह गये। इस प्रकार कई तरह के अलौकिक चमत्कार उन दोनों व्यक्तियों को दिखाते हुए उनकी शंकाओं का समाधान स्वामीजी ने किया।

* * *

इस बार जब स्वामीजी मैथालालपुर गये तब अपने साथ लछमन मल्लाह को सपत्नीक ले आये थे। दोनों स्वामीजी की सेवा करते रहे। ठीक इन्हीं दिनों बम्बई में प्लेग फैला। इसके साथ ही अकाल पड़ा। अन्नाभाव के कारण काफी लोग मरने लगे।

एक दिन स्वामीजी के मुँह से निकल गया—"कलि के पापों का घड़ा पूरा हो रहा है। अब इस दुनिया में न रहना ही उत्तम है। उस समय बनारस के डिप्टी कलक्टर सामने बैठे थे। उनकी ओर देखते हुए स्वामीजी ने कहा—"मेरे बाद मेरे शव को चार टुकड़ों में काटकर चार दिशाओं में फेंक देना ताकि पक्षियों को आहार मिल जाय।"

डिप्टी कलक्टर पण्डित महाराज ने कहा—"भगवन्, आप अपना यह आदेश वापस ले लें। मुझसे यह कार्य नहीं होगा।"

११ जुलाई, बुधवार, १८६६ ई० के दिन स्वामीजी हैजे से पीड़ित हुए। धीरे-धीरे हालत खराब होती गई। शनिवार तक वे अपने आसन पर बैठे थे। १५ जुलाई रविवार के दिन वे परमधाम चले गये।

दुर्गाकुण्ड पर उनका स्मृति-मन्दिर तथा नगर के बाहर भास्करा तालाब उनकी स्मृति सँजोये हुए है।

■ ■ ■

स्वामी सदानन्द सरस्वती

प्रातःकाल का समय था। पण्डित राममाणिक्य अपनी चटशाला में छात्रों को कठोपनिषद् की व्याख्या करते हुए अर्थ बता रहे थे। ठीक इसी समय एक स्वरूपवान् किशोर आया। साष्टांग प्रणाम करने के पश्चात् वह विनीत भाव से खड़ा हो गया।

आगन्तुक की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखते हुए राममाणिक्य ने कहा—''आयुष्मान् हो। कहो वत्स, क्या चाहते हो?''

किशोर ने हाथ जोड़ते हुए कहा—''आपके चरणों का आशीर्वाद प्राप्त करने आया हूँ। मुझे अपना शिष्य बनने का गौरव प्रदान करें। आपसे ज्ञान प्राप्त करने आया हूँ।''

राममाणिक्यजी को समझते देर नहीं लगी कि बालक ज्ञान-पिपासु है। अध्ययन के लिए आया है। उन्होंने नाम-धाम और अब तक के अध्ययनों के बारे में कई प्रश्न पूछने के बाद कहा—''मुझे तुम्हारे जैसे शिष्य को विद्यादान देने में हर्ष होगा। किन्तु अपने निवास आदि का प्रबन्ध स्वयं करना होगा।''

किशोर ने कहा—''निवास के लिए 'तांतीपाड़ा' (जुलाहों का मुहल्ला) में मुझे एक घर मिल गया है। शेष प्रबन्ध श्रीचरणों की कृपा से कर लूँगा।''

पण्डितजी ने हर्षित होकर कहा—''साधु, साधु। तब अगली प्रतिपदा से अध्ययन प्रारम्भ करना।''

काशी, मिथिला, काश्मीर, नवद्वीप की भाँति किसी जमाने में वर्तमान कलकत्ता नगरी का एक कोना जो वराहनगर नाम से जाना जाता है, संस्कृत-विद्या का केन्द्र था। यह अठारहवीं शताब्दी के मध्य की बात है। इसी वराहनगर में वंश-परम्परा से बंगाल के प्रसिद्ध पण्डित राममाणिक्य रहते थे, जिनकी चटशाला में विभिन्न स्थानों से विद्यार्थी संस्कृत के अध्ययन के लिए आते थे। राममाणिक्य के छात्र राजा, महाराजा और जमींदारों के यहाँ आकर पूजा-पाठ तथा धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते थे।

कुछ ही दिनों में राममाणिक्य ने अनुभव किया कि आगन्तुक किशोर अत्यन्त मेधावी छात्र है। आगे चलकर यह बालक अपने गुरु का मुख उज्ज्वल करेगा। जब किसी गुरु को प्रतिभाशाली छात्र प्राप्त होता है तब वे अपना सारा ज्ञान उसे दे देने में संकोच नहीं करते। आगन्तुक किशोर शिरोमणि भट्टाचार्य कुछ ही दिनों में अपने श्रम तथा लगन से अनेक विषयों में पारंगत हो गया।

इसी बीच गुरुदेव राममाणिक्य का निधन हो गया। शिरोमणि भट्टाचार्य गुरुपुत्र श्री

गौरीप्रसाद तर्कालंकार को चटशाला में गुरु-पद पर आसीन करके उनकी सहायता करने लगे। कुछ वर्षों बाद गुरु-पुत्र गौरीप्रसाद का निधन हो गया।

गौरीप्रसाद के निधन के बाद शिरोमणिजी का दिल टूट गया। उन्होंने अपने गुरु की चटशाला को गुरुजी के पौत्र रामप्रसाद विद्यालंकार को सौंपकर अपने निवास-स्थान पर अलग से एक चटशाला की स्थापना की। इस प्रकार वराहनगर में दो चटशालाएँ कार्य करने लगीं। रामप्रसादजी भी असाधारण पण्डित थे, परन्तु शिरोमणि भट्टाचार्य की ख्याति उनसे अधिक थी। बंगाल के कई जमींदार और राजा आपके मन्त्र शिष्य बन गये।

शिरोमणि भट्टाचार्य की ख्याति दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। इसके पीछे भट्टाचार्यजी की पत्नी का विशेष हाथ था। वह असाधारण सुन्दरी थी। दूसरी ओर अत्यन्त कोमल हृदयवाली थी। दूर-दूर से आये छात्रों को भोजन देती, स्नेह देती और अस्वस्थ होने पर तीमारदारी करती थी।

शिरोमणिजी की इन सेवाओं से प्रभावित होकर गाँव के लोग अनाज-तरकारी की सहायता देते थे। जब किसी सामग्री की आवश्यकता होती तब वे सहायता करते थे। छात्र पानी भरते, लकड़ी चीरते, चारों ओर सफाई करते। जीवन सरल गति से चल रहा था।

शिरोमणिजी के प्रिय छात्रों में चिन्तामणि, संन्यासीचरण, ठाकुरदास और कालीचरण मैत्र थे, पर वे सबसे अधिक स्नेह ठाकुरदास से करते थे। वह इसलिए कि ठाकुरदास उनके गुरु पण्डित राममाणिक्य का प्रपौत्र था। इसके अलावा एक और प्रमुख कारण था।

बढ़ती उम्र के कारण शिरोमणिजी अशक्त हो गये। शरीर में जगह-जगह मांस झूलने लगा था। अपने गुरु से प्राप्त मन्त्र की साधना करते हुए भगवान् से प्रार्थना करते— ''प्रभो, अब मुझे मुक्ति दो।''

सहसा एक दिन जब वे ध्यानस्थ हुए तब उन्हें लगा जैसे वे किसी अदृश्य स्थान में उपस्थित हैं और एक शक्ति उन्हें आदेश दे रही है—''शिरोमणि, अभी समय नहीं आया है। जब तक ठाकुरदास के ज्ञान का विकास नहीं होगा तब तक तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। वह शापभ्रष्ट ऋषि है। यही उसका अन्तिम जन्म है। उसके ज्ञान का विकास होने पर तुम्हारी लीला समाप्त होगी।''

शिरोमणिजी यह भविष्यवाणी सुनकर चौंक उठे। उन्हें ठाकुरदास की जन्म-कहानी अच्छी तरह याद है। गुरुदेव के पुत्र गौरीप्रसाद असाधारण विद्वान् थे। उनके जीवनकाल में ही ठाकुरदास ने वृद्धावस्था में जन्म लिया था। गौरीप्रसाद के दो पौत्रों का विवाह हुए काफी दिन व्यतीत हो गये थे, पर दोनों ही सन्तान-हीन रहे। गौरीप्रसाद की पत्नी चिन्तित हो उठी। कहीं यह वंश लुप्त न हो जाय। अपने पति से आज्ञा लेकर गौरीप्रसाद की पत्नी तारकेश्वर धाम चली गई।

बंगाल स्थित तारकेश्वर धाम को आज भी जाग्रत् स्थान माना जाता है जहाँ नित्य लाखों यात्री आते हैं और मन्नत मानते हैं। बाबा तारकेश्वर से गौरीप्रसाद की पत्नी ने कामना की कि मेरे रामप्रसाद को एक ऐसा पुत्र दो जो मेरे वंश का मुख उज्ज्वल कर सके। मैं उसका लालन-पालन तुम्हारा प्रसाद समझकर करूँगी।

दादी की मनोकामना पूरी हो गई। यथासमय बच्चे ने जन्म लिया। दादी ने पोते का नाम रखा—ठाकुरदास। शुक्ल पक्ष के चाँद की तरह लड़का बड़ा होता गया। मुण्डन-अन्नप्राशन के बाद दादा चले गये। उपनयन होने के बाद पिता रामप्रसाद परलोकवासी हुए। इस घटना के बाद माँ भी पति के मार्ग पर चली गई। बालक अभी बचपन की ड्योढ़ी पार भी नहीं कर सका और स्नेह-दान करनेवाले तीन-तीन प्राणी चले गये।

ठाकुरदास उपेक्षित न रहे, इसलिए दादी पिता-माता के अभाव को दूर करने के लिए सबसे अधिक स्नेह देने लगी। बड़ी भाभियों ने उसे देवर के रूप में नहीं, बेटे के रूप में स्वीकार किया।

अक्सर जब बड़े भाई प्रेमचन्द उसे डाँटते तब दादी नाराज होकर कहती—"शर्म नहीं आती छोटे भाई को डाँटते? मेरा फूल-सा पोता तेरे कारण पीला पड़ता जा रहा है।"

प्रेमचन्द वेगान्तवागीश कहते—"दादी, तुम्हारे दुलार ने इसे ढीठ बना दिया है। ब्राह्मण-वंश का लड़का है, अगर वेद-उपनिषद् नहीं पढ़ेगा तो खायेगा क्या?"

दादी कहती—"बड़ा होने पर जब बुद्धि आयेगी तब स्वयं ही सब करेगा। जिस बच्चे ने माँ-बाप के स्नेह को नहीं जाना, उस पर कठोर शासन करेगा तो मैं किसके सहारे जिऊँगी? मेरे जीवित रहते मेरा योग्य पुत्र, गृहलक्ष्मी बहू चली गई। कम-से-कम उसे मेरे सहारे छोड़ दे।"

इस घटना के बाद प्रेमचन्द ने डाँटना-फटकारना बन्द कर दिया। ठाकुरदास दिनभर अपने साथियों के साथ खेलता था। अक्सर न जाने कहाँ गायब हो जाता था। लेकिन उसके सभी साथी यह जानते थे कि वह श्मशान-भूमि में रहनेवाले भैरवी तथा सिद्ध बाबा के पास नित्य जाता है। अक्सर कालीघाट जाकर मन्दिर-दर्शन करता है।

प्रेमचन्द को पूर्ण रूप से निःस्पृह देखकर दादी समझ गई कि वह मुझसे नाराज है। एक दिन स्वयं ठाकुरदास को लेकर शिरोमणि की चटशाला में पहुँचा आई। ठाकुरदास को पाकर शिरोमणिजी फूले नहीं समाये। आखिर गुरु-घराने का लड़का अपनी चटशाला छोड़कर मेरे यहाँ आया है।

शिरोमणिजी की चटशाला में ठाकुरदास का आगमन शुभ हुआ। वृद्ध पण्डित ने अनुभव किया कि जैसे उनके नेत्र की ज्योति बढ़ गई हो। उनमें नवजीवन और स्फूर्ति आ गई हो। अब मिजाज का चिड़चिड़ापन भी दूर होने लगा है। कुछ ही दिनों में शिरोमणिजी ने अनुभव कर लिया कि यह सब ठाकुरदास के कारण हो रहा है।

* * *

बड़े भाई प्रेमचन्द और छोटे भाई ईशानचन्द दोनों ही सबेरे स्नान करने के बाद घर पर कुलदेवता की पूजा करते थे। पूजा के लिए बागों से फूल ले आने का काम ठाकुरदास को करना पड़ता था। नित्य भोर के समय वह गाँव के भिन्न-भिन्न बागों में जाकर फूल चयन करता था।

एक दिन जब वह बेल की पत्तियाँ तोड़ रहा था तब पता नहीं किधर से आवाज आई—''क्यों रे छोकरे, जिस टहनी से मैं पत्तियाँ तोड़ रहा हूँ, उसे तू क्यों तोड़ दे रहा है?''

ठाकुरदास ने कहा—''अरे वाह! मैं जिस डाली को पकड़ रहा हूँ, उसमें आप तोड़ रहे हैं। ऊपर से मुझ पर बिगड़ रहे हैं।''

वृद्ध ने कहा—''आखिर तू इन बेलपत्तियों को लेकर क्या करेगा? पूजा-पाठ कुछ जानता भी है?''

ठाकुरदास ने सोचा कि अगर पूजा करता हूँ, कहूँगा तो मन्त्र पढ़ने को कहेंगे, इसलिए उसने कहा—''मैं गायत्री-पाठ करता हूँ। पूजा तो दादा करते हैं।''

वृद्ध ने पूछा—''तू गायत्री मन्त्र जानता है? जरा सुना तो मुझे।''

ठाकुरदास से गायत्री मन्त्र सुनने के बाद वृद्ध ने कहा—''गायत्री मन्त्र जानता तो है, पर उच्चारण ठीक नहीं है। मन्त्र ठीक से उच्चारण करना सीख।''

ठाकुरदास ने कहा—''अब सीखूँगा।''

वृद्ध ने कहा—''मुझसे सिखेगा? मैं सिखा दूँगा। कल से और जल्दी यहाँ आ जाना। तुझे बहुत कुछ सिखा दूँगा। लेकिन देख, यह बात किसी से मत कहना, वरना कुछ भी नहीं सीख सकेगा।''

इतना कहने के पश्चात् वृद्ध ने सिर से लेकर हृदय और पीठ पर हाथ फेर दिया। ठाकुरदास एक झटके में सिहर उठा। उसे लगा जैसे तीव्र गति से कुछ उसके मस्तिष्क से उतरकर पैरों तक आ गया। जब तक वह प्रकृतिस्थ हो, उसके पहले ही वृद्ध महाशय न जाने कहाँ गायब हो गये। पता नहीं कहाँ रहते हैं, कौन हैं? इन्हें गाँव में तो कभी नहीं देखा।

लगातार तीन वर्ष तक उक्त अपरिचित वृद्ध से ठाकुरदास मन्त्र आदि की शिक्षा लेता रहा। घर या गाँव के किसी मित्र को यह बात मालूम नहीं हो सकी। नित्य पूजा-घर में फूल-बेलपत्तियाँ रखकर वह न जाने कहाँ गायब हो जाता था।

समय गुजरता गया। ठाकुरदास अब पन्द्रह वर्ष का हो गया था। एक दिन दादी ने प्रेमचन्द से कहा—''बेटा, मेरी बड़ी इच्छा है कि मेरे रहते ठाकुरदास का विवाह हो जाय। छोटी बहू को आशीर्वाद देकर भगवान् के दरबार में जाऊँ।''

प्रेमचन्द ने कहा—''दादी, तुम बिलकुल सठिया गई हो। इस कच्ची उम्र में दासू (घर का नाम) का विवाह करने से क्या फायदा? जो लड़का दिन-रात आवारों के साथ घूमता है, 'क' में आ की मात्रा 'का' नहीं जानता, उसका विवाह करने से क्या लाभ? ईशान के विवाह से क्या लाभ हुआ? पढ़-लिखकर भी किसी काम का नहीं हुआ। दिनभर अड्डेबाजी करता रहता है।''

कड़वी बातें सहनी पड़ती हैं। दादी जानती है कि घर का सारा बोझ प्रेमचन्द पर है। उन्होंने कहा—''नहीं रे, विवाह के बाद दासू की मति-गति ठीक हो जायगी।

यही अन्तिम काम है। तू मेरे सामने इसका विवाह कर दे। कौन जाने इसके कारण हमारा वंश चले।''

प्रेमचन्द को समझते देर नहीं लगी कि अगर इस कार्य को टालता गया तो दादी नित्य किचकिच करेगी। पका आम जल्द पेड़ से गिर पड़ता है। कौन जाने दादी कब चल दें। ठाकुरदास का विवाह हो गया।

बहू को गोद में बैठाकर दादी विलाप करने लगी—''अरे रामप्रसाद, तू कहाँ चला गया बेटा? आज तेरी दुलारी बहू आयी है रे।''

इस विवाह के कई माह बाद रामप्रसाद के एक शिष्य हरगोविन्द वराहनगर आये। अगले माह वे तीर्थयात्रा पर जानेवाले थे। यहाँ आने का उद्देश्य था—गुरुमाता से आशीर्वाद प्राप्त करना। बातचीत के सिलसिले में गुरुमाता ने कहा कि अगर असुविधा न हो तो मैं भी तीर्थयात्रा पर साथ चलूँ?

गुरुमाता के प्रस्ताव को हरगोविन्द ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मझले पौत्र ईशानचन्द को साथ लेकर दादी तीर्थयात्रा के लिए चली गई। कुछ दिनों बाद ईशानचन्द को मुण्डित मस्तक और सफेद वस्त्र में आते देख प्रेमचन्द का हृदय धक्-सा रह गया। देखते ही देखते घर में कोहराम मच गया। सबसे अधिक विलाप ठाकुरदास करता रहा। आज उसने जीवन में पहली बार अनुभव किया कि दादी का स्नेह कितना महान् था।

* * *

श्रावण का महीना था। बाहर मूसलाधार पानी बरस रहा था। ऐसे मौसम में धुले कपड़े पहनते देख पत्नी राधारानी ने अपने पति ठाकुरदास से कहा—''इस मौसम में बाहर जाने की क्या जरूरत? पानी रुक जाय तब चले जाइयेगा।''

ठाकुरदास ने जवाब दिया—''अब मैं दूध पीता बच्चा नहीं हूँ। बीस वर्ष उम्र हो गई। आँधी आये या वर्षा, पर मुझे जाना ही पड़ेगा। डरो मत, साँप, भूत-प्रेत मुझे स्पर्श नहीं करेंगे और न पानी से कोई नुकसान होगा। जब लौटकर आऊँगा तब देखना मेरे कपड़े सूखे रहेंगे।''

राधारानी जानती है कि नित्य रात के समय पतिदेव कहीं चले जाते हैं। कहाँ जाते हैं, क्यों जाते हैं, यह नहीं बताते और न राधारानी इसके लिए उत्सुकता प्रकट करती है। प्रत्येक रात को जब वे सकुशल लौट आते हैं तब उसे सन्तोष हो जाता है।

स्वयं ठाकुरदास भी जानता है कि अगर पत्नी को सही बात बता दूँगा तो वह भयभीत हो उठेगी, तब साधना में विघ्न होगा। गुरुदेव ने इस दिशा में चुप रहने को कहा है।

धीरे-धीरे कई माह गुजर गये। नवरात्रि का पर्व आ गया। इन दिनों प्रेमचन्द के पास विभिन्न स्थानों से दुर्गा सप्तशती के पाठ के लिए बटुकों की माँग आती है। योग्य छात्रों को भेजने पर भी पाठ करनेवालों की कमी पड़ जाती है।

उस दिन धूप में बैठे तेल मालिश करते हुए प्रेमचन्द अपने-आप कहने लगे—''इतने बड़े पण्डित घराने में अयोग्य वंशधर पैदा हुए हैं। दो-दो भाइयों के रहते, पराये

घर के लड़कों को चण्डीपाठ के लिए भेजना पड़ रहा है। एक को अड्डेबाजी से फुरसत नहीं और दूसरा दादी के दुलार में मूर्ख निकल गया। मेरा क्या, मेरे बाद सभी को पता चलेगा जब हल जोतना पड़ेगा।''

ठीक इसी समय पूजा के लिए फूल लेकर ठाकुरदास आया। बड़े भैया की बातें सुनकर उसने कहा—''बड़े भैया, मुझे कहीं जाने की आज्ञा दें। मैं चण्डीपाठ करूँगा।''

बड़े भैया ने कहा—''ईशान लायक होकर भी नालायक है और तू तो पूरा गधा है। चला है चण्डीपाठ करने।''

दादा की बात लग गई। उन्हें क्या मालूम कि अब उनका छोटा भाई कितना योग्य हो गया है। अगर वे इसे जान पाते तो ऐसी बात न कहते। ठाकुरदास पूजा-घर से पोथी उठा लाया और दादा के सामने सस्वर पाठ करने लगा—

ॐ कालीं रत्ननिबद्धनूपुरलसत्पादाम्बुजामिष्टदां
काञ्ची-रत्न-दुकूल-हार-ललितां नीलां त्रिनेत्रोज्ज्वलाम्।
शूलाद्यस्त्रसहस्त्रमण्डितभुजामुद्वक्त्रपीनस्तनी-
माबद्धामृतरश्मिरत्नमुकुटां वन्दे महेशप्रियाम्॥
ॐ नमश्चण्डिकायै।

अभी पोथी का बेठन पूरी तरह खुला नहीं है। इधर पाठ प्रारम्भ हो गया। यह साहस प्रेमचन्द वेदान्तवागीश में भी नहीं है। वे तेल लगाना भूल गये। बड़ी बहू रसोईघर से बाहर आ गई। मझली बहू सफाई छोड़कर आँगन में आ गई। छोटी बहू, ईशान सभी आसपास आकर खड़े हो गये। राह चलते लोग इस मधुर कण्ठ से आकर्षित होकर भीतर आने लगे। वृक्षों पर पक्षियों का काकली स्वर शान्त हो गया। सभी लोग मन्त्रमुग्ध भाव से खड़े 'देवीसूक्तम्' का पाठ सुनते रहे। किसी को समय का कौन कहे, अपने तन-बदन की सुध नहीं रही।

एकाएक प्रेमचन्द उठ खड़े हुए और झट ठाकुरदास को गोद में उठाकर चूमने लगे। उनकी आँखों से आनन्द के आँसू बह निकले। उन्होंने पूछा—''क्यों रे पगले, किसने तुझे ऐसी शिक्षा दी? किसके यहाँ पढ़ता था? मुझे चौंकाने के लिए छिपाता आया है?''

ठाकुरदास ने सोचा कि गुरुदेव ने सही बात कहने को मना किया है। उसने कहा—''तांतीपाड़ा के शिरोमणि पण्डित के यहाँ पढ़ता हूँ।''

प्रेमचन्द उसके झूठ को पकड़ नहीं सके। जब कि वह उस अपरिचित वृद्ध से यौगिक-शक्ति के जरिये सारा ज्ञान प्राप्त करता रहा।

धीरे-धीरे समय गुजरता गया और इस बीच अनेक घटनाएँ हुईं। शिरोमणि भट्टाचार्य स्वर्गवासी हो गये। संन्यासीचरण ने विवाह कर लिया। गाँव की माता न जाने कहाँ चली गईं। अब केवल सिद्धबाबा गाँव में हैं। अक्सर अपने मित्रों के साथ उनके निकट ठाकुरदास जाता है। सिद्धबाबा हठयोग की शिक्षा देते हैं।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में सिद्धबाबा ने जब यह देखा कि ठाकुरदास दूर चला गया है तब उन्होंने संन्यासीचरण से कहा—''तुम लोग ठाकुरदास का विशेष ध्यान रखना। वह साधारण प्राणी नहीं है। शापभ्रष्ट दिव्य पुरुष है। बहुत जल्द इस गाँव को छोड़कर दूर कहीं चला जायगा।''

संन्यासीचरण के अलावा अन्य किसी ने इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। लेकिन संन्यासीचरण ने सिद्धबाबा की चेतावनी पर विश्वास किया। इस घटना के बाद से उसने ठाकुरदास के साथ और अधिक घनिष्ठता बढ़ाई।

एक दिन गाँव के लोग चौंक उठे। सिद्धबाबा जो कई वर्षों से वराहनगर में रहते थे, न जाने कहाँ गायब हो गये। ठाकुरदास या उसके मित्रों को भी इसकी जानकारी नहीं थी। अब वे जहाँ बैठते थे, वहाँ अक्सर ठाकुरदास अकेला बैठकर ध्यान लगाने लगा।

एक दिन आँखें खोलने पर उसने देखा—सामने कई मित्र खड़े हैं। पूछा—''तुम लोग कब आये?''

संन्यासीचरण ने कहा—''काफी देर हुई। तुम ध्यानस्थ थे, इसलिए हम चुपचाप बैठे रहे। क्या सोच रहे हो?''

ठाकुरदास ने कहा—''इधर कुछ दिनों से तीर्थ-भ्रमण करने की इच्छा हो रही है। सोचता हूँ कि कहीं चल दूँ।''

संन्यासीचरण ने कहा—''यह तो शुभ समाचार है। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। कब चलोगे?''

बातचीत में दिन तथा समय निश्चित हो गया। चिन्तामणि और कालीचरण भी चलने को तैयार हो गये। अधिक रात गये ठाकुरदास अपने अपरिचित वृद्ध गुरुदेव के पास आशीर्वाद माँगने चला गया।

राधारानी गर्भवती थी। प्रसव के सिलसिले में नैहर चली गई थी। ठाकुरदास ने सोचा कि सही बात कहने पर बड़े दादा अनुमति नहीं देंगे। ससुराल जाने का बहाना बनाकर वह कलकत्ते की ओर रवाना हो गया। उसके जाने के कई रोज बाद प्रेमचन्द को सही बात मालूम हुई। वे छोटे भाई के इस आचरण से बड़े दुःखित हुए। यह समाचार राधारानी तक पहुँच गया।

* * *

गाँव से चलकर चारों युवक कलकत्ता आये। यहाँ काली देवी का दर्शन करने के बाद पश्चिम की ओर बढ़ गये। गया, काशी, नैमिषारण्य, मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों का दर्शन करते हुए हरिद्वार पहुँच गये। मार्ग में एक साथी और साथ हो लिया।

जाड़ा समाप्त हो गया था। अप्रैल के अन्त में अनेक साधु-महात्मा तथा गृहस्थ बदरीनाथ दर्शन करने के लिए जा रहे थे। इन यात्रियों के साथ पाँचों युवक रवाना हो गये।

तीसरे दिन जब ये पाँचों युवक आगे बढ़ रहे थे तब मन्दगति से चलने के कारण ठाकुरदास थोड़ी देर के लिए पिछड़ गया। ठीक उसी समय उसे लगा जैसे

कोई उसका नाम लेकर पुकार रहा है। चकित दृष्टि से चारों ओर देखने पर कोई दिखाई नहीं दिया।

पुनः आवाज आने पर पीछे सुदूर दृष्टि जाने पर ठाकुरदास ने देखा—एक पहाड़ी पर एक संन्यासी खड़े हैं जो हाथ के इशारे से अपने पास बुला रहे हैं। मन्त्रमुग्ध की तरह ठाकुरदास उनकी ओर चल पड़ा। उस वक्त उसे यह होश नहीं रहा कि आगे मित्र-मण्डली गई है, जब वे उसकी तलाश करेंगे तो कैसे मुलाकात होगी। आगे चलनेवाले मित्रों को भी इसके बारे में ध्यान नहीं रहा। वस्तुतः यह दैवयोग पहले से ही निश्चित था।

पहाड़ी के समीप पहुँचने पर उक्त अपरिचित संन्यासी ने हाथ के इशारे से ऊपर आने का रास्ता बताया। इधर ठाकुरदास इस ऊहापोह में पड़ गया कि इन्हें मैं पहचानता नहीं, पर इन्हें मेरा नाम कैसे मालूम हो गया? मुझे क्यों बुला रहे हैं? आखिर यह हैं कौन?

ऊपर आने पर ठाकुरदास ने देखा कि उक्त संन्यासी जहाँ खड़े हैं, उनके ठीक पीछे एक गुफा है। तभी अपरिचित संन्यासी ने कहा—''जरा ठहरो। गुफा में अँधेरा है। प्रकाश की व्यवस्था कर लूँ तब बातें होंगी।''

गुफा में रोशनी जलाने के बाद संन्यासी अपने साथ ठाकुरदास को भीतर ले गये। वृद्ध संन्यासी ने कहा—''एक अपरिचित व्यक्ति ने कैसे तुम्हारा नाम लेकर पुकारा और यहाँ बुला लाया, इस पर शायद तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा। सम्भव है, कुछ डर भी लग रहा हो। तुम मेरे गुरुभाई हो। जिन गुरुदेव से तुम शिक्षा प्राप्त करते रहे, मैं भी उन्हीं पूज्यपाद का शिष्य हूँ। मैं गुरुदेव के आदेश से यहाँ हूँ। सारी बातें तुम्हें धीरे-धीरे मालूम हो जायेंगी। सामने कण्डाल में पानी है। मुँह-हाथ धो लो।''

मुँह-हाथ धोकर ठाकुरदास गुफा के भीतर आया तो देखा कि बाघ के चमड़े के आसन पर संन्यासीजी बैठे हैं और उनके ठीक सामने एक आसन बिछा है। उन्होंने खाली आसन की ओर बैठने का इशारा किया। प्रदीप के प्रकाश में ठाकुरदास ने देखा—गुफा की प्राचीरों को खोदकर आलमारियाँ बनाई गई हैं जिनमें पुस्तकें रखी हैं। गुफा की ऊँचाई अधिक नहीं है। तभी संन्यासीजी उठकर दूसरी ओर चले गये।

थोड़ी देर बाद एक पात्र में खाद्य-सामग्री और कमण्डल में पानी लेकर आये। उन्होंने कहा—''लो, भोजन करके आराम करो।''

ठाकुरदास ने कहा—''मुझे एक बात की चिन्ता सता रही है। मैंने अपने साथियों को कोई सूचना नहीं दी और न वे जान सके कि मैं यहाँ कैसे चला आया। वे लोग मेरे लिए चिन्तित हो रहे होंगे। शायद मेरी तलाश में परेशान होंगे।''

वृद्ध ने कहा—''उनके लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है। आज नहीं तो कल वे अन्य यात्रियों के साथ आगे बढ़ जायेंगे। उनसे तुम्हें अलग होना ही था। मैं यहाँ काफी दिनों से गुरुदेव के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे आदेश प्राप्त हो गया है। अब आराम करो। शेष बातें कल होंगी।''

दूसरे दिन भोर के वक्त जब ठाकुरदास सोकर उठा तो संन्यासीजी ने कहा—''चलो, गंगा-स्नान कर आयें।''

कल शाम के धुँधलके में इस स्थान को ठाकुरदास ठीक से देख नहीं सका था। इस वक्त गुफा से बाहर आने पर उसने देखा कि कल वह टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों के सहारे यहाँ आया था। गुफा की दूसरी ओर गंगा नदी तक जाने का सरल मार्ग है। स्नान के पश्चात् गुफा की दूसरी ओर के बाग से फूल-बेलपत्ती लाकर वह पूजा करने लगा।

पूजा समाप्त करने के बाद पुनः गुफा के बाहर आया। बाहर एक पहाड़ी व्यक्ति खड़ा था। इसे देखते ही उसने प्रणाम किया। जब तक वह उस पहाड़ी से कोई प्रश्न करे, उसने पहले ही गुफा से संन्यासीजी खप्पर लेकर बाहर आये। पहाड़ी ने खप्पर में भोजन की सामग्री तथा कमण्डल में दूध उड़ेल दिया। चलते समय पुनः दोनों व्यक्तियों को प्रणाम किया।

संन्यासीजी के पीछे-पीछे पुनः गुफा के भीतर आकर वह चारों ओर अच्छी तरह से देखने लगा। गुफा के भीतर दूसरी ओर से काफी रोशनी आ रही है। बगल में एक कमरा है। इस कमरे के बाहर फूलों का बाग है। सामने कई देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। बगल में रसोई बनाने का सरंजाम है।

अभी वह चारों ओर देख ही रहा था कि तभी भीतर से संन्यासीजी आये और कहा—''सामनेवाली मूर्ति गुह्यकाली की है। उनकी बगल में शिवजी और उधर बदरीनाथजी की हैं। गुरुदेव ने मुझे बताया था कि एक दिन तुम यहाँ आओगे। तुम्हारे आने तक मुझे यहाँ रहना पड़ेगा। अब तुम आ गये हो। आगे से यह सब तुम्हारे जिम्मे रहेगा।''

भोजन के बाद संन्यासी ने कहा—''खाने-पीने की चिन्ता करने की जरूरत नहीं। यहाँ नित्य सुबह राजा की ओर से सीधा आता है। शाम के समय मिष्टान्न और फल एक व्यक्ति दे जाता है। यहाँ के राजा धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। साधुओं को राज्य की ओर से सीधा और दूध भेजा जाता है। यहाँ जो लोग साधना करते हैं, उनका ख्याल रखा जाता है। इस पहाड़ी पर इधर-उधर अनेक साधु-सन्त तपस्या कर रहे हैं। राजा के अलावा स्थानीय पहाड़ी भी आवश्यक सामग्री दे जाते हैं। गुरुदेव की आज्ञा है कि अब तुम यहाँ कुछ दिनों तक साधना करो। जब तक उनकी आज्ञा न हो तब तक कहीं मत जाना। अध्ययन के लिए अनेक पुस्तकें हैं। गुरुदेव और भगवान् की कृपा से यहाँ तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा।''

शाम को वही पहाड़ी युवक फल-मिष्टान्न आदि दे गया। सारी सामग्री लेकर वृद्ध स्वामी ने भगवान् को भोग लगाया। भोजन के पश्चात् दोनों सो गये। दूसरे दिन सोकर उठने पर ठाकुरदास ने देखा कि वह गुफा में अकेला है। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद वह प्रातःक्रियादि करने चला गया।

लौटकर आने पर पहाड़ी युवक को सारी सामग्री लेकर खड़े रहते देखा। अब ठाकुरदास समझ गया कि वृद्ध संन्यासी यहाँ की सारी जिम्मेदारी मुझे सौंपकर चले गये।

* * *

कुछ दिनों बाद एक दिन विचित्र घटना हुई। नियम के अनुसार पहाड़ी युवक से भोज्य पदार्थ लेने के लिए ठाकुरदास जब गुफा के बाहर आया तो देखा कि उसके सामने बाल्यसखा संन्यासीचरण खड़ा है। दोनों एक-दूसरे को हर्षमिश्रित आश्चर्य से देखने लगे। फिर दोनों आपस में गले मिलकर आँसू बहाने लगे।

ठाकुरदास ने पहाड़ी युवक से सीधा लेने के बाद संन्यासीचरण से कहा—''आओ, भीतर आओ। वहीं बैठकर बातें करेंगे।''

गुफा के भीतर दोनों आराम से बैठ गये। इसके बाद ठाकुरदास ने इन लोगों से बिछड़ने से लेकर अब तक की सारी घटनाओं का उल्लेख किया।

संन्यासीचरण ने कहा—''तुम्हें किसी ने आवाज दी, इसे मैंने सुना। उस समय चढ़ाई की थकान के कारण ख्याल नहीं किया। सोचा, हम लोगों में से किसी ने पुकारा होगा। कुछ दूर आगे आने पर हम लोग विश्राम के लिए एक जगह बैठे तब देखा कि तुम गायब हो। कुछ देर इन्तजार करने के बाद तुम्हारी तलाश में पीछे की ओर लौटे। चारों ओर नाम ले-लेकर पुकारा गया, फिर भी कुछ पता नहीं चला। हम भयभीत हो उठे। आखिर ठाकुरभाई कहाँ गायब हो गये। हम लोगों के साथ चलनेवाले यात्री आगे बढ़ गये। इधर शाम का अँधेरा बढ़ता जा रहा था। आश्रय के लायक आसपास कोई स्थान नहीं था। एक पेड़ के नीचे आग जलाकर हम चारों बैठ गये। मैं रातभर रोता रहा। पुनः दूसरे दिन हम वहीं बैठे रहे ताकि कहीं रुक गये हो तो आने पर मुलाकात हो जाये। उसी दिन शाम को एक संन्यासी आये। हमारी मुसीबत सुनकर उन्होंने कहा—''आप लोगों ने अपने मित्र के बारे में जो कुछ कहा, उससे लगता है, वे महापुरुष हैं। जब वे तलाश करने पर नहीं मिले तब व्यर्थ में समय गँवाने से अच्छा है कि आप लोग आगे बढ़ जायें।'' संन्यासी की बातों का प्रभाव हम सब पर पड़ा और हम लोग तीसरे दिन आगे चल पड़े। पहाड़ी जलवायु हम लोगों को सह्य नहीं हुई। पहले कालीचरण, फिर चिन्तामणि बीमार हुआ। इसके बाद हमारा अपरिचित साथी भी अस्वस्थ हो गया। इन तीनों की तीमारदारी करने में काफी दिन लग गये। बाद में मैंने दोनों मित्रों को घर वापस भेज दिया। लेकिन तुम्हारी याद बराबर बनी रही। आगे बढ़ने की अपेक्षा मैं भी वापस लौट आया। जहाँ से तुम गायब हुए थे, वहीं आकर एक कुटिया में रहने लगा। मुझे विश्वास हो गया था कि तुम यहीं कहीं पर होगे। जब कभी मुझे मौका मिलता तब तुम्हारी तलाश में इधर-उधर चक्कर काटा करता था। बरसात का मौसम होने के कारण यात्रियों का आवागमन कम हो गया। मैं अपनी कुटिया में बैठा जंगल का दृश्य देखा करता था। एकाएक एक दिन देखा कि एक पहाड़ी युवक नित्य एक पहाड़ी पर कुछ सामान लेकर जाता है और खाली हाथ वापस लौटता है। उत्सुकतावश आज मैंने उस युवक का पीछा किया और तुम मिल गये।''

ठाकुरदास ने कहा—''बरसात के कारण ही हम आपस में मिल सके, वर्ना मैं कुटिया से बाहर नहीं निकलता। भोजन करने के बाद अध्ययन या साधना करता हूँ। स्नान के लिए पीछे के रास्ते से जाता हूँ। अच्छा हुआ, जो तुम आ गये। अब यहीं रह जाओ। एक से दो भले।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक दिन संन्यासीचरण ने देखा कि वह गुफा में अकेला है। उसने सोचा—शायद शौच के लिए गया होगा। इसके बाद वह स्वयं शौचादि के लिए चला गया। वापस लौटने पर देखा—एक अपरिचित बालक उसकी प्रतीक्षा में खड़ा है।

संन्यासीचरण ने पूछा—"कहो वत्स, क्या बात है?"

बालक ने एक पत्र उसे दिया। उसमें लिखा था—"भाई संन्यासी, पूज्यपाद गुरुदेव के आदेश से मुझे तुरत रवाना होना पड़ा। तुम्हें बताकर नहीं आ सका। तुम्हारी इच्छा हो तो इस गुफा में अनिश्चित काल के लिए रह सकते हो। यदि न रहना चाहो तो इस बालक को पूजादि की जिम्मेदारी सौंपकर जा सकते हो। अब गुरुदेव का आदेश मिलने पर ही मुलाकात सम्भव होगी। तुम्हारा, ठाकुरदास।

संन्यासीचरण ने आगन्तुक बालक से कई प्रश्न किये, पर वह सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सका। उसने कहा—"मैं पंजाब में रहता था। कल ही यहाँ आया हूँ और मुझे यह पत्र देकर भेजा गया है।"

लड़के की बातों से स्पष्ट पंजाबी लहजा प्रकट हो रहा था। संन्यासीचरण ने पूछा—"क्या तुम अकेले इस गुफा में रह सकते हो?"

"क्यों नहीं रह सकूँगा? गुरुदेव का आदेश तो मुझे मानना ही पड़ेगा। गुरुदेव जब दूसरा आदेश देंगे तब उसका पालन करूँगा।"

लड़के का साहस देखकर संन्यासीचरण चकित रह गया। ठाकुरदास के अभाव के कारण उसकी यहाँ रहने की इच्छा नहीं हुई। बालक को सारी जिम्मेदारी देकर वह तीर्थ-भ्रमण करने निकल गया।

* * *

विभिन्न स्थानों की यात्रा करने के बाद संन्यासीचरण अपनी जन्मभूमि वापस आया। यहाँ बहन तथा बहनोई उसकी सारी जायदाद हड़प चुके थे। अपनी पत्नी को लेकर वह पुनः देशाटन करने निकल गया।

सहसा गंगासागर के मेले में एक अपरिचित संन्यासी सामने आकर खड़ा हो गया और कहा—"आपका नाम शायद संन्यासीचरण है। ठाकुरदास की तलाश यहाँ कर रहे हो? आजकल वह अमरकंटक में हैं। अभी नहीं, अभी दो वर्ष बाद वह तुमसे काशी में मिलेगा। चिन्ता करने की जरूरत नहीं।"

इस संन्यासी की भविष्यवाणी से संन्यासीचरण ने श्रद्धा से गद्‌गद होकर उन्हें प्रणाम किया। सिर उठाते ही देखा—वे न जाने कहाँ गायब हो गये। चारों ओर देखने पर भी दिखाई नहीं पड़े।

लगातार दो वर्ष भ्रमण करते हुए संन्यासीचरण सपरिवार काशी आया। नित्य गंगा-स्नान और मन्दिर-दर्शन करता था। एक दिन चौसट्टी देवी के मन्दिर से कुछ दूर आगे उसे लगा जैसे उसका नाम लेकर कोई बुला रहा हो। पीछे मुड़कर देखा। एक गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी पास आ रहा था।

पास आने पर संन्यासीचरण को पहचानने में देर नहीं लगी। वह बालसखा ठाकुरदास था। हाथ में कमण्डल, भाल पर भस्म, श्मश्रु-आनन। आज गले से लगने के बदले उसने ठाकुरदास के चरण-स्पर्श किये।

बातचीत के सिलसिले में ठाकुरदास ने कहा—"गंगासागर के मेले में तुम्हारी मुलाकात जिस संन्यासी से हुई थी, वे मेरे गुरुभाई स्वामी अघोरानन्द थे जिन्होंने तुमसे यह कहा था कि दो वर्ष बाद मैं काशी में तुमसे मिलूँगा। आज मुलाकात हो गई।"

ठाकुरदास के साथ अन्य कई संन्यासी थे। गली में भीड़ थी। साथी संन्यासियों में से किसी ने कहा—"स्वामीजी, हम आगे बढ़ें?"

ठाकुरदास ने कहा—"हाँ, आप लोग मठ में चलिये। मैं थोड़ी देर बाद आऊँगा।"

स्वामियों के जाने के बाद ठाकुरदास ने कहा—"चलो, तुम्हारे डेरे पर बातें होंगी। बीच बाजार में बातें करना उचित नहीं है।"

संन्यासीचरण के डेरे पर आने के बाद दोनों में बातें होने लगीं। संन्यासीचरण की सारी रामकहानी सुनने के बाद ठाकुरदास ने कहा—"अच्छा ही हुआ जो तुमने गाँव छोड़ दिया। मैं तो यहाँ गुरुदेव की आज्ञा से आया हूँ। शीघ्र ही यहाँ से चल दूँगा। स्वामी अघोरानन्द को तुमने पहचाना नहीं होगा। हरिद्वार में पहाड़ के ऊपर से मुझे बुलानेवाले वही थे। तुम लोग जब हरिद्वार के आगे किसी वृक्ष के नीचे आग जलाकर बैठे रहे तब दूसरे दिन जिस संन्यासी ने तुम लोगों को आगे बढ़ने का निर्देश दिया था, वे भी स्वामी अघोरानन्द ही थे। जिस बालक को गुफा की जिम्मेदारी सौंपकर तुम चले गये, उसका नाम सच्चिदानन्द है। आजकल वह गिरनार पर साधना कर रहा है।"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद ठाकुरदास ने कहा—"गुरुदेव के आज्ञानुसार मैंने संन्यास-ग्रहण कर लिया है। अब मैं पूर्ववर्ती नाम त्यागकर सदानन्द सरस्वती बन गया हूँ। यों मेरे भक्त और शिष्य मुझे ठाकुर सदानन्द के नाम सम्बोधन करते हैं। तुमसे कुछ गुप्त बातें कहनी हैं। उसे यहाँ नहीं कह सकता। नगर के पश्चिमी क्षेत्र में बटुकभैरव तथा बैजनाथ मन्दिर के मध्य में कामाख्या देवी का मन्दिर है। कल रात को वहीं मिलना।"

इतना कहकर सदानन्दजी चले गये। दूसरे दिन रात के वक्त संन्यासीचरण कामाख्या देवी के मन्दिर में जाकर उनकी प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद वे आये और उसे साथ लेकर बैजनत्था मन्दिर के पीछे चले गये।

वहाँ से वापस आते समय सदानन्द सरस्वती ने राह चलते कहा—"मैंने जितनी क्रियाएँ बताईं, उनका अभ्यास करते रहना। इससे साधना के मार्ग पर बढ़ते जाओगे। साधक के लिए यही चरम लक्ष्य होता है।"

संन्यासीचरण को अन्य और उपदेश देकर सदानन्दजी ने काशी छोड़ दी। इसके बाद वे कहाँ गये, इसका पता संन्यासीचरण को नहीं लगा।

* * *

सदानन्दजी अपने गुरुदेव के आज्ञानुसार भारत के तमाम महत्त्वपूर्ण स्थानों में भ्रमण करते हुए पुनः अमरकंटक गये। जिस वक्त वे घने जंगलों से गुजर रहे थे, उसी समय उन्होंने देखा कि मार्ग में एक व्यक्ति असहाय अवस्था में पड़ा कराह रहा है। आसपास कोई नहीं था।

सन्त-स्वभाववश वे उसकी सेवा करने लगे। उनके स्पर्श से उसे आराम मिला और वह गहरी नींद में सो गया। यह देखकर स्वामीजी प्रातःक्रिया से निवृत्त होकर भोजन बनाने लगे। भोजन के बाद थोड़ा-सा प्रसाद उस व्यक्ति के लिए उन्होंने छोड़ दिया।

अब तक वह व्यक्ति होश में आ गया था। स्वामीजी का प्रसाद ग्रहण करते ही उसकी सारी कमजोरी दूर हो गई। यह देखकर स्वामीजी ने पूछा—''इस जंगल में तुम कैसे आ गये?''

उस व्यक्ति ने कहा—''मैं अपने लोगों के साथ तीर्थयात्रा करने निकला था। अचानक अस्वस्थ हो गया। मुझे इस हालत में छोड़कर लोग चले गये।''

स्वामीजी ने कहा—''तुम्हारे सभी साथी आगे बढ़ गये हैं। अब तुम जीवन में कभी बीमार नहीं होगे। तेज चाल से चलकर अपने साथियों को पकड़ लो।''

उस व्यक्ति ने कहा—''स्वामीजी, आपके कारण मुझे जीवन-दान मिला है, अब मुझे दूर न भगाइये। मैं इन चरणों की सेवा करता रहूँगा।''

स्वामीजी ने कहा—''मुझे किसी की सेवा की जरूरत नहीं है। अपनी सेवा तुम स्वयं करो। मैं ठहरा रमता योगी। आज यहाँ, कल वहाँ।''

इतना सुनने के बाद उस व्यक्ति ने स्वामीजी के चरण पकड़ लिए और रोने लगा। उसका आग्रह देखकर लाचारी में स्वामीजी ने कहा—''ठीक है। कुछ दिन मेरे साथ रह सकते हो। क्या नाम है तुम्हारा?''

''हरिचरण।''

स्वामीजी अपने साथ हरिचरण को लेकर विभिन्न स्थानों का दर्शन करते हुए रोयलेश्वर[1] तीर्थ आये। यहाँ पहाड़ के ऊपर एक शिव-मन्दिर है। यहाँ कुछ दिन विश्राम करने के बाद जंगल में प्रवेश कर गये। हरिचरण ने देखा—चारों ओर हिंसक जानवर घूम रहे थे। स्वामीजी लगातार दो दिन तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये बराबर चलते जा रहे हैं। इधर हरिचरण भूख से व्याकुल हो उठा था। संकोचवश वह स्वामीजी से कुछ कह नहीं पा रहा था, क्योंकि वे भी भूखे थे। इस जंगल में एक भी फल का वृक्ष दिखाई नहीं दे रहा था।

दोपहर के वक्त स्वामीजी ने कहा—''तुम्हारे कष्ट का अनुभव मुझे हो रहा है। मैं यहाँ विश्राम कर रहा हूँ। तुम यहाँ से आगे जाकर बायीं ओर चले जाओ और देखो कि वहाँ कोई जलाशय है या नहीं।''

---

१. पंजाब स्थित प्रसिद्ध तीर्थस्थान।

हरिचरण आज्ञा पाकर रवाना हुआ और थोड़ी देर बाद तेजी से दौड़ता हुआ वापस आ गया। सारी घटना सुनने के बाद उन्होंने कहा—"जब मैंने कहा कि बायीं ओर जाना तब दायीं ओर क्यों गये?"

स्वामीजी इतना कह पाये थे कि लंगूरों का एक झुण्ड सामने आकर बैठ गया। हरिचरण ने कहा—"यही सब मुझे........।"

वह अपनी बात पूरी नहीं कर सका। भय से हकलाने लगा। स्वामीजी ने कहा—"डरो मत।"

इसके बाद उन्होंने लंगूरों की ओर देखते हुए कहा—"लड़का गलती से उधर चला गया था। इसे पानी लाने के लिए भेजा था।" फिर हरिचरण की ओर देखते हुए स्वामीजी ने कहा—"अब बायीं ओर जाओ। तुम गलत रास्ते पर चले गये थे। बायीं ओर तालाब है, वहीं से पानी ले आओ। इनसे डरने की जरूरत नहीं। ये सब रामजी के भक्त हैं।"

हरिचरण डरते-डरते आगे बढ़ा। रह-रहकर पीछे देख लेता था। लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अब लंगूर उसका पीछा नहीं कर रहे हैं। पानी लाने के बाद उसने स्वामीजी को यह कहने सुना—"मेरे साथ आया बालक दो दिन से कुछ खाया नहीं। इसके खाने लायक फल ले आओ।"

आश्चर्य पर आश्चर्य हो रहा था। स्वामीजी लंगूरों से अपनी भाषा में बात कर रहे थे और इधर लंगूर उनकी आज्ञा का पालन कर रहे थे। थोड़ी देर बाद दो लंगूर कोहँड़े जैसा एक फल लाये। स्वामीजी ने उस कोहँड़े को पैंतीस टुकड़ों में काटकर उसे आग पर सेंकने लगे। इसके बाद एक-एक टुकड़ा प्रत्येक लंगूर को खिलाने लगे। लंगूर बिना किसी प्रकार की हुज्जत किये अपना-अपना हिस्सा खाते रहे। अन्त में दो टुकड़े शेष रहे। उनमें से एक टुकड़ा और दूसरे से कुछ और भाग स्वामीजी ने खाया।

इधर हरिचरण मन ही मन कुढ़ रहा था। इस वक्त तो उसे इतनी भूख सता रही थी कि वह पूरे फल को खा जाता। एक टुकड़े से कम में क्या होगा। लेकिन दो कौर खाते ही उसका पेट भर गया। भूख की सारी ज्वाला समाप्त हो गई। फल नहीं, मानो अमृत था।

अपने अपराध को स्वीकार करते हुए हरिचरण ने स्वामीजी के चरण पकड़ लिये। स्वामीजी ने कहा—"तुम्हारा क्रोध अकारण नहीं था। भूख की ज्वाला ऐसी ही होती है। इस फल के गुण तुम्हें नहीं मालूम हैं। यह एक अजीब प्रकार का फल है जो इस जंगल में होता है और इसे थोड़ा सेंककर खाना चाहिए। इस फल के बारे में यहाँ के लंगूरों को ही जानकारी है। जब कोई संन्यासी इस मार्ग से गुजरता है तब यहाँ के लंगूर उनकी भूख इसी फल के जरिये मिटा देते हैं। भले ही ये जानवर हैं, पर इनमें बुद्धि है।"

कुछ देर विश्राम करने के बाद पुनः दोनों व्यक्ति रवाना हुए। आगे-आगे लंगूरों का दल मार्ग दिखाता हुआ चल रहा था। जंगल के बाहर आने पर स्वामीजी ने लंगूरों से कहा—"अब तुम लोग वापस चले जाओ। फिर कभी आऊँगा तब मुलाकात होगी।"

इतना सुनते ही लंगूरों का दल वापस चला गया। हरिचरण के लिए यह आश्चर्यजनक घटना थी। स्वामीजी की बातें लंगूरों ने कैसे समझ लीं?

इस बार स्वामीजी हरिचरण को साथ लेकर जूनागढ़ स्थित गिरनार पर्वत पर आये। चोटी पर चढ़ने के बाद उन्होंने कहा—''सच्चिदानन्द, कहाँ हो?''

इस आवाज को सुनते ही सच्चिदानन्द के बदले एक बाघ आया। उसे देखते ही हरिचरण की हालत खराब हो गई। स्वामीजी निर्भय होकर उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। तभी सामने की गुफा से एक युवक साधु बाहर आया और स्वामीजी के चरण-स्पर्श किये।

कुशल-मंगल के पश्चात् सभी गुफा के भीतर आये। ज्ञातव्य है कि हिमालय की तरह यहाँ भी अनेक सन्त साधना करते हैं, पर सामान्य लोग उन सन्तों को देख नहीं पाते। सदानन्द स्वामी के आगमन को सुनकर अनेक सन्त उनका दर्शन करने आये। उन लोगों के आग्रह पर सदानन्दजी वहाँ ठहर गये। इनमें से कोई वेदान्त पढ़ने लगा और कोई योग के बारे में ज्ञान प्राप्त करने लगा।

कुछ दिनों के बाद स्वामी सदानन्द ने हरिचरण से कहा—''अब तुम अपने घर वापस चले जाओ। मुझे यहाँ न जाने कब तक ठहरना पड़ेगा। तुम्हारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि इस पर्वत पर रहनेवाले सन्तों का दर्शन कर सके। घर जाकर भजन करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।''

हरिचरण साथ रहने के लिए आग्रह करने लगा। स्वामीजी ने कहा—''नहीं। अब तुम्हें वापस जाना ही होगा। मैं यहाँ कुछ लोगों को क्रिया योग की शिक्षा दूँगा और स्वयं कुछ क्रियाएँ करूँगा जो तुम्हारे रहते सम्भव नहीं होगा। एक बात और, मैंने तुमसे कहा था कि वापस जाकर मेरी लड़कियों से मुलाकात कर मेरा समाचार देना। उनसे यह भी कहना कि वे मेरा श्राद्ध न करें, मैं कृत श्राद्ध पिण्ड हूँ। यह मेरा आदेश है।''

हरिचरण इस आज्ञा के विपरीत कुछ कहने का साहस नहीं कर सका। स्वामीजी वहाँ दो वर्ष रहने के बाद काशी चले आये।

काशी में उन दिनों कामाख्या मन्दिर के पास राधाश्रम नामक एक बृहद् बाग था। उसी बाग में एक वृक्ष के नीचे वे ध्यानमग्न होकर बैठे रहते थे। प्रायः कुछ संन्यासी वहाँ शास्त्रार्थ करने आ जाते थे। नगर में एक सिद्ध महात्मा आये जानकर अक्सर दर्शनार्थी भी आ जाते थे। स्वामीजी के निकट स्वामी घरघरानन्द, काष्ठजिह्वा स्वामी, तैलंग स्वामी, झोला बाबा आदि महात्मा भी आते थे। सदानन्द स्वामी भी उनके आश्रम में यदाकदा जाते थे।

एक दिन एक सेठ स्वामी सदानन्द का दर्शन करने आया। व्यापार में काफी घाटा होने के कारण उसका हृदय अशान्त था। स्वामीजी उसकी मनःस्थिति भाँप गये। बोले—''जाओ, घर जाकर शुद्ध चित्त से भगवत्-भजन करो। तुम्हारा कल्याण होगा।''

स्वामीजी के आज्ञानुसार वह भजन करने लगा और उसे सफलता मिली। उसने अनुभव किया कि यह सब स्वामीजी के आशीर्वाद के कारण हुआ है। उनकी कृपा से

उऋण होने तथा कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए एक दिन वह अपने साथ चाँदी का एक कमण्डल, नये वस्त्र और फल लेकर स्वामीजी की सेवा में आया।

स्वामी सदानन्द ने यह सब सामग्री लेने से इनकार कर दिया। जब वह अत्यधिक आग्रह करने लगा तब उन्होंने कहा—"आज इन चीजों को लेकर वापस जाओ। रातभर विचार करना और कल जैसी इच्छा हो करना।"

दूसरे दिन वह जब आया तो देखा—स्वामीजी वहाँ नहीं थे। उसने उनकी तलाश में आसपास चक्कर काटे, पर वे नहीं मिले।

इधर स्वामीजी दर्शनार्थियों की भीड़ से तंग आ चुके थे। संकटमोचन के पश्चिमी भाग में एक स्थान पर आकर रहने लगे। सुबह-शाम मलत्याग के लिए कुछ संन्यासी यहाँ आते थे। सामान्य नागरिक सुनसान स्थान होने के कारण नहीं जाते थे। यहाँ आनेवाले संन्यासियों में से कुछ लोगों ने इन्हें पहचान लिया और वे आग्रह करने लगे कि इस स्थान को त्यागकर उनके साथ रहें, पर स्वामी सदानन्द को यह स्वीकार नहीं हुआ। उन्होंने इशारे से आग्रह किया कि मेरे बारे में किसी को कुछ न बताया जाय।

इधर स्वामीजी से उपकृत होनेवाला सेठ सरगर्मी से सदानन्दजी की तलाश करता रहा। आखिर उसे पता चल गया। उसने आकर क्षमा माँगी। इधर स्वामीजी ने मौनव्रत धारण कर रखा था। सेठ ने स्वामीजी के लिए वहीं एक गुफा बनवा दी। सदानन्दजी उसी गुफा के भीतर जाकर समाधि लगाने लगे। केवल सुबह-शाम बाहर आते थे तब लोगों को उनका दर्शन प्राप्त होता था।

धीरे-धीरे यहाँ भी अनेक भक्त जुटने लगे। इससे साधना में व्यतिक्रम होने लगा। आखिर एक दिन लोगों को मालूम हुआ कि स्वामीजी इस स्थान को त्याग चुके हैं। कहाँ गये, कब गये, इसका पता किसी को नहीं चला।

स्वामी अघोरानन्द के शिष्य स्वामी रामानन्द के बयान से पता चलता है कि उन्होंने सदानन्दजी को कैलास पर्वत पर देखा था। उस समय वे काफी वृद्ध हो गये थे, पर उनमें शक्ति की कमी नहीं थी। कहा जाता है कि एक बार गंगोत्री में रामानन्द ने देखा कि एक वृद्ध संन्यासी गंगा-स्तव पाठ करते हुए जा रहे हैं। गंगा में स्नान करने के बाद वे पहाड़ पर चढ़ने लगे। कौतूहलवश रामानन्दजी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। लेकिन उनकी तरह चलना रामानन्दजी के लिए सम्भव नहीं हो रहा था।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर वृद्ध संन्यासी ने पीछे की ओर देखा। रामानन्दजी को अपने पीछे आते देख उन्होंने हाथ के इशारे से वापस चले जाने की आज्ञा दी।

रामानन्दजी ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"भगवान्, मैं कुछ दिनों तक आपकी सेवा करना चाहता हूँ।"

वृद्ध संन्यासी न जाने क्या सोचते रहे तब तक रामानन्दजी उनके समीप पहुँच गये। अपने भीगे वस्त्र से उनकी आँखों पर पट्टी बाँध दी। इसके बाद रामानन्दजी के हाथ को पकड़कर आगे चलने लगे। रामानन्दजी को लगा जैसे वे चल नहीं रहे हैं, बल्कि उड़ रहे हैं।

आँखों पर से पट्टी हटाने पर रामानन्दजी ने देखा—सामने एक बड़ी गुफा है। चारों ओर बरफ ही बरफ है। पेड़, पौधे, पशु-पक्षी के नामोनिशान नहीं हैं। बाहर तूफानी हवा चल रही है। एकाएक वृद्ध संन्सायी न जाने कहाँ गायब हो गये।

वहीं खड़े-खड़े रामानन्दजी ने अनुभव किया कि पास कहीं शंख, घण्टा, घड़ियाल, नगाड़ा बज रहा है। वह स्थान यहाँ से कितनी दूर है, इसका अन्दाजा नहीं लगा। एकाएक हवा में सुगन्ध आने लगी। कुछ देर बाद पूर्वपरिचित वृद्ध संन्यासी आये। उन्होंने पास आकर कहा—''पूर्वजन्म की तपस्या के कारण तुम यहाँ तक आ सके हो। इस जन्म में अभी तुम्हारी साधना इतनी नहीं हुई है कि यहाँ के सभी दृश्य देख सको। लो, प्रसाद खाओ। अब महात्माओं के पास दर्शन करने चलेंगे।''

प्रसाद खाते हुए रामानन्द ने पूछा—''महाराज, इस स्थान का नाम क्या है?''

वृद्ध संन्यासी ने कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों कुछ दूर तक एक मन्दिर के समीप आये। वहाँ अनेक महात्मा अपने-अपने आसन पर बैठे हुए थे। रामानन्द को देखते ही एक महात्मा ने कहा—''यह बटुक तो अघोरानन्द का शिष्य है।''

अपने गुरु का नाम सुनते ही रामानन्दजी चकित दृष्टि से देखने लगे। उन्होंने बैठे हुए सभी महात्माओं के चरण-स्पर्श किये।

एक अन्य महात्मा ने कहा—''रामानन्द, अपने गुरुदेव से हमारा नमो नारायण कहना। उनसे कहना कि यहाँ सदानन्द कुशलपूर्वक है। अब वे यहाँ से कहीं नहीं जायेंगे। तुमने सिद्धबाबा से पूछा था कि इस स्थान का क्या नाम है, उन्होंने जवाब नहीं दिया। इस स्थान का नाम है—कैलासपुरी। अपने सौभाग्य के कारण तुम सिद्धबाबा के साथ चले आये, अन्यथा हमें देख नहीं पाते।''

एकाएक वहाँ भैरवी माता आईं और बोलीं—''आरती का समय हो गया है, महात्मागण। कृपया आप लोग पधारें।''

स्वामी सदानन्द ने रामानन्द से कहा—''हम लोग अब जा रहे हैं। तुम हमारे साथ नहीं जा सकते। अब अपने गुरु के बताये उपदेशों के अनुसार साधना करते रहो। इससे तुम्हारा जीवन उन्नत होगा।''

भैरवी माता ने उन्हें एक फल देते हुए कहा—''इस फल को हमेशा अपने साथ रखना। इससे साधना में सिद्धि प्राप्त होगी। अब इन महात्माओं को प्रणाम कर आशीर्वाद लो।''

भैरवी माता के आज्ञानुसार रामानन्द ने सभी के चरण-स्पर्श किये। एकाएक न जाने क्या हुआ कि झटका-सा लगा। आँखें खोलने पर रामानन्दजी ने देखा कि वे गंगोत्री की धर्मशाला में सोये हुए हैं। उन्होंने सोचा—क्या मैं अब तक स्वप्न देखता रहा? उन्हें याद आया कि वे स्वयं गंगा स्नान करने गये थे। एकाएक पीछे की ओर देखा तो भैरवी माता द्वारा प्रदत्त फल और उनके भीगे वस्त्र सिरहाने रखे हुए हैं। आखिर मैं यहाँ कैसे आ गया? इस प्रश्न का उत्तर देनेवाला वहाँ कोई नहीं था।

■ ■ ■

पवहारी बाबा

परमहंस रामकृष्ण के तिरोधान के पश्चात् विवेकानन्द का मन बहुत अशान्त हो गया था। अपने जीवन-काल में रामकृष्ण देव बराबर उनका मार्ग-दर्शन करते थे। अब वह सहारा नहीं रहा। फलतः जब स्वामीजी का मन उखड़ता तब वे आश्रम से कहीं चले जाते थे। चलते समय गुरुभाइयों से कहते—"अब आश्रम में वापस नहीं आऊँगा। यही आखिरी है।" लेकिन उनका यह निश्चय खण्डित हो जाता था। कुछ दिन इधर-उधर बिताकर पुनः वापस आ जाते थे।

सन् १८८८ ई० के दिनों उन्होंने निश्चय किया कि बेकार इधर-उधर समय नष्ट करने की अपेक्षा तीर्थाटन करूँ। तीर्थाटन के बारे में उन्होंने लिखा है—"भारत में जो लोग ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं, वे लोग आमतौर पर भारत के विभिन्न प्रदेशों में घूमते हुए विभिन्न तीर्थों का दर्शन करते हैं। देव-मन्दिरों का दर्शन करते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं। जिस प्रकार किसी वस्तु को बराबर हिलाते-डुलाते रहने पर उसमें जंग नहीं लगता, उनका कहना है कि इस प्रकार भ्रमण करने पर उनमें मलिनता प्रवेश नहीं करती। इससे एक और उपकार होता है, वे लोग द्वार-द्वार पर धर्म वहन कर ले जाते हैं। जो लोग गृहस्थी त्याग चुके हैं, उनके लिए यह आवश्यक है कि भारत के चारों तीर्थों का दर्शन करें।"

स्वामी विवेकानन्द ने अपने इस कथन को चरितार्थ किया था। विभिन्न तीर्थों का दर्शन करते हुए वे सन् १८९० ई० में गाजीपुर आये। यहाँ अफीम-विभाग के अफसर गगन तथा बचपन के मित्र सतीश बाबू के यहाँ ठहरे। गाजीपुर के लोग रामकृष्ण देव के मानस-पुत्र स्वामी विवेकानन्द को पाकर खुशी से फूले नहीं समाये।

बातचीत के सिलसिले में स्वामी विवेकानन्द ने कहा—"यहाँ पवहारी बाबा नामक एक योगी पुरुष रहते हैं। मैं उनका दर्शन करने के लिए आया हूँ। अगर आप लोग प्रबन्ध कर दें तो कृपा होगी। मैं इसी उद्देश्य से यहाँ आया हूँ।"

गगन बाबू ने कहा—"पवहारी बाबा नगर में नहीं रहते। वे यहाँ से कुछ दूर कुर्त्ता गाँव में रहते हैं। वहाँ जमीन के भीतर एक गुफा बनाकर उसी में निवास करते हैं। पहले जब आश्रम में रहते थे तब उनका दर्शन हो जाता था। अब गुफा में रहने के कारण उनका दर्शन कठिन हो गया है।"

गगन बाबू के साथ स्वामीजी कुर्त्ता गाँव स्थित पवहारी बाबा के आश्रम में आये तो देखा कि वास्तव में गगन बाबू का कथन ठीक है। स्थानीय भक्तों से ज्ञात हुआ कि

बाबा हमेशा गुफा के भीतर रहते हैं। कब बाहर निकलेंगे, कहा नहीं जा सकता। स्वामीजी ने सोचा कि नगर में रहते हुए बाबा से सत्संग नहीं किया जा सकता। यहीं कहीं रहना होगा। उपयुक्त स्थान की तलाश में चारों ओर घूम-फिरकर देखने लगे। पास ही नीबू का एक बड़ा बाग था। स्वामीजी ने मन ही मन निश्चय किया कि वे यहीं आकर रहेंगे। यहाँ रहने पर बाबा से मुलाकात कभी न कभी अवश्य होगी।

इस निश्चय के बाद स्वामीजी नीबू के बाग में आकर रहने लगे। कई दिनों के प्रयत्न के बाद स्वामीजी की मुलाकात पवहारी बाबा से हुई। वह भी साक्षात्-दर्शन नहीं हुआ। स्वामीजी को गुफा के भीतर जाने का आदेश नहीं मिला। मुहाने के पास खड़े होकर बातचीत करते रहे। लगातार कई दिनों तक उपदेश ग्रहण करने के बाद स्वामीजी को अपार ज्ञान मिला। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

''ज्ञान ही विस्मय-राज्य के द्वार को खोल देता है। जो ज्ञान मुझे उस वस्तु के निकट ले जाता है, जिसे जान लेने पर सभी को जाना जा सकता है (मुण्डकोपनिषद् १।१।३), जो सभी प्रकार के ज्ञान का केन्द्र है, जिसके स्पन्दन से सभी प्रकार के विज्ञान जीवन्त हो उठते हैं, वही धर्म-विज्ञान निश्चय ही श्रेष्ठ है, क्योंकि वही केवल मनुष्य के सम्पूर्ण ध्यानमय जीवन को समर्थ बनाता है। धन्य है वह देश, जो देश इसे पराविद्या कहता है।''

लगातार कई दिनों के उपदेशों के बाद एक दिन पवहारी बाबा ने कहा—''जन साधन, तन सिद्धि। गुरु के घर में हमेशा गौ की तरह पड़े रहो।''

ज्यों-ज्यों सत्संग का क्रम बढ़ने लगा त्यों-त्यों स्वामी विवेकानन्द का आकर्षण उनके प्रति बढ़ने लगा। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि पवहारी बाबा उच्चकोटि के योगी पुरुष हैं। हठयोग और राजयोग दोनों को सिद्ध कर चुके हैं। स्थानीय लोग इन्हें ठीक से समझ नहीं सके हैं। सम्भव है, बाबा ने अपनी शक्ति को कभी प्रकट नहीं किया है। अन्त में एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि योग-मार्ग-सिद्धि प्राप्त करने के लिए वे पवहारी बाबा से दीक्षा लेंगे।

एक दिन उन्होंने पवहारी बाबा से निवेदन किया। बाबा त्रिकालदर्शी थे। उन्हें यह ज्ञात था कि किसी भी व्यक्ति को निर्दिष्ट व्यक्ति ही दीक्षा देता है, दूसरे किसी का अधिकार नहीं होता। उन्होंने कहा—''पहले तुम अपने पूर्व गुरु से अनुमति प्राप्त कर लो।''

स्वामीजी ने सोचा कि पवहारी बाबा मुझे योग की शिक्षा देना नहीं चाहते। शायद इसीलिए टालना चाहते हैं। प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा—''मेरा विश्वास है कि मुझे अनुमति मिल जायेगी। आप अपनी स्वीकृति देने की कृपा करें।''

पवहारी बाबा सम्भवतः मुस्कराये। उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर विवेकानन्द स्वामी को बिदा दी। स्वामीजी प्रसन्न चित्त से नीबू-बाग में वापस आये। रात को सोने के पूर्व स्वामीजी ने देखा—सहसा घनघोर अन्धकार में प्रकाश उद्भासित हुआ और उस प्रकाश में स्वयं भगवान् रामकृष्ण प्रकट हुए। उनकी दोनों आँखें बन्द थीं। आँखों में आँसू थे।

स्नेहसिक्त इस मूर्ति को देखते ही स्वामीजी व्याकुल स्वर में कह उठे—''नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। रामकृष्ण के अलावा इस हृदय पर और किसी का अधिकार कदापि नहीं होगा। जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण।''

लेकिन मन की शंका दूर नहीं हुई। दीक्षा लेने के एक दिन पूर्व उन्होंने निश्चय किया—यह मेरे मन का भ्रम था। इस प्रकार के योगी इस पृथ्वी पर कभी-कभी आते हैं। मुझे पवहारी बाबा से ज्ञान ले लेना चाहिए।

इस निश्चय के बाद वे अपने हृदय पर रामकृष्ण के स्थान पर पवहारी बाबा को स्थापित करने लगे। लेकिन इस कार्य में उन्हें सफलता नहीं मिली। उस ज्योतिर्मय पुरुष ने स्वामीजी के प्रयासों को विफल कर दिया। स्वामीजी समझ गये कि मेरा तन-मन उन पावन चरणों में सदा के लिए अर्पित हो चुका है जहाँ अन्य किसी के लिए कोई स्थान नहीं है।

स्वामीजी को मुकरते देख पवहारी बाबा सम्भवतः मन ही मन मुस्कराये। इसके बाद ज्ञान की बातें चलने लगीं। अब तक स्वामीजी का मन शान्त हो चुका था। शायद इसीलिए उन्होंने लिखा—''हम लोगों में अधिकतर भावमय जीवन के साथ कर्म का सामंजस्य नहीं रख पाते। कुछ महात्मागण ऐसा कर पाते हैं। हम लोगों में शायद अधिकतर गम्भीर रूप में चिन्तन करने पर कार्यशक्ति को खो देते हैं। इसी वजह से अनेक महामनस्वी जितने उच्च आदर्शों को अपने जीवन में प्राप्त करते हैं, उसे जगत् में, कार्यरूप में परिणत करने की जिम्मेदारी काल के हाथ सौंप जाते हैं। जब तक अपेक्षाकृत क्रियाशील मस्तिष्क आकर उन आदर्शों को कार्यरूप में परिणत नहीं कर लेता तब तक उनकी चिन्ताराशि को इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। लेकिन इन बातों को लिखते समय हम अपने दिव्यचक्षु से उक्त पार्थसारथी को देख रहे हैं—मानो वे दोनों विरोधी सैन्यदल के बीच रथ पर खड़े होकर बायें हाथ से दृप्त अश्व को संयत कर रहे हैं। वर्मधारण योद्धा वेष में, प्रखर दृष्टिरत से समवेत सेनाओं का निरीक्षण कर रहे हैं और स्वाभाविक ज्ञान के द्वारा दोनों पक्षों की सैन्य-सज्जा की राई-रत्ती को देख रहे हैं। दूसरी ओर हम यह भी देख रहे हैं कि भयभीत अर्जुन को चौंकाकर वे अपने श्रीमुख से कर्म के अद्भुत रहस्यों को प्रकट कर रहे हैं। जो कर्म के भीतर अकर्म अर्थात् विश्राम या शान्ति तथा अकर्म अर्थात् विश्राम के भीतर कर्म को देखते हैं, मानवों में वे ही बुद्धिमान् हैं, वे ही योगी हैं, वे ही सभी प्रकार के कर्म करते हैं—

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ (गीता ४।१८)

यही पूर्ण आदर्श है। लेकिन इस आदर्श तक बहुत कम लोग पहुँच पाते हैं। अतएव जैसा है, हमें वैसा ही लेना होगा तथा विभिन्न व्यक्तियों में प्रकाशित विभिन्न चरित्र के वैशिष्ट्यों को एक में पिरोकर सन्तोष करना पड़ेगा। धार्मिक लोगों के भीतर हम तीव्र चिन्ताशील (ज्ञानयोगी), लोकहित के लिए प्रबल कर्मानुष्ठानकारी (कर्मयोगी), साहस के साथ आत्मसाक्षात्कार के लिए अग्रसर होनेवाले (राजयोगी) तथा शान्त एवं विनयी (भक्तियोगी), इन चार प्रकारों के साधकों को देखते हैं।''

उपर्युक्त विचार स्वामीजी ने अपने परमगुरु रामकृष्ण और पवहारी बाबा का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद विचार व्यक्त किया है। लगातार पाँच-छः दिनों तक वे पवहारी बाबा से योग-शिक्षा ग्रहण के लिए गये, पर अन्त में विचार छोड़ दिया। लेकिन पवहारी बाबा के उपदेशों का उन पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। फलस्वरूप उन्हें पवहारी बाबा के बारे में अपना संस्मरण लिखना पड़ा।

यहाँ तक कि यहाँ से मित्रों के नाम पत्र भेजते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा—"बड़े भाग्य से पवहारी बाबा से साक्षात्कार हुआ। वास्तव में वे एक महापुरुष हैं। इस नास्तिकता के युग में भक्ति एवं योग की आश्चर्यजनक क्षमता के वे अद्भुत प्रतीक हैं। मैं उनकी शरण में गया और उन्होंने मुझे आश्वासन दिया है, जो हर एक के भाग्य में नहीं है।...... ऐसे महापुरुषों का साक्षात्कार बिना शास्त्रों पर पूर्ण विश्वास के नहीं होता।"

यह पत्र ४ फरवरी १८९० को लिखा गया था और इसे लिखने के ठीक तीन दिन बाद ७ फरवरी को अपने एक मित्र के पत्र में वे लिखते हैं—"पवहारी बाबा देखने में वैष्णव प्रतीत होते हैं। उन्हें योग, भक्ति एवं विनय की प्रतिमा कहना चाहिए। उनकी कुटी के चारों ओर दीवारें हैं। दरवाजे बहुत थोड़े हैं। परकोटे के भीतर एक सुरंग है जहाँ वे समाधिस्थ पड़े रहते हैं। सुरंग से बाहर आने पर ही वे दूसरों से बातें करते हैं। किसी को यह नहीं मालूम कि वे क्या खाते-पीते हैं। इसीलिए लोग उन्हें 'पवहारी बाबा' कहते हैं। एक बार वे पाँच साल तक सुरंग से बाहर नहीं निकले तब लोगों ने सोचा कि उन्होंने शरीर त्याग दिया है। किन्तु वे जीवित बाहर निकले।......"

* * *

जिला जौनपुर का प्रेमापुर गाँव जहाँ कुछ सरयूपारी ब्राह्मणों का निवास है। इसी गाँव में तिवारीजी रहते थे। आपके दो पुत्र हुए—सर्वश्री लक्ष्मीनारायण और अयोध्याप्रसाद। जवानी के समय बड़े भाई लक्ष्मीनारायण एकाएक घर से गायब हो गये। चारों ओर इष्ट-मित्रों के यहाँ खोज की गई; कहीं पता नहीं चला। जब उनके बारे में पता चला तब तक उनके माता-पिता का देहान्त हो चुका था और अयोध्याप्रसाद दो बच्चों के पिता बन चुके थे।

लक्ष्मीनारायणजी घर से पलायित होकर कई स्थानों का चक्कर काटने के बाद गाजीपुर जिले के कुर्त्ता गाँव स्थित एक संन्यासी के आश्रम में ठहर गये। यहाँ उनका मन रम गया। इस आश्रम के किनारे गंगा नदी, शान्त वातावरण, गाँव के सरल प्रकृति के लोगों ने उनका मन मोह लिया। संन्यासीजी उच्चकोटि के योगी पुरुष थे। उपयुक्त आधार समझकर उन्होंने लक्ष्मीनारायण को शिष्य बना लिया। इस प्रकार लक्ष्मीनारायणजी रामानुज-सम्प्रदाय के अनुयायी बन गये।

घर से लक्ष्मीनारायण का नाता टूट चुका था, परन्तु बड़े भाई को आदर-सम्मान देने के लिए अयोध्याप्रसाद अक्सर यहाँ आते रहे। कभी-कभी साथ में उनके दोनों लड़के आते थे।

भारत में संन्यासियों के चार सम्प्रदाय हैं—संन्यासी, योगी, बैरागी और पन्थी।

जिन्हें संन्यासी कहा जाता है, वे शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित अद्वैतवादी हैं। गिरि, पुरी, भारती, आश्रम आदि दस उपाधियाँ हैं। योगी भी अद्वैतवादी हैं, पर इनकी साधना योग के माध्यम से होने के कारण इन्हें स्वतन्त्र माना गया है। इस सम्प्रदाय के लोग योग को ही श्रेष्ठ समझते हैं और इसी के माध्यम से सिद्धि प्राप्त करते हैं।

बैरागी रामानुज या श्री सम्प्रदाय के अनुयायी होते हैं। अधिकतर द्वैतवादी होते हैं। इसके प्रवर्त्तक श्री रामानुजाचार्य थे। मुसलमानों के शासनकाल में जिन धर्मों का उदय हुआ, वे पन्थी कहलाये। इनमें द्वैतवादी और अद्वैतवादी दोनों हैं। पवहारी बाबा इसी सम्प्रदाय के थे।

दीक्षागुरु के निधन के पश्चात् लक्ष्मीनारायण कुर्त्ता आश्रम के मठाधीश हुए। लगभग चालीस वर्ष तक वे फलाहार पर रहते हुए साधना करते रहे। उनके तप और निष्ठा को देखकर स्थानीय लोग उन्हें तपस्वी बाबा कहने लगे। आगे चलकर वे इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। इस बीच उन्होंने अनेक शिष्य-भक्त बनाये।

सहसा वे अस्वस्थ हो गये। धीरे-धीरे उनकी हालत खराब हो गई। स्थानीय भक्तों ने सोचा कि इस घटना की सूचना छोटे भाई को देनी चाहिए। तुरत आदमी भेजा गया। अयोध्याप्रसाद आकर सेवा करने लगे। बातचीत के सिलसिले में एक दिन अयोध्या-प्रसाद ने कहा—"आप घर चले चलिये। यहाँ ठीक से देखरेख नहीं हो रही है। गाँव में वैद्यजी हैं। इलाज भी हो जायगा।"

लक्ष्मीनारायण ने कहा—"गृहत्यागी संन्यासी को पुनः गृहस्थी में नहीं जाना चाहिए। रामजी की कृपा से ठीक हो जाऊँगा।"

बात अयोध्याप्रसाद की समझ में आ गई, अतएव उन्होंने विशेष जोर नहीं दिया। धीरे-धीरे वे स्वस्थ हो गये, पर आँखों की ज्योति कम हो गई। बिना सहारे मल-मूत्र करने में कठिनाई होने लगी। इधर एक अर्से तक भाई की सेवा में लगे रहने के कारण घर देखरेख के अभाव में नष्ट हो रहा था।

आखिर एक दिन चलते समय अयोध्याप्रसाद ने कहा—"आपकी जो हालत है, इसे देखते हुए मेरी राय में आपकी सेवा के लिए एक ऐसे आदमी की जरूरत है जो अपना हो और बराबर देखरेख करे। शिष्य या भक्तों के सहारे आपका काम नहीं चल सकता। मैं सोचता हूँ कि गंगा को भेज दूँ। वह इस लायक है कि आपकी सेवा ठीक से करेगा और आपको आराम भी मिलेगा।"

लक्ष्मीनारायणजी ने हँसकर कहा—"गंगा घर का बड़ा लड़का है। तुम्हारा सहायक। अगर तुम किसी को भेजना चाहते हो तो हरभजन को भेज देना। उसे यहाँ पढ़ा-लिखाकर लायक बना दूँगा।"

अयोध्याप्रसाद बड़े भैया की बातें सुनकर चौंक उठे। हरभजन तो अभी बच्चा है, माँ का दुलारा, सभी के आँखों का तारा। रात को अभी तक माँ से लिपटकर सोता है। कहानी सुनाने के लिए जिद करता है। दस वर्ष का बालक इनकी सेवा क्या करेगा? यहाँ आकर वह इतना उपद्रव करेगा कि भैया त्रस्त हो जायेंगे।

अयोध्या को मौन रहते देख लक्ष्मीनारायणजी ने कहा—''अयोध्या, तेरा मन न बैठ रहा हो तो जाने दे। नाहक परेशान मत हो। रामजी की जो इच्छा होगी, वही होगा।''

अयोध्याप्रसाद चुप रहे। कुछ देर बाद लक्ष्मीनारायणजी ने पुनः कहा—''मगर एक बात है। रामजी की कृपा से जब मेरी इच्छा हो गई है तब हरभजन को यहाँ आना ही पड़ेगा। आज न सही, पर एक न एक दिन वह आयेगा। कब तक तुम लोग उसे अपने स्नेह-पाश में बाँधे रखोगे? उसे यहाँ आना है, भले ही मेरी मौत के बाद आये।''

बड़े भैया की बातें सुनकर अयोध्याप्रसाद मन ही मन सिहर उठे। भैया सिद्ध पुरुष हैं। इनका वचन कभी खाली नहीं जाता। स्थानीय भक्तों की जबानी अनेक घटनाओं के बारे में वे सुन चुके हैं। लेकिन उन्हें दुःख इस बात का था कि उनका लड़का साधु बनेगा। जब यही होना है तब बाधा देकर भैया के मन को क्लेश पहुँचाने से क्या लाभ? भवितव्य को स्वीकार कर लेना उचित है। बड़े भैया से बिदा लेकर अयोध्याप्रसाद गाँव वापस आ गये।

सारी बातें सुनने के बाद पत्नी नाराज हो गई। कई दिनों तक पति-पत्नी में इस विषय को लेकर मनोमालिन्य रहा। अयोध्याप्रसाद को भय था कि कहीं इससे गृहस्थी का अकल्याण न हो। आखिर पत्नी को झुकना पड़ा।

हरभजन को पाकर तपस्वीजी आनन्द से विभोर हो उठे। माँगी हुई मुराद मिलने पर लगा जैसे उन्हें अपना इष्ट मिल गया है। पास बैठाकर उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए बुदबुदाये—''उपयुक्त आधार है। जैसा सोचा था, सब कुछ वही है। अति सुन्दर। रामजी, तुम्हारी महिमा अपरम्पार है।'' देर तक वे हरभजन के मस्तक पर हाथ फेरते रहे।

अयोध्याप्रसाद इन बातों का अर्थ नहीं समझ सके। उन्होंने केवल यही अनुमान लगाया कि हरभजन को पाकर भैया प्रसन्न हो गये हैं। कई दिन ठहरने के पश्चात् वे वापस चले गये।

हरभजन को पाकर तपस्वीजी के जीवन में अद्भुत परिवर्तन हुआ। उन्होंने हरभजन की शिक्षा के लिए योग्य विद्वानों से अनुरोध किया और स्वयं सुबह-शाम पढ़ाने लगे। वे यह जान चुके थे कि समय कम है और इस बीच अपने इस भतीजे को इतना योग्य बना दें ताकि वह इस स्थान का भार सँभाल सके।

शुभ दिन देखकर उन्होंने हरभजन के शिखा-सूत्र देकर गैरिक वसन पहनाया। अब हरभजन ब्रह्मचारी केरूप में मन्दिर में पूजा करने लगा। आश्रम में जितना साहित्य था, उसका ज्ञान दिया जाने लगा।

इन दिनों के बारे में स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है—''इस प्रकार प्राचीनकाल के भारतीय छात्र-जीवन का दैनिक कार्यों के भीतर भावी महात्मा का बाल्य जीवन व्यतीत होता गया। उनका अध्ययन के प्रति अनुराग और भाषा सीखने की दक्षता के अलावा क्रीड़ाशील जीवन रहा। उनकी गम्भीरता का पूर्वाभास पहले से ही ज्ञात हो गया था।

बचपन में हरभजन बहुत ही विनोदी थे। अपने छात्र-जीवन में कभी-कभी ऐसी

खुराफात करते थे जिसे देखकर सहपाठी चकित रह जाते थे। लेकिन उसी तरह वे ग्रन्थों का पाठ तेजी से करते रहे। न्याय, व्याकरण, दर्शन और अध्यात्म का ज्ञान उन्हें विद्वानों और ताऊजी से प्राप्त होता रहा।

ठीक इसी समय हरभजन के जीवन में एक ऐसी घटना हुई जिससे अध्ययनशील युवक ने सम्भवतः अपने जीवन के गम्भीर मर्म को पहली बार अनुभव किया। अब तक इनका ध्यान पुस्तक तथा दैनिक ब्रह्मचर्य-जीवन की ओर लगा था, अब वहाँ से हटाकर उसे अपने मनोजगत् की ओर लगाकर पर्यवेक्षण करने लगे। पुस्तकीय ज्ञान के अलावा संसार में और कुछ है या नहीं, इस सत्य को जानने के लिए उनका हृदय व्याकुल हो उठा। ठीक इन्हीं दिनों उनके ताऊजी अर्थात् तपस्वी बाबा का निधन हो गया। अब तक वे जिनकी छत्रछाया में जीवन-धारण करते आये हैं, जिनके ऊपर युवक-हृदय का सम्पूर्ण प्यार निबद्ध था, आज वे चले गये। फलस्वरूप युवक-हृदय का अन्तःस्तल शोकाहत होकर रिक्त हो गया। उस शून्यता को पूर्ण करने के लिए वे ऐसी वस्तु का अन्वेषण करने लगे जो अपरिवर्तनीय हो।

''तपस्वी बाबा की अलौकिक घटनाओं की ख्याति चारों ओर फैली थी। शिष्यों के अलावा असंख्य भक्त थे। उनके तिरोधान का समाचार पाकर दल के दल लोग आने लगे। सभी लोगों ने उनके सत्कार-कार्य में भाग लिया। भण्डारा हुआ और उसके बाद एक दिन हरभजन का कुर्त्ता आश्रम की गद्दी पर अभिषेक किया गया।

''सभी भक्तों को ज्ञात था कि आज से छह वर्ष पूर्व तपस्वी बाबा इस ब्रह्मचारी को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुके थे। इन्हें महन्त बनाने की सारी प्रक्रिया बताते रहे। अब अपने गुरु ताऊजी के निर्देशानुसार वे आश्रम का सारा कार्य करने लगे।

''कुछ दिनों बाद उनका मन कुर्त्ता आश्रम से उचाट हो गया। जिस प्रकार भगवान् बुद्ध, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, तैलंग स्वामी आदि सन्त योग्य गुरु की तलाश में तीर्थाटन करने निकले थे, ठीक उसी प्रकार हरभजन अपनी पिपासा शान्त करने के लिए एक दिन वहाँ से चल पड़े।''

स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है—''उनकी यात्रा के विवरण प्राप्त नहीं हैं, पर उनके सम्प्रदाय के अधिकांश ग्रन्थों में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्राचीन बंगला भाषा तथा द्रविड ग्रन्थों का व्यापक परिचय उन्हें था और वे दक्षिण भारत तथा बंगाल में काफी दिनों तक थे।''

''उनके समकालीन मित्र यह जरूर बताते हैं कि जवानी के दिनों बाबा काठियावाड़ स्थित गिरनार पर्वत पर गये थे और वहीं पर्वत के शिखर पर योग-साधना के रहस्यों से प्रथम बार दीक्षित हुए थे।

''यह पर्वत बौद्धों के निकट अत्यन्त पवित्र स्थान था। इसी पहाड़ के नीचे सम्राट् अशोक का शिलालेख था। वर्तमान समय में बौद्ध धर्म का जो संशोधित संस्करण है, वे भी इस स्थान को अत्यन्त पवित्र समझते हैं।''

गिरनार पर्वत को अत्यन्त पवित्र इसलिए माना जाता है कि यहाँ अवधूत गुरु दत्तात्रेय रहते हैं जो भारत के अनेक सन्तों को दर्शन दे चुके हैं। कहा जाता है कि भाग्यवान् व्यक्ति ही इसके शिखर पर चढ़ पाते हैं।[1] यहाँ आज भी अनेक सिद्ध योगी अलक्ष्य रूप में रहते हैं जिन्हें महान् पुरुष ही देख पाते हैं। कहा जाता है कि हरभजन गिरनार-शिखर पर चढ़ने में सफल हो गये थे। वहाँ उन्होंने दत्तात्रेय की पादुका के दर्शन किये। वहाँ कुछ देर तक ध्यानस्थ रहने पर उनकी अतीन्द्रिय शक्ति ने सूचित किया कि पास ही कोई योगी पुरुष रहते हैं। उनकी खोज में चक्कर काटते हुए, प्रभु की प्रेरणा से एक गुफा के मुहाने के समीप आये। भीतर प्रवेश करते ही देखा कि एक योगी पद्मासन लगाये समाधिस्थ हैं। उनके शरीर से अपूर्व ज्योति प्रस्फुटित हो रही है।

हरभजन ने सोचा—ऐसे ही योगी पुरुष की उन्हें तलाश थी। मन ही मन इन्हें गुरुरूप में स्वीकार करके वहीं बैठ गये। काफी देर बाद योगिराज की समाधि भंग हुई। हरभजन ने साष्टांग प्रणाम किया। योगी को जब यह ज्ञात हुआ कि बालक शिष्य बनना चाहता है तब उन्होंने कहा—''मैं किसी को शिष्य नहीं बनाता। कोई भी गुरु किसी को शिष्य नहीं बनाता। प्रत्येक शिष्य के लिए उसका निश्चित गुरु होता है। वही दीक्षा देने का अधिकारी होता है। हर कोई ऐसा नहीं कर सकता।''

हरभजन ने बड़े विनम्र भाव से आग्रह किया, पर वे राजी नहीं हुए। उन्होंने योग की कुछ क्रियाएँ बताकर हरभजन को बिदा दे दी।

हरभजनजी अब साधना, भजन-पूजन करते रहे, पर इन महात्मा से योग की शिक्षा पाकर उन्होंने नयी शक्ति प्राप्त की। इस शक्ति को प्राप्त करते ही उन्होंने अपना अधिकांश समय योगाभ्यास की ओर लगाया।

उन्होंने अन्न का त्याग कर दिया। केवल कुछ बेल की पत्तियाँ या नीम की पत्तियाँ खाकर दिन गुजारने लगे। आश्रम में सर्वदा शिष्य या भक्त रहते थे। यहाँ असुविधा देखकर रात के समय वे तैरकर गंगा उस पार जाकर एकान्त में योग की साधना करने लगे। इस प्रकार क्रमशः उन्नत होते गये।

हरभजन के सहपाठियों ने अनुभव किया कि इनके आचरण तथा स्वभाव में व्यापक परिवर्तन हो रहा है। यह देखकर उन्हें भय और विस्मय भी हुआ। लेकिन इन लोगों के मन में यह भावना उत्पन्न नहीं हुई कि हम लोग भी इनकी तरह बन जायें। स्वाभाविक है कि जीवन में अपने-आप उन्न होनेवाले के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ जाती है। अपने सभी सहपाठियों को पीछे छोड़कर हरभजनजी साधना के पथ पर द्रुतगति से आगे बढ़ते गये।

कुछ दिनों बाद वे काशी आये। यहाँ गंगा-तट पर अचानक एक योगी से मुलाकात हो गई। इस योगी को देखते ही हरभजनजी के हृदय में आकुलता उत्पन्न हुई और उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। योगी महाराज ने उन्हें अपने पीछे-पीछे आने का

---

१. गिरनार पर्वत के शिखर पर चढ़ने के लिए ९९९९९ सीढ़ियाँ पार करना पड़ता है।

इशारा किया। गंगा किनारे एक गुफा में आकर योगिराज ने कहा—''आज ही वह मुहूर्त है जब मुझे तुम्हें दीक्षा देनी है। जाओ, गंगा-स्नान कर आओ।''

हरभजनजी स्नान करके आये। उन्हें एक आसन पर बैठाकर योगिराज ने सविधि दीक्षा दी। उनकी भौहों के मध्य ज्योंही उन्होंने अँगुलियाँ रखीं त्योहीं तड़ित् गति से सारे शरीर में बिजली की तरह न जाने क्या दौड़ गया। इसके बाद मन्त्र देकर उन्होंने आशीर्वाद दिया।

वाराणसी से वापस कुर्त्ता आश्रम आने पर हरभजनजी ने निश्चय किया कि वे भी अपने गुरुदेव की तरह गुफा में साधना करेंगे। इच्छा प्रकट करते ही आश्रम के एक ओर गुफा का निर्माण भक्तों ने कर दिया। गुरुदेव ने कहा था—''योगाभ्यास के लिए गुफा से बढ़कर कोई उत्तम स्थान नहीं होता। हमारे यहाँ के अधिकांश योगी पहाड़ की कन्दराओं और गुफाओं में ही साधना करते आये हैं। यहाँ किसी प्रकार का शब्द मन को विचलित नहीं करता।''

गुरुदेव ने उन्हें योग की प्रक्रिया बताने के बाद अद्वैतवाद की शिक्षा दी थी। दिनभर वे अपने आराध्यदेव श्रीराम की पूजा-अर्चना करते, भण्डारे के लिए भोजन स्वयं बनाते और प्रसाद के रूप में भक्तों और शिष्यों में बाँट देते थे। इन सब बातों के कारण सामान्य लोगों में उनकी ख्याति बढ़ती गई। दूर-दूर से लोग हरभजन बाबा का दर्शन करने आने लगे। रोगी अपना रोग दूर करने, मुसीबतजादा अपनी मुसीबत दूर करने के लिए आशीर्वाद माँगने लगे।

इस उपद्रव से परेशान होकर अब बाबा हरभजनजी गुफा में अधिक समय तक रहने लगे। यहाँ तक कि महीनों गुफा से बाहर नहीं निकलते थे। यह देखकर लोगों को आश्चर्य होता कि आखिर बाबा खाते क्या हैं?

किसी शिष्य ने कहा—''योगी पुरुष हैं, केवल हवा यानी पवन-सेवन करते हैं।''

इसी दिन से भक्तों में 'पवनहारी बाबा' के नाम से हरभजनजी प्रसिद्ध हो गये। न तो वे कुछ खाते हैं, न प्रात:क्रिया करने जाते हैं और न किसी से कुछ बोलते हैं।

एक अर्से तक गुफा में रहने के बाद एक बार बाहर निकले और गुफा के पास बने एक घर में रहने लगे। उनका उद्देश्य था कि एक बड़ा भण्डारा किया जाय। जब वे बाहर आकर कुटिया में रहते तब मिलनेवालों से मिलते, आशीर्वाद देते, प्रसाद देते और राम-राम जपने का आदेश देते थे।

इन दिनों के बारे में स्वामी विवेकानन्दजी ने लिखा है—''भारत के अन्य अनेक महात्माओं की तरह उनमें कर्ममुखरता नहीं थी। वाक्य के द्वारा नहीं, जीवन के द्वारा लोगों को शिक्षा देनी चाहिए। जो लोग सत्य को धारण करने के उपयुक्त हैं, उन्हीं के जीवन में सत्य प्रतिफलित होता है। इस महापुरुष का जीवन भारतीय आदर्श का अन्यतम उदाहरण है। इस तरह के व्यक्ति जो कुछ जानते हैं, उसका प्रचार करना उन्हें पसन्द नहीं। साधना के द्वारा सत्य को पाया जा सकता है। धर्म सामाजिक कर्त्तव्य है, शक्ति नहीं है।''

स्वामी विवेकानन्द जब इनसे मिलने आये थे तब पवहारी बाबा से पूछा था— ''जगत् के कल्याण के लिए आप गुफा से बाहर क्यों नहीं आ जाते?''

उन्होंने विनोदी भाव से कहा—''एक बदमाश आदमी एक बार गलत कार्य करते हुए पकड़ा गया। ठीक इसी समय उसे एक व्यक्ति ने पकड़ा और दण्डस्वरूप उसके नाक को काट दिया। अब वह आदमी सोचने लगा कि कटे हुए नाक को लेकर मैं लोकालय में कैसे जाऊँ? शर्म से परेशान होकर वह जंगल की ओर भाग गया। वहाँ एक बाघ की खाल का आसन बिछाकर बैठ गया। जब लोगों को इधर-उधर से आने की आहट पाता तब आँखें बन्द कर ध्यानस्थ हो जाता। उसे इस तरह ध्यान लगाकर बैठा देखने पर लोग रुक जाते। धीरे-धीरे लोग उसकी सेवा-पूजा करने लगे। उसने सोचा—यह नाटक उत्तम है। कम-से-कम भोजन की चिन्ता से मुक्त हो गया। इसी तरह कई साल गुजर गये। अब लोग इस मौनी बाबा से उपदेश सुनने के लिए व्याकुल होने लगे। यहाँ तक कि एक युवक उनसे दीक्षा लेने के लिए उत्सुक हो उठा। आखिर एक दिन उसने अपना मौन भंग करके कहा—''कल एक तेज चाकू लेकर आना।'' युवक ने सोचा कि कल मेरी आशा पूर्ण होगी। इसी आशा से वह चाकू लेकर सबेरे जल्दी चला आया। नकटा साधु उस युवक को जंगल के सुनसान इलाके में ले गया। इसके बाद एक ही झटके में उसकी नाक को काटने के बाद कहा—''हे युवक, इस तरह मैं अपने आश्रम में दीक्षित हुआ हूँ। अब तुम भी मौका देखकर इसी प्रकार अन्य लोगों को दीक्षा देते रहना।'' उस युवक ने मारे शर्म के इस दुर्घटना के बारे में किसी को कुछ नहीं बताया। साध्यानुसार वह नकटा साधु सम्प्रदाय की संख्या बढ़ाने लगा। इस प्रकार नकटा-साधु सम्प्रदाय सारे भारत में फैल गया। क्या तुम भी मुझसे ऐसा काम कराना चाहते हो?''

इसके बाद गम्भीर होकर उन्होंने कहा—''तुम क्या सोचते हो कि स्थूल शरीर से ही दूसरों का उपकार हो सकेगा? क्या देह के क्रियाशील हुए बिना केवल मन ही मन दूसरे के मन की सहायता की जा सकती है, क्या यह सम्भव नहीं है?''

स्वामीजी ने पूछा—''आप इतने बड़े योगी हैं, फिर शिष्यों को पहले-पहल श्री रघुनाथजी की मूर्ति-पूजा, होमादि करने का उपदेश क्यों देते हैं?''

पवहारी बाबा ने कहा—''तुम यही क्यों समझ लेते हो कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण के लिए कर्म करता है। क्या मनुष्य दूसरों के लिए कर्म नहीं कर सकता?''

पवहारी बाबा के जीवन में अलौकिक घटनाएँ बहुत कम हुई हैं। कारण वे मौन रहते हुए अपने जीवन का अधिकांश भाग गुफा में व्यतीत करते रहे। उनका दर्शन करने के लिए बड़े-बड़े धनी, सन्त, महात्मा आदि आते रहे।

एक बार एक चोर ने सोचा कि जब बाबा के पास इतने बड़े-बड़े लोग आते हैं और चढ़ावा देते हैं तब इनके पास काफी रकम होगी। उस मूर्ख को यह नहीं मालूम कि बाबा सारी रकम भण्डारा में खर्च कर देते हैं। जो व्यक्ति बेलपत्तियों पर जीवित है, उन्हें संचय की क्या जरूरत?

चोरी करते हुए वह उस ओर आया जिधर बाबा ध्यानस्थ बैठे थे। उन्हें देखते ही वह हड़बड़ाकर भागने लगा। आहट पाते ही बाबा का ध्यान भंग हुआ। वे चोर की

गठरी लेकर उसके पीछे-पीछे दौड़े। चोर ने समझा कि बाबा पकड़ने आ रहे हैं। इधर उससे भी तेज गति से दौड़कर बाबा ने उसे पकड़ लिया। इसके बाद बोले—''बेटा, यह तुम्हारा सामान है। कृपया इसे ग्रहण करो। इसके लिए मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा। मैं अपनी खुशी से तुम्हें दे रहा हूँ।''

चोर पर बाबा की इन बातों का व्यापक प्रभाव पड़ा। तुरत उनके पैरों पर गिरकर बोला—''महाराज, मुझे क्षमा कीजिए। अब आज से यह काम नहीं करूँगा।''

कहा जाता है कि उक्त चोर आगे चलकर बाबा का भक्त बन गया और चोरी करना छोड़ दिया। इसी प्रकार एक बार एक पागल आकर आश्रम में उपद्रव करने लगा। बात बाबा के पास पहुँची। वे गुफा के बाहर निकलकर उसकी ओर एकटक देखने लगे। धीरे-धीरे उसका उपद्रव शान्त होने लगा। कुछ देर बाद उसका सारा पागलपन दूर हो गया।

एक बार बाबा को एक विषधर सर्प ने काट लिया, इससे भक्त और शिष्य शोकाकुल होकर रोने लगे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि अब बाबा समाधि से कभी नहीं उठेंगे। ठीक पाँच घण्टे बाद बाबा ने आँखें खोलीं। व्याकुल भक्तों से कहा—''घबराने की बात नहीं है। सर्प देवता तो मेरे भगवान् के पाहन थे।''

जीवन के अन्तिम दिनों में वे किसी से मिलते-जुलते नहीं थे। जब गुफा से बाहर आते तब लोगों से बातें जरूर करते थे। शेष समय गुफा में रहते थे। गुफा के भीतर से जब धुआँ बाहर आता तब लोग समझ लेते थे कि बाबा होम कर रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द से उन्होंने कहा था—''हे राजा, भगवान् अकिंचनों के धन हैं। जो व्यक्ति किसी भी वस्तु को, यहाँ तक कि अपनी आत्मा को भी 'मेरा है' समझना छोड़ चुका है, वे उसी के हैं।'' बाबा में यही भाव था।

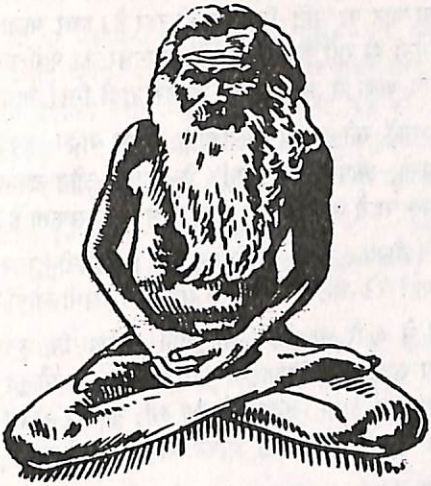
वे एक चक्षु के थे। वास्तविक उम्र से कम लगते थे। उनका स्वर बहुत ही मीठा था। प्रत्यक्ष रूप से वे उपदेश नहीं देते थे। उनका विचार था कि ऐसा करने पर स्वयं को आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित करना पड़ेगा और ऊँचे आसन पर बैठना पड़ेगा। अगर हृदय का प्रस्रवण खुल जाय तो ज्ञानवारि स्वतः प्रकट होने लगता है।

जब वे गुफा के भीतर रहते तब लोग अक्सर गुफा के मुहाने पर आलू और मक्खन रख देते थे। अगर वे समाधि में नहीं रहते तो उसे ग्रहण कर लेते थे, वरना उसी प्रकार पड़ा रह जाता था।

एक दिन गुफा के द्वार से काफी धुआँ बाहर निकलने लगा। आमतौर पर सुगन्धित धुआँ निकलता था, पर इस धुएँ में मांस जलने का दुर्गन्ध पाकर लोग घबरा उठे। अन्त में गुफा का दरवाजा तोड़ा गया। भीतर जाकर लोगों ने देखा बाबा होमाग्नि में अपने को आहुति दे रहे हैं। देखते-ही-देखते सब कुछ राख हो गया।

इस प्रकार पूर्वी उत्तर प्रदेश का ही नहीं, बल्कि भारत का एक सन्त सदा के लिए चला गया जिन्होंने परमहंस रामकृष्ण के पट्टशिष्य स्वामी विवेकानन्दजी को ज्ञान देकर प्रभावित किया था।

■ ■ ■



हरिहर बाबा

वाराणसी के गंगा-तट पर स्थित असीघाट पर आज अनेक नागरिकों की भीड़ एकत्रित हुई थी। यहाँ मृत्युंजय-होम हो रहा था। पास ही बाबा विश्वनाथ के प्रतीक परम श्रद्धेय हरिहर बाबा विराजमान थे। नगर के प्रसिद्ध याज्ञिक होमकुण्ड में आहुति दे रहे थे। उनके स्वाहा-स्वाहा स्वर से वातावरण मुखरित हो रहा था।

अचानक ठीक बारह बजे आसमान पर बादल मँडराने लगे। बिजली चमकने लगी, बादल गरजने लगे। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि यज्ञ का सारा आयोजन विफल होगा। लोग रह-रहकर आकाश की ओर देखने लगे। भीड़ में हलचल होते देख एक ब्राह्मण ने कहा—"आप लोग शान्ति से बैठे रहिये। पानी नहीं बरसेगा। जब यहाँ साक्षात् भोलेनाथ बैठे हैं तब कोई संकट नहीं आयेगा।"

ठीक उसी समय हरिहर बाबा ने होमकुण्ड के चारों ओर परिक्रमा करते हुए पण्डितों से कहा—"जब आप लोगों को ही याज्ञिक-क्रिया पर विश्वास नहीं है तब क्यों ऐसे कार्यों में भाग लेते हैं?"

पण्डितों ने अपना मस्तक झुका लिया। कुछ देर बाद जोरों से बारिश शुरू हो गई। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा—नदी, घाट चारों ओर बारिश हो रही है, पर यज्ञस्थल में

एक बूँद पानी नहीं गिर रहा है। चार बजे होम-कार्य समाप्त हुआ। इसके बाद होताओं और कार्यकर्ताओं को बजरे में भोजन करने के लिए बैठाया गया। इसके बाद चार घण्टे तक लगातार वर्षा होती रही। पण्डित तथा होतागण बजरे से बाहर नहीं निकल सके।

दशहरे के दिन हरिहर बाबा अपने भक्तों से घिरे बैठे थे। उनके सामने कुछ लोग भजन गा रहे थे। धीरे-धीरे शाम हो गई।

बाबा से कुछ कहने की हिम्मत किसी को नहीं हो रही थी। वहीं बाबा के पट्टशिष्य विश्वनाथजी भी मौजूद थे। भक्तों ने उनसे कहा—"महाराज, आज दशहरा का त्योहार है। दशाश्वमेध घाट पर मूर्ति-विसर्जन हो रहा है। इधर बाबा का सत्संग। यहाँ से उठने की भी इच्छा नहीं हो रही है। दूसरी ओर सालभर का पर्वोत्सव देखने की लालसा हो रही है। अगर आप बाबा से अनुरोध करें तो हमें छुट्टी मिल जायेगी।"

विश्वनाथजी भक्तों की इच्छा भलीभाँति समझ गये। उन्होंने हरिहर बाबा से निवेदन किया—"प्रभो, आपके इस कीर्तन के कारण लोग दशहरा-उत्सव देखने से वंचित रह गये। आपके रहते कोई सत्संग भला कैसे छोड़ सकता है?"

हरिहर बाबा ने हँसकर कहा—"तो यह बात है। उतनी दूर जाने की क्या जरूरत? वहाँ का सारा दृश्य यहाँ बैठे-बैठे भी देखा जा सकता है। सभी लोगों को कह दो।"

कुछ ही पलों में बजरे पर बैठे सभी लोगों ने देखा कि उनका बजरा दशाश्वमेध घाट पर है। वहाँ का सारा दृश्य दिखाई दे रहा है। घाट पर मौजूद सभी लोगों ने बाबा को देखा, किन्तु आसपास अन्य जितनी नौकाएँ थीं, उन पर सवार दर्शकों ने बाबा को नहीं देखा। यह दृश्य देखकर सभी भक्त आनन्द से विभोर हो उठे।

विश्वनाथजी ने कहा—"भगवन्, आपकी महिमा अपरम्पार है। आज मैं तथा आपके सभी भक्त धन्य हो गये।"

ठीक इसी समय बाबा के एक भक्त राधे असीघाट पर आया तो देखा—बाबा बैठे हैं। नाव पर अन्य लोग हैं। घर वापस आने पर राधे के भाइयों ने कहा—"असी जाना तेरा बेकार हुआ। बाबा तो दशाश्वमेध घाट पर दशहरा-उत्सव देख रहे थे।"

राधे को इस पर विश्वास नहीं हुआ। भाइयों ने कहा—"घाट पर चलो। वहाँ जिन लोगों ने बाबा को देखा था, उनसे गवाही दिला दूँगा।"

फिर भी राधे को विश्वास नहीं हुआ। दशाश्वमेध घाट पर आकर उसने लोगों से इस घटना के बारे में पूछा। जिन लोगों ने बाबा को देखा था, उन लोगों ने इस बात को स्वीकार किया। सारी बातें सुनकर राधे चकित रह गये।

* * *

बिहार का छपरा जिला बहुत ही महत्वपूर्ण जिला है जिसने माधव पागला, लाटू महाराज और हरिहर बाबा जैसे सन्तों को अपने यहाँ जन्म दिया।

इसी जिले के जफरापुर गाँव में सरयूपारी ब्राह्मण, तिवारी उपाधिधारी एक पण्डितजी रहते थे। सन् १८२१ ई०, माघी पूर्णिमा के दिन तिवारीजी के यहाँ एक

बालक ने जन्म लिया। तिवारीजी ने बालक का नाम रखा—सेनापति। आगे चलकर मेरा लड़का फौज में सेनापति बनेगा।

सेनापति जब सात वर्ष का हुआ तब तिवारीजी के यहाँ दूसरे पुत्र ने जन्म लिया। उन दिनों हरिहर-क्षेत्र का मेला लगा था। उसकी स्मृति में बालक का नाम रखा गया—हरिहर।

हरिहर के जन्म लेने के बाद से तिवारीजी की पत्नी अस्वस्थ रहने लगीं। गृहिणी की बीमारी, दोनों बच्चों की देखभाल और गृहस्थी का झमेला—तिवारीजी परेशान हो गये। कुछ दिनों बाद पत्नी चल बसी। बच्चे मातृहीन हो गये।

अब तिवारीजी पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। उनके कष्टों को देखकर पड़ोसी मित्रों ने उन्हें पुनर्विवाह करने की सलाह दी, पर वे राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा—"आप मेरी मुसीबतें देखकर ऐसी सलाह दे रहे हैं, पर यह भी सोचिये कि सौतेली माँ आकर इन्हें अपना स्नेह न दे सकी तो दिवंगत पत्नी के साथ मेरा कितना पाप बढ़ेगा। नयी पत्नी की उपेक्षा से कलह के सिवा और कुछ हाथ नहीं लगेगा।"

यह सन् १८३० ई० की घटना है। इस घटना के ठीक पाँच वर्ष बाद सन् १८३५ ई० को तिवारीजी भी दोनों बच्चों को अनाथ बनाकर चल दिये। उन दिनों सेनापति की उम्र १४ वर्ष और हरिहर की ७ वर्ष थी।

पिता का श्राद्ध करने के बाद सेनापति ने देखा कि यहाँ सहारा देनेवाला कोई नहीं है। खेत था नहीं, सगा भी कोई नहीं था। पिताजी सोनपुर के एक जमींदार की चर्चा बराबर करते थे जो कि उनके मित्र और सहपाठी थे। छोटे भाई को लेकर सेनापति उनकी शरण में आया।

सारी कहानी सुनने के पश्चात् जमींदार ने कहा—"कोई बात नहीं, बेटा। यहाँ आराम से रहो। खाओ, पिओ और स्कूल में पढ़ने जाओ।"

सेनापति को ज्ञात था कि पिताजी उसे कितना प्यार करते थे। ठीक उसी तरह वह अपने छोटे भाई हरिहर की देखभाल करता था। स्कूल से वापस आने के बाद दोनों बाहर नहीं जाते थे। एक साथ खाते और एक ही बिस्तर पर सो जाते थे।

यहाँ आये तीन वर्ष व्यतीत हो गये थे। अचानक एक दिन स्कूल से वापस आते ही हरिहर को तेज बुखार आ गया। इलाज होने लगा, पर उसे बचाया नहीं जा सका। तीसरे दिन वह भी अपने माता-पिता के पास चला गया।

यह एक ऐसा मार्मिक आघात था जिसे सेनापति सहन नहीं कर पा रहा था। उसके कपड़े, पुस्तकें, खेल के सामान आदि रह-रहकर उसकी स्मृतियों को कचोटने लगे। एक दिन वह चुपचाप भागलपुर चला आया। यहाँ भी मन को शान्ति नहीं मिली, बल्कि अनाहार और उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। लाचारी में पुनः सोनपुर वापस आकर पढ़ने-लिखने में मन लगाया।

लेकिन हरिहर की याद बराबर मन को अशान्त बनाती रही। हृदय से जब किसी को प्यार किया जाता है तब उसका अभाव बुरी तरह खलने लगता है। सेनापति को लगा

जैसे कोई अपना नहीं है। सभी अपने-अपने स्वार्थ के लिए मोह उत्पन्न करते हैं। इन्हीं सब चिन्ताओं से उसका मन उचाट हो गया और एक दिन अपने आश्रयदाता को बिना कोई सूचना दिये चल पड़ा।

कई शहरों का चक्कर काटते हुए जब वह अयोध्या पहुँचा तब वहाँ के वातावरण ने उसका मन मोह लिया। उसने निश्चय किया कि फक्कड़ साधुओं की तरह यहीं अपना जीवन व्यतीत करेगा। शायद कभी प्रभु राम की कृपा हो जाय। नगर से कुछ दूर सरयू के किनारे उसने डेरा जमाया। पास ही जंगल से लकड़ी और पत्ते लाकर एक छोटी-सी कुटिया बनाकर राम-भजन में मगन हो गया।

शाम के पहले नदी में स्नान करने के पश्चात् जो कुछ मिलता, उसे खा लेते। इधर से गुजरनेवाले यात्री और दर्शनार्थी साधु समझकर उसे खाद्य पदार्थ और पैसे दे जाते। खाद्य पदार्थों को वे खा जाते थे। जिस दिन खाद्य पदार्थ न मिलता, उस दिन सतुआ का घोल बनाकर पी जाया करते थे। अधिकतर समय ध्यान में लगाते थे।

कहा जाता है कि यहीं उन्हें एक संन्यासी से बीज मन्त्र प्राप्त हुआ था। इस मन्त्र के जाप से उन्हें तितिक्षा प्राप्त हो गई और वे कठोर साधना में निमग्न हो गये। दाढ़ी और जटा बढ़ने लगी, मन की व्याकुलता समाप्त हो गई। अब अपना अधिकांश समय कुटिया के बाहर एक शिला पर बैठे गुजारने लगे।

ठीक इन्हीं दिनों एक घटना हो गई। गाँव के कुछ लोग अयोध्या-दर्शन करने आये थे। इन लोगों में से कुछ लोगों ने सेनापति को पहचान लिया। आश्चर्य के साथ किसी ने कहा—''तिवारीजी का बेटा साधु बन गया है।''

दूसरे ने कहा—''कहिये हरिहर के भइया, यह चोला कैसे अपना लिया?''

लोग सेनापति का नाम भूल चुके थे। अधिकांश लोगों को हरिहर का नाम याद था। फलतः हर कोई सम्बोधन करते समय 'हरिहर के भइया' कहते रहे। गाँव के लोगों ने समझाया कि यह उम्र साधु बनने की नहीं है। लोग जवानी के बाद साधु बनते हैं। चलो, घर लौट चलो।

सेनापति ने इन लोगों के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। अब उसे मन्त्र-जाप में जो आनन्द मिल रहा था, उसे छोड़कर जाने की इच्छा नहीं हुई।

स्थानीय लोग इस महात्मा को कठोर-साधना करते देखते रहे। कुछ पूछने पर कोई जवाब नहीं मिलता था। दिनभर कड़ी धूप में, मूसलाधार वर्षा में और कड़कड़ाती सर्दी में इसी तरह दिनभर नंगे बदन ध्यान लगाये बैठे रहते थे। न किसी से कुछ माँगते थे और न किसी से कोई बात करते थे। गाँव के लोगों के सम्बोधन को सुनकर स्थानीय लोग भी 'हरिहर के भइया' स्थान पर हरिहर भाई—हरिहर बाबा कहने लगे। सेनापति ने सोचा—चलो, यह भी ठीक ही हुआ। जिस भाई की स्मृतियों ने संन्यास दिलाया और उसी के नाम को ग्रहण कर लिया जाय। इस घटना के बाद से वे हरिहर बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

दो वर्ष कठोर साधना करने के बाद उन्हें वाक्-सिद्धि मिल गई। अब वे अधिकतर पानी में रहने लगे। उनके चेहरे से अपूर्व तेज प्रस्फुटित होने लगा। कहा जाता है कि १२ वर्ष तक यहाँ तप करने के बाद एक दिन उन्हें प्रभु राम, सीता और हनुमान्जी के दर्शन हुए।

हनुमान्जी ने इनसे कहा—''अगर तुम इष्ट प्राप्त करना चाहते हो तो काशी जाकर बाबा विश्वनाथ की कृपा ग्रहण करो। वहीं तुम्हें इष्ट की प्राप्ति होगी। बाबा की कृपा प्राप्त होते ही तुम्हें तुम्हारा इष्ट प्राप्त हो जायगा।''

यह आदेश पाते ही उसी दिन हरिहर बाबा काशी की ओर पैदल रवाना हो गये। मार्ग में आपकी मुलाकात परम सिद्ध योगी तैलंग स्वामी से हुई। दोनों ही मौन भाषा में बातें करते हुए विश्वनाथ मन्दिर में आये। दो घण्टे बाद मन्दिर से निकलकर हरिहर बाबा तैरते हुए नगर के दक्षिणी भाग नगवा क्षेत्र में आ गये। यहाँ एक सुनसान स्थान पर रखे पत्थर पर चुपचाप बैठकर ध्यानस्थ हो गये।

उच्चस्तर के साधक जिन्हें दिव्य दृष्टि, वाक्-सिद्धि प्राप्त हो जाती है, वे अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से अन्य साधकों को पहचान लेते हैं। हरिहर बाबा को देखते ही तैलंग स्वामी ने समझ लिया कि यह साधक योग-सिद्ध है। इसके पूर्व योगिराज तैलंग स्वामीजी, स्वामी भास्करानन्द, रामकृष्ण परमहंस और पण्डित श्यामाचरण लाहिड़ी जैसे योगियों से मिल चुके थे। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि इस साधक की शक्ति अद्भुत है। उन्होंने इस बात की सूचना अपने भक्तों को देते हुए कहा—''तुम लोगों को चाहिए कि उनका दर्शन करो और सर्वदा ध्यान रखो। इन दिनों वे नगवा में विराजमान हैं।''

उपस्थित भक्तों में से किसी ने कहा—''बाबा, सुना है कि वे किसी के हाथ की कोई सामग्री ग्रहण नहीं करते, फिर हम उन्हें कैसे दें?''

तैलंग स्वामी ने कहा—''तुम्हारा कहना ठीक है, पर जब तुम लोग जो कुछ फल-मिष्टान्न दोगे तब उसे वे ग्रहण करेंगे। मैंने उनसे कह दिया है। मेरे बाद मेरा स्थान वही ग्रहण करेंगे।''

सन् १८८७ ई० में योगिराज तैलंग स्वामी का शरीरान्त हो गया। स्वामीजी की भक्त-मण्डली शोक से पागल हो गई। सभी सन्तप्त भक्तों को हरिहर बाबा के निकट शान्ति प्राप्त हुई।

हरिहर बाबा के समकालीन महात्माओं में तैलंग स्वामी, भास्करानन्द, श्यामाचरण लाहिड़ी थे। लाहिड़ी महाशय गृहस्थ योगी थे, इसलिए अन्य योगी उनके यहाँ नहीं जाते थे। लेकिन हरिहर बाबा, तैलंग स्वामी और स्वामी भास्करानन्द परस्पर एक-दूसरे के यहाँ बराबर जाते थे।

तैलंग स्वामी की तरह भास्करानन्दजी भी हरिहर बाबा की चर्चा चलने पर कहा करते थे—''बाबा असाधारण योगी पुरुष हैं। उनके तप की तुलना नहीं की जा सकती।''

* * *

नगवा घाट के समीप ही स्वामी योगत्रयानन्दजी रहते थे। वे असाधारण विद्वान् थे जिनकी चर्चा महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'साधु-प्रसंग' में कर चुके हैं। योगत्रयानन्दजी के पूर्वाश्रम का नाम था—शिवशंकर सान्याल। आप वास्तव में स्वामी नहीं थे। गृहस्थ संन्यासी थे।

आपके शिष्य श्री कालीपद मुखर्जी जो कि सबजज थे, ने नगवा में एक भवन बनवाया था, जहाँ आप रहते थे। एक दिन आपने देखा कि एक साधु को कुछ वाचाल लड़के गालियाँ देते हुए उन पर ढेले फेंक रहे हैं। यह दृश्य देखकर तुरत उन्होंने एक अन्य शिष्य रामशरण से कहा—"बाहर जाकर तुरत इन बदमाश लड़कों को डाँटकर भगा दो और महात्माजी को सादर भीतर ले आओ।"

रामशरण जरा असमंजस में पड़ गया। महात्माजी पागल की तरह दिखाई दे रहे थे। कहीं कोई हरकत कर बैठे तो क्या होगा। उसने कहा—"स्वामीजी, क्या मेरे कहने पर वे भीतर आना स्वीकार करेंगे?"

स्वामीजी ने कहा—"अवश्य करेंगे। मैं जो कह रहा हूँ। विलम्ब मत करो, जाओ।"

डरते हुए रामशरण ने जाकर लड़कों को भगाया और महात्माजी से निवेदन किया। वे तुरत उसके साथ चले आये। शिवशंकरजी ने उन्हें उचित आसन देकर प्रणाम किया। इसके बाद आपस में उच्चस्तरीय वार्ता होने लगी।

हरिहर बाबा के चले जाने के बाद स्वामी योगत्रयानन्दजी ने कहा—"यह तो महान् योगी हैं। तैलंग बाबा के बाद ऐसा महात्मा दूसरा नहीं देखा। मेरा अनुरोध है कि तुम लोग इनकी बराबर सेवा करते रहना। ऐसे महात्माओं का आविर्भाव कभी-कभी होता है।"

इस मुलाकात के बाद अक्सर स्वामी योगत्रयानन्द हरिहर बाबा के पास आते रहे। जब उन्हें आने में कोई अड़चन होती तब अपने शिष्यों से समाचार प्राप्त करते थे। जब तक स्वामीजी का शरीरान्त नहीं हो गया तब तक वे अपनी ओर से फल-फूल, मिष्टान्न आदि बाबा के पास बराबर भिजवाते रहे।

निधन के पहले उन्होंने रामशरण से कहा—"यह बात याद रखना कि मेरे बाद भी बाबा का ख्याल रखना। इससे तेरा भला होगा। वे क्या हैं, इसे तू अपनी सामान्य दृष्टि से नहीं देख सकता। उनकी सेवा से तेरा परलोक सुधर जायगा।"

इसी प्रकार विजयकृष्ण गोस्वामी जब कभी काशी आते तब हरिहर बाबा से जरूर मिलते थे। कभी-कभी दोनों व्यक्ति सूक्ष्म शरीर में मिलते थे।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व दशाश्वमेध घाट के पहले डेढ़सी पुल के समीप एक चौतरे पर खिचड़ी बाबा रहते थे। सिर पर बड़े-बड़े बाल, घनी दाढ़ी, हृष्ट-पुष्ट शरीर, पास ही धूनी और त्रिशूल। आप नित्य दरिद्रनारायण यानी कंगलों को खिचड़ी खिलाया करते थे। कहा जाता है कि खिचड़ी तैयार हो जाने के बाद आप उस कड़ाही को स्पर्श करते थे। इसके बाद अगणित लोगों को खिचड़ी दी जाती थी, पर कभी कमी नहीं हुई। इसी विशेषता के कारण पूरे बनारस में आपकी प्रसिद्धि थी। हरिहर बाबा अक्सर खिचड़ी-वितरण के समय पहुँच जाते और बाबा से बातें करते थे।

नगवा के समीप एक और बाबा रहते थे जिनका नाम था—वीतरागानन्द सरस्वती। जब हरिहर बाबा और सरस्वतीजी आपस में मिलते थे तब एक-दूसरे को 'गुरुदेव' कहकर सम्बोधित करते थे। इसका अर्थ था—दोनों सन्त एक-दूसरे को अपनी अपेक्षा ज्ञानी और तपस्वी समझते थे, परन्तु इन दोनों साधुओं के भक्त यह समझ बैठे कि हरिहर बाबा के गुरु वीतरागानन्दजी हैं और वीतरागानन्दजी के गुरु हरिहर बाबा हैं। जबकि यह धारणा गलत थी। वास्तव में दोनों गुरुभाई थे। इनके गुरुदेव मानसरोवर पर तपस्या कर रहे थे। हरिहर बाबा के असली गुरु का नाम केवल दो-चार शिष्य ही जानते थे। बाबा ने गुरुदेव का नाम प्रकट करने के लिए उन सभी को मना कर रखा था।

एक दिन स्वामी वीतरागानन्दजी के साथ हरिहर बाबा घूमने निकले तो भड़भाड़ के झंखाड़ में गिर पड़े। तमाम बदन में छोटे-छोटे काँटे चुभ गये। तुरत कई लोग बाबा को उठाने के लिए दौड़े।

तभी एक भक्त ने कहा—''एक दिन स्वामीजी भी इन्हीं झंखाड़ों में गिर पड़े थे। इन झंखाड़ों को नष्ट कर देना ठीक होगा।''

यह बात सुनते ही हरिहर बाबा ने कहा—''इन काँटों से जैसा मुझे कष्ट हुआ, वैसा ही सरस्वती स्वामी को भी हुआ होगा?''

भक्तों ने कहा—''हाँ, महाराज। तमाम बदन से काँटे निकालने में काफी परेशानी हुई थी।''

कुछ देर बाद हरिहर बाबा ने कहा—''कल से इन्हें कष्ट देने का अवसर नहीं मिलेगा।''

दूसरे दिन स्थानीय लोगों ने देखा—दूर-दूर तक जितने भड़भाड़ के पौधे थे, सब मुरझा गये हैं। लगता था, जैसे रात को दैत्यों ने आकर इन्हें जड़ से उखाड़कर रख दिया है। आसपास के अन्य पेड़ मौजूद थे, पर भड़भाड़ का एक पेड़ भी जीवित नहीं था।

इसी प्रकार की एक और घटना हुई थी चर्चा बनारस ही नहीं, बल्कि भारत के विभिन्न प्रान्तों में फैल गई थी।

महाराजकुमार विजयानगरम् काशी के सर्वजन आहत पुरुष थे। ब्रिटिश शासन-काल में जितने गवर्नर काशी आते, वे इनके यहाँ ठहरते थे। सामान्य लोगों में विजयानगरम् का महल 'ईजा नगर की कोठी' के नाम से प्रसिद्ध है। शिक्षित जनता क्रिकेट के कुशल खिलाड़ी होने के कारण इन्हें 'वीजी' कहती थी।

महाराजकुमार सन्तान-हीन थे। कभी-कभी हरिहर बाबा का दर्शन करने आते थे। एक बार शायद उन्होंने अपना दर्द प्रकट किया। बाबा ने कहा—''भण्डारा करो। रामजी की कृपा अवश्य होगी।''

यह आदेश पाकर महाराजकुमार ने दो दिन मालपुए का और दो दिन रसगुल्ले का भण्डारा किया। इसके बाद रानी साहिबा ने महल में भण्डारे का प्रबन्ध किया जिसमें बाबा से आने का अनुरोध किया गया। बाबा पालकी पर सवार होकर रवाना हुए।

आपके साथ भक्तों का काफिला था। असी नाले के पास नागफनी का जंगल था। फलस्वरूप पालकी ढोनेवालों से लेकर अनेक भक्तों के पैरों में नागफनी के काँटे धँस गये। सभी त्रस्त हो उठे।

यह घटना देखकर तुरत बाबा के मुँह से निकल पड़ा—''कल से नागफनी का नाश हो जायगा। इसके बाद किसी को इस पौधे से कष्ट नहीं होगा।''

भड़भाड़ का नाश होते जो लोग देख चुके थे, उन लोगों को विश्वास हो गया कि अब नागफनी का सत्यानाश हो जायगा। दूसरे दिन कौतूहलवश काफी लोग यह दृश्य देखने गये। पता नहीं, रातभर में सारी नागफनी कहाँ गायब हो गई थी। बिजली की तरह यह समाचार पूरे नगर में फैल गया।

अब एक अर्से बाद लोग घरों में कैक्टस के नाम पर गमलों में लगा रहे हैं।

महाराजकुमार विजयानगरम् के यहाँ नगर के अधिकांश संन्यासी, ब्राह्मण और अब्राह्मणों ने उस दिन भोजन किया। हरिहर बाबा ने रानी साहिबा को आशीर्वाद दिया। दस माह बाद वे सन्तान की जननी बनीं।

* * *

मुक्तागाछा के जमींदार काशी-यात्रा करने आये। इनके साथ श्रीश नामक मित्र थे। जमींदार साहब काशी में दो माह रहने के बाद चले गये, पर श्रीश को यहाँ का वातावरण इतना अच्छा लगा कि वह यहीं रह गये। अक्सर हरिहर बाबा का दर्शन करने चले आते थे। अचानक एक दिन बाबा उस पर बिगड़ उठे—''अरे बेवकूफ, तू अभी चला जा यहाँ से।''

वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बाबा ने कहा—''शादीशुदा होकर अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाता। अपनी पत्नी और बच्चों को गाँव में छोड़कर यहाँ तीरथ करने आया है? अब अगर आना तो बाल-बच्चों को लेकर आना, वरना मत आना।''

उसने गिड़गिड़ाकर कहा—''कैसे ले आऊँ बाबा। यहाँ कौन-सा रोजगार करूँगा? उनका पेट कैसे भरूँगा?''

बाबा ने कहा—''यहाँ मिठाई की दुकान खोल ले। रुपये यहाँ से ले जाना।''

बाबा की आज्ञा मानकर वह गाँव चला गया और वापस आकर सोनारपुरा मुहल्ले में मिठाई की दुकान खोली। वह रसगुल्ला इतना बढ़िया बनाता था कि लोग उसे 'रसगुल्ला बाबू' कहने लगे। यह सन् १९४२ ई० की घटना है।

श्रीश बाबू का एक ही लड़का था। अचानक वह हैजे का शिकार हो गया। डॉक्टर ने उसे मृत घोषित कर दिया। यह सुनते ही वह पागलों की तरह बाबा के पास आकर रोने लगा। बाबा ने कहा—''तेरा लड़का मरा नहीं है। यहाँ से चरणामृत ले जा और राम-राम जपते हुए उसके मुँह में डाल देना।''

बाबा के आज्ञानुसार उसने तुरत घर आकर बच्चे के मुँह में चरणामृत डाला। उसे विश्वास था कि चरणामृत डालते ही चमत्कार होगा। बाबा के आज्ञानुसार एक नहीं, दो-

दो डॉक्टरों को बुलाया गया था। दोनों ने ही कहा कि लड़का मर गया है। इसके बाद बाबा के एक भक्त डॉक्टर श्रीराम बाबू आये। उन्होंने गौर से देखा, वे भी चिन्तित हो उठे। सारी बातें सुनने के बाद दवा दी।

तीन दिन लड़का उसी हालत में पड़ा रहा। चौथे दिन उसकी नाड़ी क्षीण गति से चलने लगी। श्रीराम बाबू ने कहा—''अब डरने की जरूरत नहीं है। जाओ, बाबा को प्रणाम कर आओ।''

* * *

काशी में राधे नवलगढ़िया नामक एक व्यवसायी रहते थे। उनकी पत्नी को तपेदिक हो गया था। डॉक्टरों ने कहा—''अब यह ठीक होनेवाला नहीं है। रोगी को मनचाही चीजें खाने-पीने दें और आराम से रखें।''

डॉक्टरों की इस राय को सुनकर नवलगढ़िया निराश हो गये। अकेले में अक्सर रोते-कलपते थे। बात पत्नी के पास पहुँची। उसने कहा—''एक बार मुझे हरिहर बाबा का दर्शन करा दो। उनके दर्शन से मुझे मुक्ति मिल जायगी।''

पत्नी के अनुरोध पर नवलगढ़िया उसे नाव से बाबा के पास ले आये। नवलगढ़िया को देखते ही बाबा उखड़ गये—''तुम लोगों ने आखिर मुझे समझ क्या रखा है? क्या मैं वैद्य-डॉक्टर हूँ? भगवान हूँ? हटाओ, यह सब बखेड़ा।''

हरिहर बाबा के शिष्य विश्वनाथ बाबा ने कहा—''प्रभो, यह आपकी ही सन्तान हैं। अपना सुख-दुःख पिता से न कहेंगे तो किससे कहेंगे? अगर आप हम सब पर कृपा नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा?''

कुछ देर बाद मन शान्त होने पर हरिहर बाबा ने कहा—''ले आ, उसे। सामने लेटा दे।''

आज्ञा पाते ही रोगिणी को लोग बाबा की नाव पर ले आये और बाबा के सामने लेटा दिया गया। सहसा हरिहर बाबा की शान्त आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं। रोगिणी के सिर से पैर तक निरीक्षण करने के बाद उन्होंने कहा—''जा बेटी, तेरा सारा रोग दूर हो गया। चिन्ता की बात नहीं। आगे सुविधानुसार भण्डारा दे देना। इससे तेरा मंगल होगा।''

* * *

काशी-निवासी शंकरप्रसाद पटना के किसी कॉलेज में अध्यापक थे। उनका मस्तिष्क विकृत हो गया। माता-पिता ने काफी इलाज कराया, ओझाई कराई, पर कोई लाभ नहीं हुआ।

माता सरलादेवी ने हरिहर बाबा के एक शिष्य रामशरणजी से अपनी मुसीबतों की चर्चा की। रामशरणजी ने कहा—''आप अपने लड़के को लेकर हरिहर बाबा के पास चले जाइये। वे साक्षात् बाबा भोलेनाथ हैं। उनकी कृपा होने पर आपका संकट दूर हो जायगा।''

सरलादेवी सीधे हरिहर बाबा के पास आई। अपने संकट का वर्णन विस्तार से करने के बाद आकुल स्वर में कृपा माँगने लगी। बाबा मौन रहे। उन्होंने इस प्रार्थना पर आँख उठाकर देखा तक नहीं। सरला दु:खी होकर वापस लौट आई।

सारी बातें सुनने के बाद रामशरणजी ने कहा—''आप एक बार और बाबा के पास जाइये। उनसे कहियेगा कि मुझे रामशरण ने भेजा है, जो आपको उस पार से इस पार ले आये हैं।''

सरलादेवी दूसरे दिन पुन: हरिहर बाबा के पास आई और रामशरणजी का उल्लेख करते हुए अपनी सारी व्यथा सुनाई।

हरिहर बाबा कुछ देर मौन रहने के बाद बोले—''नित्य शाम को महावीर का भजन और राम का नाम जपना। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।''

सरलादेवी घर आकर बाबा के निर्देशानुसार कार्य करने लगी। पति को उत्सुकता हुई कि आखिर इस बालक के भाग्य में क्या है। एक ज्योतिषी ने बताया कि आपके बालक पर महावीरजी कुपित हैं। कहीं राम-राम होता था जिसे आपके पुत्र ने बन्द करवा दिया। फलत: महावीरजी नाराज हो गये और उसका मस्तिष्क विकृत हो गया।

सारी बातें सुनने के बाद पति ने नित्य अपने घर रामायण का पाठ प्रारम्भ कराया। धीरे-धीरे बालक स्वस्थ होकर पुन: काम करने लगा।

* * *

सरजू नामक एक व्यक्ति किसी मुकदमे के सिलसिले में काशी आया। कचहरी का काम समाप्त करने के बाद वह हरिहर बाबा का दर्शन करने चल पड़ा। बहुत दिनों से उनकी ख्याति सुनता आया था। बाबा के पास आते ही उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। फिर घर वापस नहीं गया। एक कौपीन, कमण्डल और लाठी उसके जीवन का सहारा बन गया।

बाबा ने उसे शिष्य के रूप में अपना लिया। केवल इन्हीं सामग्रियों को लेकर वह तीर्थयात्रा पर चला गया। सरजू के बाद कितने लोग आये और चले गये। कुछ दिनों बाद एक दिन बाबा बेचैन होकर बोल उठे—''आज मेरा विश्वनाथ आ रहा है।''

बाबा के पास बैठे लोग इस बात का मतलब नहीं समझ सके। कई घण्टे बाद एक युवक बाबा के पास आया। उसे देखते ही बाबा बोले—''तू आ गया? कब से मैं तेरा इन्तजार कर रहा था।''

कहने के साथ ही उन्होंने उसे अपनी गोद में बैठाया। धीरे-धीरे उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगे। थोड़ी देर में उसका ब्राह्य ज्ञान लुप्त हो गया। तीन घण्टे बाद वह स्वाभाविक स्थिति में आया।

यह दृश्य देखकर पास बैठे भक्तों ने पूछा—''महाराज, यह बालक कौन है?''

बाबा ने प्रसन्न भाव से कहा—''काशी का विश्वनाथ। विश्वनाथ के आने पर ही बाबा सचल होते हैं वरना पत्थर की तरह अचल बने रहते हैं।''

विश्वनाथ के आने से अनेक भक्तों का उपकार हुआ। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि बाबा का यही प्रमुख शिष्य बनेगा। बाबा कभी विश्वनाथ की बात टालते नहीं थे। कुछ ही दिनों में मल्लाहों से नाव खेना सीखकर वह नाव खेने लगा। हरिहर बाबा काशी की भूमि को अत्यन्त पवित्र समझते थे, इसलिए इधर मल-मूत्र-त्याग नहीं करते थे। नित्य विश्वनाथ भोर के समय उस पार बाबा को ले जाते और ले आते थे। धीरे-धीरे बाबा की सारी जिम्मेदारी उसने ले ली।

कुछ दिनों बाद विश्वनाथ के माता-पिता उसे खोजते हुए आये और बाबा से अनुरोध करने लगे कि उनके पुत्र को मुक्ति दे दी जाय।

बाबा ने कहा कि अगर तेरा बेटा है तो मेरे पास क्यों आया? अगर यह मेरा बेटा है तो कहीं नहीं जायेगा। चाहे तो कोशिश करके देख ले। विश्वनाथ के माता-पिता अपने लड़के को कई दिनों तक समझाते रहे, पर वह वापस जाने को राजी नहीं हुआ।

बाबा उसे धर्मग्रन्थ पढ़ाने लगे। वह पढ़ता और बाबा सुनते। इसी तरह बाबा विश्वनाथ का निर्माण करते रहे।

* * *

बाबा पहले बजरे पर नहीं रहते थे। भोर के समय प्रातःक्रिया करने नदी तैरकर आते-जाते थे। एक बार मझौली की रानी बजरे पर सवार होकर गंगा पार कर रही थीं। उन्होंने देखा—उफनते हुए नदी की धार में एक आदमी तैरता हुआ दूसरी ओर जा रहा है। यह देखकर उन्होंने मल्लाहों से कहा—"यह आदमी पागल है क्या? इतनी तेज धार में तैर रहा है। नाव से जाना चाहिए।"

मल्लाहों ने कहा—"महारानीजी, यह काशी के महान् सन्त हैं। नित्य मल-मूत्र त्यागने के लिए उस पार इसी तरह जाते हैं और वापस लौटते हैं। नगवा में जाड़ा, गर्मी, बरसात में नंगे बदन बैठे रहते हैं। ऐसा महात्मा शहर में दूसरा कोई नहीं है। बड़े सिद्ध हैं।"

रानी ने कहा—"तुम बजरा नगवा घाट पर लगाओ। मैं इन महात्मा का दर्शन करूँगी।"

नगवा घाट आकर रानीजी पैदल ही बाबा के समीप आईं। इन्हें देखते ही बाबा ने पूछा—"माताजी, आपने यहाँ आने का कष्ट क्यों किया?"

रानी माता ने प्रणाम करते हुए कहा—"आपसे मैं एक नम्र निवेदन करना चाहती हूँ; क्या आप स्वीकार करने की कृपा करेंगे? अगर आप अनुमति दें तो मैं इन श्रीचरणों में निवेदन करूँ?"

बाबा ने कहा—"माताजी, आप निर्भय होकर अपनी इच्छा प्रकट करें। मैं आपकी इच्छा की पूर्ति अवश्य करूँगा।"

रानीजी ने हँसकर कहा—"मैं जानती हूँ कि आप गंगा के पवित्र जल को छोड़कर कहीं नहीं रह सकते। आपके निवास के लिए एक नाव अर्पित करना चाहती हूँ ताकि आप आराम से निवास कर सकें।"

बाबा की इच्छा नहीं थी, पर इस अनुरोध को उन्होंने अस्वीकार नहीं किया। आशीर्वाद देते हुए कहा—''तथास्तु, जैसी माताजी की इच्छा।''

इस आज्ञा को पाकर रानीजी ने एक बजरा बनवाकर उस पर बाबा को बैठाया। उस दिन इस उपलक्ष्य में विशाल भण्डारा हुआ। इस घटना के बाद से नित्य भोग के लिए रानीजी सामग्री भेज देती थीं। नियमित रूप से आकर बाबा के निकट श्रद्धा ज्ञापन करती थीं।

एक दिन एक दुशाला लाकर बाबा के शरीर पर डाल दिया। एकाएक बाबा थर-थर काँपने लगे। यह दृश्य देखकर रानी अवाक् रह गईं—यह क्या? यहाँ तो सब उल्टा हो रहा है। आखिर बात क्या है?

तभी वहाँ एक संन्यासी आकर बैठा। वह सर्दी से बुरी तरह काँप रहा था। तुरत बाबा ने उस शाल को उसे ओढ़ा दिया। संन्यासी का काँपना बन्द हुआ। इधर बाबा का काँपना भी अपने-आप गायब हो गया। अक्सर बाबा इस तरह का चमत्कार दिखाया करते थे।

* * *

सन् १९२५ ई० की घटना है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुछ उद्दण्ड छात्रों ने उपद्रव मचाया। वे जूता पहनकर बाबा के बजरे पर चढ़ आये। मल्लाहों ने उन्हें डाँटा। फलस्वरूप बात बढ़ती गई और मारपीट होने लगी। इसके बाद लड़के ईंट-पत्थर फेंकने लगे। बजरे पर बैठे कई लोगों को चोट लगी।

बाबा ने क्षुब्ध होकर कहा—''बजरा खोल दो। अब मैं यहाँ नहीं रहूँगा।''

आदेशानुसार बजरा खोल दिया गया। कुछ दूर असीघाट पर आते ही बाबा ने कहा—''यहीं रोक दो।''

बाबा के साथ हुई दुर्घटना का समाचार चारों ओर फैल गया। लड़कों की उद्दण्डता पर सारा शहर उफनने लगा। मालवीयजी के पास समाचार पहुँचा। वे तुरत आये और लड़कों की ओर से क्षमा माँगने लगे।

बाबा ने अप्रसन्न होकर कहा—''आप इन लड़कों को अच्छी शिक्षा दे रहे हैं। क्या यही देश का कल्याण करेंगे?''

मालवीयजी इस शिकायत पर क्या जवाब देते? उन्होंने कहा—''मैं लड़कों के इस अपराध के लिए आपसे क्षमा माँगने आया हूँ। वे आपही की सन्तान हैं। बच्चों की उद्दण्डता को माता-पिता क्षमा करते हैं वरना वे पाप-मुक्त कैसे होंगे? अगर यही ज्ञान उन्हें रहता तो वे ऐसा गलत कार्य क्यों करते?''

बाबा ने कहा—''रामजी ने उन्हें क्षमा कर दिया है, इसलिए मैं कुछ नहीं कहना चाहता। मेरा कहना यही है कि अगर लड़कों को योग्य, सभ्य और सुसंस्कृत न बना सको तो क्यों व्यर्थ में अर्थ और समय बरबाद कर रहे हो?''

इस बातचीत के बाद मालवीयजी क्षुब्ध भाव से वापस चले आये। इस घटना के तीन दिन बाद ब्रिटिश सरकार की ओर से मालवीयजी को इस आशय की एक नोटिस प्राप्त हुई—जिस जमीन पर आप विश्वविद्यालय बनाने जा रहे हैं, उसे दो महीने के भीतर खाली कर दीजिए। भारत सरकार वहाँ सैनिकों के लिए छावनी बनाने का निश्चय कर चुकी है।

इस नोटिस को पाते ही मालवीयजी के होश उड़ गये। तत्कालीन सभी नेताओं को उन्होंने बुलाकर आवश्यक मीटिंग की। काफी देर तक विचार-विमर्श करने के बाद भी समस्या का हल नहीं निकला।

सदस्यों में एक प्रोफेसर थे जो बाबा के भक्त थे। उन्हें सारी घटना मालूम हो गई थी। उनके मन में शंका उत्पन्न हुई कि कहीं बाबा के कोप के कारण यह बात तो नहीं हुई है? उन्होंने सुझाव दिया कि हम सब चलकर हरिहर बाबा से प्रार्थना करें। वे महान् योगी और सिद्ध महात्मा हैं, शायद उनके कारण यह संकट दूर हो जाय। सन्तों के आशीर्वाद से चमत्कार होते हैं। उस दिन छात्रों ने गलत काम किया था, शायद उसी का यह परिणाम है।

सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने कहा—"आप लोग इस नोटिस का कोई जवाब न दें। रामजी चाहेंगे तो कल्याण होगा।"

पुनः एक सप्ताह बाद सरकार की ओर से यह सूचना आई कि पहले भेजी गई नोटिस रद की जा रही है।

जब यह पत्र मिला तब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। पुनः लोग बाबा के पास कृतज्ञता प्रकट करने आये और कहा कि हम यहीं घाट पर आपके लिए एक कुटिया बना देना चाहते हैं।

बाबा ने कहा—"मुझे कुटिया की जरूरत नहीं है। अगर आप लोग कुछ देना चाहते हैं तो हमारे रामजी के परमभक्त तुलसीदास के नाम पर बने घाट का जीर्णोद्धार करा दें।"

मालवीयजी के प्रयत्न से श्री घनश्यामदास बिरला ने उक्त घाट का जीर्णोद्धार कराया था।

बाबा के अनन्य शिष्य विश्वनाथ ब्रह्मचारीजी अचानक बुखार से पीड़ित हो गये, साथ ही पेट में असह्य पीड़ा शुरू हो गई। यह देखकर बाबा ने कहा—"शिवाले जाकर रामनगरिया (डॉ० गोपालदास गुप्त, जो कि रामनगर स्थित काशीराज अस्पताल के डॉक्टर थे।) को दिखाओ। अगर वह कोई दवा दें तो उसे लेकर यहाँ चले आना।"

विश्वनाथ ब्रह्मचारी रिक्शे से सोनारपुरा स्थित डॉक्टर दासगुप्ता के दवाखाने में आये। उन्होंने दवा दी जिसे लेकर वे बाबा के निकट आये।

बाबा ने कहा—"रामनगरिया ने जो दवा दी है, उसे गंगा में फेंक दे। डुबकी लगाकर गंगा से थोड़ी मिट्टी निकालकर खा ले और रामजी का नाम लेकर थोड़ा-सा गंगा-जल पी ले।"

विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने निर्देशानुसार वही किया। थोड़ी देर बाद जाड़ा देकर तेज बुखार आया। बाबा ने कहा—''उसे कम्बल ओढ़ा दो और दो आदमी कसकर पकड़े रहो। जब उसका काँपना बन्द हो जाय तब उसे मेरे पास लाना। वह उठकर बैठने न पाये, इसका ख्याल रखना।''

एक घण्टे बाद कम्पन बन्द हुआ तब विश्वनाथ ब्रह्मचारी बाबा के पास आये और कहा—''बुखार और जाड़ा दोनों गायब हो गया।''

दूसरे दिन डॉक्टर दासगुप्ता अपने मरीज को देखने आये तो पता चला कि विश्वनाथ ब्रह्मचारी नहाने गये हैं। डॉक्टर ने कहा—''यह क्यों? यह बुखार तो एक दिन में अच्छा होनेवाला नहीं है। कैसे अच्छा हो गया?'' फिर क्षणभर बाद बोले—''शायद बाबा की कृपा से यह सम्भव हुआ है।''

बाद में उन्हें सारी कहानी बताई गई तब उन्होंने कहा—''मेरा अनुमान सही निकला।''

* * *

रामशरण के भाई अपनी नौकरी के लिए परेशान थे। इण्टरव्यू दे चुके थे, पर अभी तक कोई सूचना नहीं आई। व्याकुल होकर बाबा के पास आकर बोले—''प्रभो, मेरी नौकरी कब तक लगेगी? बड़ा चिन्तित हूँ।''

हरिहर बाबा ने कहा—''चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। आज और शीघ्र इसकी सूचना तुम्हें मिलेगी।''

बाबा के दरबार से घर आते ही देखा कि पोस्टमैन मिलिटरी ऑफिस से पत्र को लेकर खड़ा है। पत्र में लिखा था—एक सप्ताह के भीतर अपनी छावनी पर आ जायें।

पत्र पाते ही परेशचन्द्र मजुमदार तुरत बाबा के पास आये और चरण-रज मस्तक से लगाते हुए कहा—''आपकी असीम कृपा मुझ पर है। अब मुझे लड़ाई पर जाने की अनुमति दें।''

बाबा ने कहा—''ठीक है बेटा। जाओ, हमारी मुलाकात फिर होगी।''

इसी प्रकार की एक घटना श्री राम बाबू की पत्नी के साथ हुई। एक दिन वे आकर बोलीं—''बाबा, मेरा लड़का दफ्तर की परीक्षा में फेल हो गया। फलस्वरूप उसे तरक्की नहीं दी गई।''

बाबा ने पूछा—''क्या अब पुनः परीक्षा नहीं होगी?''

''अब तो छः महीने बाद होगी।''

बाबा ने कहा—''घबड़ाने की बात नहीं है। परीक्षा के कुछ दिन पहले मुझे आकर बता देना। सब रामजी की कृपा से ठीक हो जायगा।''

परीक्षा के पूर्व श्री राम की पत्नी ने बाबा को पत्र लिखा। परीक्षा के बाद लड़के को प्रमोशन मिल गया।

* * *

सन् १६४८ ई० में भयंकर बाढ़ आई थी। नगर में नाव द्वारा आवागमन हो रहा था। सरकारी आदेश जारी हुआ कि कोई भी नाव उस पार नहीं जायगी। यात्रियों से भरी कई नौकाएँ डूब गई थीं। चारों ओर जल-पुलिस का पहरा लग गया। तुलसीघाट पर कैम्प लग गया। पुलिस के बड़े-बड़े अफसर चारों ओर देखरेख कर रहे थे।

रात के तीन बजे बाबा की नाव उस भयंकर बाढ़ में उस पार रवाना हुई। बाबा निबटने जा रहे थे। विश्वनाथ ब्रह्मचारीजी नाव चला रहे थे।

"कौन जा रहा है?" सिपाही गरजा।

नाव से कोई जवाब नहीं आया। अफसर ने गोली चलाने का आदेश दिया। तभी एक पुलिस अफसर सलाम करते हुए बोला—"हरिहर बाबा की नाव है। वे नित्य उस पार निबटने जाते हैं। ऐसे महात्मा पर गोली न चलायें।"

उस पार निबटने के बाद बाबा वापस आने लगे। बीच गंगा में आकर विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने कहा—"अब डाँड़ चल नहीं रहा है। कैसे खेऊँ? नाव उस पार लगाना कठिन हो रहा है।"

हरिहर बाबा ने कहा—"अब तुझे खेने की जरूरत नहीं। मेरी बगल में आकर बैठ जा। यहाँ बैठकर राम-राम जप।"

विश्वनाथ ब्रह्मचारी बाबा के आज्ञानुसार डाँड़ छोड़कर राम-राम जपने लगे। नाव धीरे-धीरे बहती हुई असीघाट की ओर बढ़ गई।

बीच गंगा के भँवर में जब नाव चक्कर काट रही थी और विश्वनाथ ब्रह्मचारी नाव खेने में लाचार हो गये तब इस पार खड़ी पुलिस ने कहा—"आज बाबा की जलसमाधि होगी।" थोड़ी देर बाद उन लोगों ने देखा कि डाँड़ खेनेवाला कोई नहीं है।

थोड़ी देर बाद जब नाव किनारे पर लगी तब जिलाधीश सीन क्लेयर तथा डे साहब नाव पर आये और बाबा के चरणों पर अपनी टोपी रख दी।

* * *

पौष मास। रात के दो बजे एक माताजी आईं। लाल किनारे की साड़ी पहने थीं। आप प्रत्येक चतुर्दशी के दिन आती हैं और हरिहर बाबा के सिर पर पानी डालती हैं।

उस दिन विश्वनाथ ब्रह्मचारी नाराज हो गये। फटकारते हुए बोले—"इस कड़ाके की सर्दी में आप बाबा के सिर पर पानी डाल रही हैं?"

तुरत हरिहर बाबा बिगड़ते हुए बोल उठे—"तुझसे क्या मतलब है कि कौन क्या करता है? जब तेरे सिर पर कोई पानी डाले तब बिगड़ना।" कुछ देर बाद पुनः बोले—"जानता है, कौन आया था?"

विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने चौंककर उस ओर देखा—माताजी अन्तर्धान हो चुकी थीं।

श्री गोविन्दप्रसाद मुखोपाध्याय बाबा के एक पुराने भक्त थे। बाबा के अनेक चमत्कार वे देख चुके हैं। अपने शरीरान्त के दो माह पूर्व बाबा गंगाजल के अलावा कुछ

नहीं खाते-पीते थे। इधर बाबा के तिरोधान के ठीक चार दिन पूर्व गोविन्दप्रसाद की इच्छा हुई कि बाबा को भोग दें। वे पूरी, तरकारी, मिठाई आदि लेकर आये।

विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने कहा—''यह सब आप क्यों लाये हैं? आप तो जानते हैं कि आजकल बाबा कुछ नहीं खाते।''

अपनी गलती समझकर गोविन्दप्रसाद चुप रह गये। बाबा के पास आकर बैठे। इसके बाद जब गोविन्द गीत गाने लगे तब बाबा उठकर बैठ गये और विश्वनाथ ब्रह्मचारी से कहा—''गोविन्द मेरे लिए भोग लाया है, लाओ यहाँ।''

आपना भोग बाबा को खाते गोविन्द के आँखों से अविरल अश्रुपात होने लगा।

* * *

बाबा किसी को मन्त्र नहीं देते थे। आगे चलकर उन्होंने यह भार विश्वनाथ ब्रह्मचारी को सौंप दिया। दिन पर दिन विश्वनाथ ब्रह्मचारी का महत्त्व बढ़ते देख कुछ शिष्य मन ही मन जलने लगे। बाबा को यह रहस्य समझते देर नहीं लगी। एक दिन उन्होंने अपना चमत्कार दिखाया।

नित्य नाव पर बाहर से भोजन की सामग्री आती थी जिसे सभी संन्यासी खाते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि कोई भक्त भोग-सामग्री लेकर नहीं आया। शाम के समय बाबा ने स्नान करने के पश्चात् राम का नाम लेकर गंगाजल-पान किया। विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने भी वैसा ही किया। इस तरह दो दिन उपवास में बीत गये।

संन्यासी शिष्यों ने कहा—''गुरुदेव उपवास कर रहे हैं, यह ठीक नहीं है। हम सब मधुकरी के लिए चलें।''

बाबा ने कहा—''मेरे लिए किसी को चिन्ता करने की जरूरत नहीं। तुम लोगों को जहाँ आराम मिले, वहाँ जा सकते हो।''

विश्वनाथ और सरजू को छोड़कर सभी चले गये। पाँचवें दिन सरजू ने कहा—''प्रभो, मैं कभी विश्वनाथ महाराज पर नाराज नहीं हुआ।''

बाबा ने कहा—''यह बात मैं जानता हूँ। तू एक काम कर। नाव से उतरकर घाट पर बैठ जा। तुझे भीख माँगने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ेगा। पास ही बैठ जायेगा तो खाने लायक रकम-भोजन मिल ही जायगा।''

बाबा के आज्ञानुसार सरजू स्वामीघाट पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद एक महिला आई और उन्हें पूरी और तरकारी दे गई। बाद में बाबा ने सभी को बुलाकर कहा कि अब तुम लोग विश्वनाथ को पहचान गये होगे।

बाबा ने हमें शिक्षा देने के लिए यह खेल किया था, इस बात को समझते ही सभी लोगों ने बाबा के श्रीचरणों में सिर रखते हुए क्षमा-प्रार्थना की।

* * *

पण्डित गोपीनाथ कविराजजी ने हरिहर बाबा के बारे में लिखा है—''इस

दिगम्बर महापुरुष का दर्शन करने के लिए मेरे गुरुदेव श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस जाया करते थे। उन दिनों मैं उनके साथ जाया करता था। योगत्रयानन्द (शिवराम किंकर) भी बाबा से श्रद्धा करते थे। हरिहर बाबा सर्वदा 'शिव-शिव', 'राम-राम' कहा करते थे। काशी और गंगा के प्रति उनकी निष्ठा अटल थी। नित्य शौचादि के लिए वे प्रातःकाल तथा सायंकाल नियमित रूप से गंगा पार कर रामनगर जाया करते थे। जीवन के अन्तिम काल तक इस नियम का पालन करते रहे।

हरिहर बाबा का योगेश्वर प्रभाव मनुष्येतर प्राणियों पर भी था, उसका एक मनोज्ञ उदाहरण दे रहा हूँ—

एक दिन नगवा में शोरगुल मच गया कि काशी-नरेश का एक वृद्ध हाथी पागल होकर रामनगर-क्षेत्र में बड़ा उपद्रव कर रहा है। लोग चिन्तित हो उठे। इसके बाद वह हाथी चिंघाड़ता हुआ नदी में कूद पड़ा। वहाँ से तैरता हुआ वह सीधे तुलसीघाट पर आया जहाँ हरिहर बाबा इष्ट-ध्यान में निमग्न थे। बाबाजी निश्चल और बाह्यज्ञानरहित थे। लोग भय से दूर भाग गये और भयभीत नेत्रों से देखने लगे। सभी लोगों ने भयभीत दृष्टि से देखा कि वह पागल हाथी हरिहर बाबा के पास जाते ही इन्द्रजाल की तरह क्षणभर में शान्त हो गया और आज्ञाकारी नौकर की तरह खड़ा हो गया। लगा, जैसे हरिहर बाबा की प्रेम-महिमा में बन्दी हो गया है, हाथी का पशुत्व दूर हो गया है, वह अपनी सत्ता खो चुका है। इस घटना की कहानी काशी की जनता बहुत दिनों तक कहती रही।

जिस प्रकार पहले तैलंग स्वामी काशीवास करते हुए जनता की दृष्टि में महापुरुष के रूप में गण्य हुए थे, ठीक उसी प्रकार हरिहर बाबा भी लोगों का चित्ताकर्षण करते रहे। यहाँ तक कि तैलंग स्वामी के स्थान की पूर्ति इस शताब्दी में वे ही करते रहे।

कीर्त्तन-पाठ (योगवासिष्ठ और नारायण) उनके सामने नियमित होता रहा। कठोर तपश्चर्या और कृच्छ्र-साधना के कारण हरिहर बाबा का शरीर खराब होता गया। कभी-कभी भक्तों को शरीर छोड़ देने की बात कहा करते थे।

उस समय आपके भक्त कहते थे—"बाबा, आप इच्छामय हैं, स्वतन्त्र ईश्वर-स्वरूप। अगर हम सभी के लिए शुभ और कल्याण चाहेंगे तो अभी काफी दिनों तक रहेंगे।"

इसके उत्तर में वे कहते—"मैंने अपनी सारी इच्छाओं को रामजी के चरणों में समर्पित कर दिया है।" फिर कोमल शब्दों में कहते—"जो निवेदन किया है, क्या उसे वापस लिया जा सकता है?"

भक्तों ने कहा—"आपके आश्रय में हम अत्यन्त निर्भरता के साथ शान्तिपूर्वक विश्राम कर रहे हैं। आप हमें छोड़कर कभी न जायँ।"

उन्होंने उत्तर दिया—"तुम सब जीवभाव छोड़कर रामजी के परम स्वरूप उस परमात्मा की याद को स्मरण करते रहो जो रामजी सभी सृष्टि में ओतप्रोत रूप में विराजमान हैं। सभी के भीतर, सब कुछ के भीतर रामजी का सान्निध्य प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न करो। परमधाम का चिन्तन करो। वहाँ तुम्हारे साथ, मेरे साथ तुम लोगों का कभी किसी समय विच्छेद नहीं रहेगा।"

अन्तरंग सेवकों को एकान्त में बुलाकर उन्होंने कहा—''वृक्ष काफी जीर्ण-शीर्ण हो गया है अर्थात् पुराना हो गया है। इसे अधिक दिनों तक रखा नहीं जा सकता।''

इस बातचीत के साथ उनका उस पार जाकर शौच करना बन्द हो गया। फलतः उनके सामने कसोरा रख दिया जाता था जिसमें वे मल-मूत्र त्याग करते थे। सारी सामग्री विश्वनाथ ब्रह्मचारी बाबा के आज्ञानुसार उस पार ले जाकर फेंक आते थे।

एक दिन रात को बाबा ने विश्वनाथ को जगाकर कहा—''तुझे जो कुछ पूछना या जानना है, मुझसे पूछ ले। मेरा समय हो गया है।''

यह बात सुनते ही विश्वनाथ ब्रह्मचारी फफक-फफककर रोने लगे। बाबा ने कहा—''बेटा, यह शरीर त्याग देने पर भी मैं तेरे शरीर में रहूँगा। इसके लिए अफसोस मत कर।''

दूसरे दिन ब्रह्मचारीजी ने सभी लोगों को समाचार दिया। अधिकांश शिष्य और भक्त आ गये। इस प्रकार एक सप्ताह बीत जाने पर बाबा ने रानी शोबेल तथा महाराज सरगुजा और विशिष्ट लोगों के सामने विश्वनाथ ब्रह्मचारी को अपनी गद्दी पर बैठाया।

माला-चन्दन से विश्वनाथ ब्रह्मचारी का अभिषेक किया गया। बाबा ने कहा—''संसार की भलाई के लिए मैं आज अपनी सम्पूर्ण शक्ति विश्वनाथ को दे रहा हूँ। इसके अलावा और किसे देता? विश्वनाथ के अलावा यह बोझ अन्य कोई सँभाल नहीं सकता।''

इतना कहने के बाद काँपते हाथ को उठाकर बाबा विश्वनाथजी के मस्तक पर हाथ रखते हुए बोले—''मेरा विश्वनाथ, तू राजा विश्वनाथ, तू स्वयं काशी विश्वनाथ है। तू नाना प्रकार के कष्टों को सहते हुए एक साल तक धैर्य धरे रहना। इसके बाद विश्व-शान्ति के लिए काम करना।''

बाद में उसी दिन बाबा ने कहा—''आज रात को यह शरीर छोड़ दूँगा। किसी को कुछ पूछना हो तो पूछ ले।''

१ जुलाई, १६४६ ई० के दिन बाबा ने शरीर त्याग दिया। हरिहर बाबा की तरह अन्य कोई सर्वमान्य महात्मा काशी में नहीं हुआ।

■ ■ ■



साईं बाबा

नानासाहब चान्दोरकर जामनेर में तहसीलदार पद पर कार्य कर रहे थे। एक दिन उनके यहाँ उनकी लाड़ली बेटी मैनाताई आई। उसके आने की सूचना पहले से ही मिल गई थी। असल में वह अपने पिता के यहाँ प्रसव के लिए आई थी। खानदेश में जामनेर एक छोटा-सा गाँव है जहाँ नगरीय सुविधाओं का बड़ा अभाव था। एक अर्से के बाद बेटी के आगमन से जहाँ लोगों में प्रसन्नता थी, वहीं इस बात की चिन्ता थी कि लड़की पराये घर की बहू है, उसकी देखरेख में कोई असुविधा न हो।

धीरे-धीरे प्रसव के दिन करीब आ गये। दर्द बढ़ता गया। प्रसव होने के लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे। अवस्था गम्भीर होने लगी। नानासाहब की चिन्ता बढ़ा, घर के लोग परेशान हो उठे। उन्हें भय हुआ कि कहीं लड़की से हाथ धोना न पड़े।

नानासाहब शिरडी के साईं बाबा के भक्त थे। दोनों इस संकट से मुक्ति पाने के लिए एकाग्र चित्त से उनका स्मरण करने लगे।

शिरडी में बैठे साईं बाबा को तुरत ज्ञात हो गया कि उनका कोई भक्त संकट में है और व्याकुल स्वर में उन्हें स्मरण कर रहा है। अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से उन्होंने सब कुछ जान लिया।

ठीक उसी समय एक साधु खानदेश जाने के लिए तैयारी कर रहा था। उसे बुलाकर साईं बाबा ने कहा—''रामगिरि बुवा, आप खानदेश की ओर जा रहे हैं। एक काम करें। मार्ग में जामनेर में कुछ देर के लिए ठहर जाइयेगा। वहाँ नानासाहब चान्दोरकर नामक एक सज्जन हैं। आपको खोजने में परेशानी नहीं होगी। वे वहाँ के तहसीलदार हैं। उन्हें यह भभूत और आरती दे दीजिएगा।''

रामगिरि बुवा ने विनय के साथ निवेदन किया—''बाबा, मेरे पास इस वक्त केवल दो ही रुपये बचे हैं जो रेल-किराये में समाप्त हो जायँगे।''

बाबा उनकी कठिनाई को समझते हुए हँसकर बोले—''आगे की चिन्ता तुम्हें करने की जरूरत नहीं है। अपने-आप सारी समस्या हल हो जायगी, पर यह भभूत नानासाहब तक पहुँचना जरूरी है।''

रामगिरि बुवा बाबा की अलौकिक शक्ति से अच्छी तरह परिचित थे, इसलिए बिना कोई तर्क किये, दोनों वस्तुओं को लेकर वे स्टेशन की ओर रवाना हो गये। अपने गन्तव्य स्टेशन जलगाँव पर जब उतरे, उस समय रात के दो बज चुके थे। अब इस वक्त आगे पैदल जाना या सवारी की तलाश करना व्यर्थ समझकर वे प्लेटफॉर्म पर आराम करने लगे।

एकाएक उन्हें लगा जैसे कोई उन्हें पुकार रहा है। गौर से सुनने पर उन्होंने सुना—''शिरडी का रामगिरि बुवा कौन है—शिरडी का रामगिरि बुवा कौन है?''

रामगिरि को आश्चर्य हुआ कि इस अपरिचित स्थान में और आधी रात को पुकारनेवाला कौन है? उन्होंने आवाज लगानेवाले व्यक्ति से अपना परिचय देते हुए कहा—''मगर आप कौन हैं? मेरा नाम कैसे जानते हैं?''

इस प्रश्न को सुनकर आगन्तुक व्यक्ति ने कहा—''मुझे नानासाहब ने भेजा है। उन्होंने कहा है कि शिरडी से रामगिरि बुवा आ रहे हैं। रात के वक्त उन्हें यहाँ तक आने में परेशानी होगी। सो तुम ताँगा लेकर चले जाओ। उनका यहाँ जल्द आना आवश्यक है। गाड़ी आने पर आवाज लगाओगे तो तुम्हें मिल जायेंगे।''

चूँकि नानासाहब ने उनके लिए ताँगा भेजा है अतएव रामगिरि तुरत रवाना हो गये। सबेरे के समय ताँगा रोककर ताँगेवाले ने कहा—''बाबाजी, थोड़ा जलपान कर लीजिए।''

ताँगेवाले की शक्ल, दाढ़ी, मूँछें देखकर रामगिरि को सन्देह हुआ कि यह मुसलमान है। भला इसके हाथ का जलपान कैसे कर सकता हूँ। शायद वह व्यक्ति रामगिरि के मन के ऊपापोह को समझ गया—''महाराज, मैं गढ़वाली क्षत्री हूँ, मुसलमान नहीं। यह देखिये, यज्ञोपवीत।''

रामगिरि उसकी बात पर लज्जित हो उठे और फिर बिना संकोच जलपान करने बैठ गये। जलपान करने के बाद पुनः ताँगा जामनेर की ओर चल पड़ा। गाँव की सीमा के

समीप आकर रामगिरि को लघुशंका महसूस हुई। वे नीचे उतरकर कुछ दूर आड़ में चले गये। लौटकर जब आये तो देखा—ताँगे के साथ-साथ ताँगेवाला भी गायब है। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। गनीमत यह रही कि साथ में कोई सामान नहीं था वरना मुसीबत आ जाती।

राह चलते लोगों से पता पूछकर तहसील में आये और वहाँ से नानासाहब के घर आये। उन्होंने बताया कि मैं शिरडी से आ रहा हूँ। साईं बाबा ने आपके लिए भभूत और यह आरती भेजी है।

उस समय घर में मैनाताई की हालत काफी नाजुक थी। नानासाहब के मन में आया कि शायद मेरी बेटी के लिए यह सामग्री बाबा ने भेजी है। तुरंत उन्होंने भभूत को पानी में घोलकर मैनाताई को पिलाया। इसके बाद आरतीवाला कागज लेकर पाठ करने लगे। थोड़ी देर में सूचना आई कि प्रसव हो गया। जच्चा-बच्चा सकुशल हैं।

घबड़ाहट और मानसिक परेशानी के कारण अब तक नानासाहब का ध्यान शिरडी से आये रामगिरि की ओर नहीं गया था। एक बहुत बड़ी मुसीबत के हल हो जाने के बाद जब उनका तनाव कम हुआ तब उन्होंने रामगिरि से पूछताछ की।

रामगिरि ने शिकायत के लहजे में कहा—"आपने बड़ी कृपा की जो आधी रात को स्टेशन पर ताँगा भेजा। वरना मैं यहाँ शायद दोपहर के पहले न आ पाता, मगर आपका ताँगेवाला विचित्र निकला। गाँव के पास आकर न जाने कहाँ गायब हो गया।

नानासाहब ने कहा—"ठहरिये, ठहरिये। यह आप क्या कह रहे हैं? मुझे क्या मालूम कि बाबा ने आपको भेजा है। मैंने किसी ताँगेवाले को नहीं भेजा था। मैं तो अपनी बेटी को लेकर परेशान था। लगता है, यह भी बाबा का चमत्कार था।"

बाद में उस ताँगेवाले की काफी खोज की गई, पर वह जामनेर के इलाके में कहीं दिखाई नहीं दिया।

इसी प्रकार बम्बई में रामलाल नामक एक व्यक्ति रहता था। उसने न कभी साईं बाबा को देखा था और न उनका नाम सुना था। सम्भवत: साईं बाबा को उसकी जरूरत थी। एक दिन उसने स्वप्न में देखा कि एक फकीर उसे अपने निकट बुला रहा है। उसकी समझ में नहीं आया कि यह कौन है, क्यों बुला रहा है? कहाँ रहता है? इसे कभी देखा भी नहीं। बाद में सपना समझकर वह अपने काम में लग गया।

एक दिन एक दुकान में सामान खरीदने गया तो देखा—वहाँ वही चित्र टँगा है जिसे वह स्वप्न में देख चुका है। कुछ देर एकटक चित्र देखने के बाद उसने दुकानदार से पूछा—"यह किसका चित्र है?"

दुकानदार ने कहा—"साईं बाबा का।"

रामलाल ने पूछा—"यह बाबा कहाँ रहते हैं? क्या अभी जीवित हैं?"

दुकानदार ने विस्मय से कहा—"तुमने अभी तक साईं बाबा का नाम नहीं सुना है? अरे, यह बड़े सिद्ध महात्मा हैं। शिरडी में रहते हैं। नासिक के आगे मनमाड़ स्टेशन है न? उसी लाइन में कोपरगाँव स्टेशन है। वहाँ उतरकर किसी से पूछ लोगे तो शिरडी

गाँव का पता बता देगा। बस, चले जाओ। मैं तो कई बार गया हूँ।''

रामलाल ने सोचा—शायद साईं बाबा सिन्धी सन्त हैं। उसी तरह की वेशभूषा है और नाम भी है—साईं बाबा। सिन्धियों में लोग एक-दूसरे को साईं कहते हैं। कई दिनों बाद रामलाल शिरडी आया और बाबा का भक्त बन गया।

* * *

उच्चकोटि के साधक अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति के माध्यम से योग्य शिष्यों को इस तरह बुला लेते हैं। सर्वश्री श्यामाचरण लाहिड़ी, विजयकृष्ण गोस्वामी तथा लोकनाथ ब्रह्मचारी जैसे योगियों ने अपने शिष्यों के साथ ऐसा ही चमत्कार किया था। हठयोग-क्रिया से किसी भी व्यक्ति के मन को चंचल करके बुलाया जा सकता है। जो कार्य यान्त्रिक शक्ति नहीं कर पाती, उसे अतीन्द्रिय-शक्ति कर दिखाती है। परमहंस रामकृष्ण इच्छित व्यक्ति को चुम्बक की तरह आकर्षित कर लेते थे। यहाँ तक कि सही आधार के पीछे वे स्वयं व्याकुल हो उठते थे।

शिरडी के साईं बाबा के बारे में पूर्ण जानकारी कोई प्राप्त नहीं कर सका, जिस प्रकार बाबा रणछोड़दास के बारे में यह पता लगाना कठिन था कि कब, कहाँ उन्होंने जन्म ग्रहण किया था? आखिर चार-पाँच सौ वर्ष तक कैसे जीवित रहे? ठीक उसी प्रकार शिरडी के साईं बाबा के बारे में यह जानकारी प्राप्त नहीं हुई कि वे हिन्दू थे या मुसलमान। वे अक्सर कहा करते थे—अल्लाह रक्षा करेगा। भगवान् तेरा भला करेगा। श्री प्र० सुं० आगासकर ने इस बारे में लिखा है—''साईं महाराज हिन्दू थे या मुसलमान, यह एक पहेली बनी रही। जिन लोगों का ख्याल था कि बाबा मुसलमान हैं, उन लोगों ने बाबा को हिन्दू-ब्राह्मण जैसा आचरण करते देखा है और जो लोग हिन्दू समझते रहे, उन्होंने यवनों जैसा आचरण करते देखा है। किसी को भी उनके जन्मकाल या धर्म का पता नहीं लग सका है। उन्होंने अपने हिन्दू भक्तों को रामनवमी मनाने की आज्ञा दी तो मुसलमानों को उर्स। जन्माष्टमी के अवसर पर स्वयं खड़े होकर मल्ल-युद्ध, नृत्य आदि का आयोजन करते थे। ईद पर मुसलमान आकर उनके निवास-स्थान पर नमाज पढ़ते थे। हिन्दुओं की प्रथा के अनुसार उनका कर्ण-छेदन हुआ था। जिस मस्जिद में वे रहते थे, उसका नाम द्वारकामाई रखा था। वहाँ घण्टा टँगवाया, धूनी सुलगायी और अग्नि-पूजा प्रारम्भ की। चक्की पर आटा पीसना, शंख, घण्टा-घड़ियाल बजाना, भजन, पूजन, जप करना, शास्त्रीय विधि से देवी-देवताओं की पूजा करवाना आदि तो हिन्दू-धर्म के चिह्न हैं। दूसरी ओर उनकी मुसलमानों जैसी वेश-भूषा और भाषा भक्तों में सन्देह उत्पन्न करती थी।

इस बारे में साईं बाबा के जीवितकाल में कई लोगों ने प्रश्न पूछे थे, परन्तु साईं बाबा ने इस रहस्य को कभी प्रकट नहीं किया। यहाँ तक कि उनके निधन के पश्चात् गूढ़ रहस्य को प्रामाणिक ढंग से खोजने का प्रयास किया गया, पर किसी को सफलता नहीं मिली। सन्त कबीर और नामदेव महाराज की भाँति वे भी हिन्दू तथा मुसलमानों को समान रूप से प्यार करते थे।

साईं बाबा को कुछ लोग साईंनाथ कहते थे, इस दृष्टि से उन्हें महाराष्ट्र के नाथ-

सम्प्रदाय का समझा जाता था। शिरडी के समीप नासिक में नाथ-सम्प्रदाय के महान् सन्त गहिनीनाथ रहते थे जिन्होंने सन्त ज्ञानेश्वर के बड़े भाई निवृत्तिनाथ को बीज-मन्त्र दिया था। निवृत्तिनाथ के शिष्य सन्त ज्ञानेश्वर महाराज थे जिनकी समाधि पूना स्थित आलन्दी में है।

* * *

सुश्री काशीबाई कानिटकर का विश्वास था कि बाबा तान्त्रिक हैं और जब काशीबाई बाबा के पास गईं तो उन्होंने कहा—"आँखें खोलकर देखो, मैं असली ब्राह्मण हूँ। सच्चा ब्राह्मण कभी जादू-टोना नहीं करता। इस ब्राह्मण की पवित्र द्वारकामाई में बुरे कर्म करनेवाले प्रवेश नहीं कर सकते।"

बाबा के एक प्रिय भक्त थे—म्हालसापति। इन्होंने भी यही प्रश्न किया था, तब बाबा ने कहा—"मैं ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं आरम्भ में 'पाथरी' में रहता था। उसके पश्चात् मेरी माँ ने मुझे एक फकीर को सौंप दिया।"

साईं बाबा के एक भक्त नानासाहब थे जिनका जिक्र प्रारम्भ में किया गया है। उन्होंने लिखा है कि बाबा जन्म से हिन्दू थे, परन्तु उनके गुरु फकीर थे।

एक बार पाथरी-निवासी एक सज्जन बाबा का दर्शन करने आये थे। उस समय बाबा पाथरी के बारे में उत्सुकता के साथ तरह-तरह के सवाल कर रहे थे। इससे स्पष्ट था कि बचपन में या अन्य समय वे पाथरी में अवश्य रहते थे।

उनके गुरु फकीर थे, इसे बाबा ने कभी स्वीकार नहीं किया, बल्कि यह कहा है कि मेरी माँ ने फकीर को सौंप दिया था जैसे कबीर साहब को नीरू जुलाहे ने पाला-पोसा था। ठीक इसी प्रकार साईं बाबा का पालन-पोषण किसी फकीर के यहाँ हुआ होगा।

अपने गुरु के बारे में बाबा ने एक अद्भुत घटना का जिक्र किया है—"हम चारों सहपाठी जब धर्मग्रन्थों का अध्ययन कर रहे थे तब एक दिन ब्रह्मज्ञान की खोज में एक घने भयंकर जंगल की ओर चल पड़े। मार्ग में एक वनवासी मिला। उसने हम लोगों से कहा—"इस जंगल में आप लोग अपने साथ एक पथ-प्रदर्शक रख लें तभी अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।"

उसने विनम्रतापूर्वक निवेदन करते हुए हमारा यथोचित सत्कार किया। लेकिन हम उसकी उपेक्षा कर जंगल के भीतर चले गये। काफी देर इधर-उधर भटकने के बाद हम पुनः वहीं आये जहाँ हमने उस वनवासी को खड़ा पाया।

उसने पुनः अपनी बातों को कहा—"आप लोग हठ न करें। पथ-प्रदर्शक के बिना इस बियाबान जंगल में आपको सही मार्ग नहीं मिलेगा। भूखा रहने पर कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होता। परमात्मा की प्रेरणा से ही हम मिलते हैं। सामने परोसी थाली को ठुकराना नहीं चाहिए। परोसी हुई थाली अगर सामने आती है तो उसे अपना सौभाग्य समझना चाहिए। अब आप लोग मेरे साथ मेरी कुटिया में चलें और भोजन करके मुझे कृतार्थ करें। इसके बाद अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गन्तव्य मार्ग पर चले जायें।"

मेरे तीनों मित्रों ने उसके इस आमन्त्रण की परवाह नहीं की और आगे बढ़ गये। मैं

भूख और प्यास से व्याकुल हो गया था। मैंने इस बात पर तनिक भी विचार नहीं किया कि मेजबान जंगली छोटी जाति का आदमी है। उसके द्वारा परोसी गई रोटी, दाल, तरकारी भरपेट भोजन किया। उसी क्षण मुझे ऐसा आभास हुआ, मानो मेरा अन्तर्मन दिव्य ज्ञान से दैदीप्यमान हो उठा है। मेरे गुरुदेव भी अकस्मात् मेरे सामने आकर खड़े हो गये हैं। सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा—''मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें मार्ग दिखाता हूँ। लेकिन मुझ पर पूर्ण विश्वास करते हुए मेरी सभी आज्ञाओं का पालन करना पड़ेगा।''

इस शर्त को सहर्ष स्वीकार करते हुए मैं उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। आगे घनघोर भयंकर जंगल मिला। एक गहरे कुएँ के पास आकर गुरुदेव ने मेरे पैर कसकर बाँध दिये और मुझे उस कुएँ में उल्टा टाँग दिया। चार-पाँच घण्टे के बाद गुरुजी कहीं से वापस आये और मुझे बन्धन-मुक्त करने के पश्चात् पूछा—''क्यों, अब कैसे हो?''

मैंने नम्रतापूर्वक कहा—''बहुत अच्छा हूँ। मैं तो आनन्द-सागर में विहार कर रहा था।''

मेरे इस उत्तर से गुरुदेव को प्रसन्नता हुई। उसी समय से मैं ब्रह्मानन्द की समाधि में बैठने लग गया। इस ज्ञान को प्राप्त करने के अन्य मार्ग भी हैं, पर वे सभी नितान्त झूठे एवं मूर्खतापूर्ण हैं। इन मार्गों को बतलानेवाले शिक्षक भी स्वार्थी और छली होते हैं। मेरे गुरु ने मुझे अल्पकाल में ही सरल, सुगम भाषा में आध्यात्मिक ज्ञान का प्रथम पाठ दिया—अन्नमयं ब्रह्मः। परमेश्वर से एकरूप होने के लिए समाधि-स्थिति का मार्ग भी मुझे दिखा दिया। एक सद्गुरु ही हमें मोक्ष का मार्ग दिखा सकता है।

अगर साईं बाबा का यह कथन सही है तो यह स्पष्ट है कि उनके गुरु फकीर नहीं, कोई उच्चकोटि के साधक थे। ब्रह्मानन्द-समाधि केवल भारतीय साधक ही प्राप्त कर पाता है।

श्री आगासकर का कहना है—''श्री साईं बाबा न केवल योगाभ्यास के आदी थे, बल्कि इस विद्या में निष्णात सिद्ध पुरुष थे। शिरडी गाँव से थोड़ी दूर एक वट-वृक्ष के नीचे जो कुआँ है, वहाँ वे हर तीसरे दिन स्नानार्थ जाया करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर योग-विद्या का एक चमत्कार प्रत्यक्ष देखने में आया। स्नान के समय अपना उदर साफ करते हुए उन्होंने अपने पेट की अँतड़ियाँ बाहर निकालीं और उन्हें अन्दर-बाहर साफ करने के पश्चात् पास के जामुन-वृक्ष की शाखा पर सुखाने के लिए लटका दिया। योग-विद्या का यह चमत्कार शिरडी गाँव के अनेक लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से देखा है और उसकी सत्यता के प्रमाण दिये हैं। इस योग-विद्या में 'खण्डयोग' नामक एक अन्य प्रकार है। बाबा इसका प्रयोग भी यदाकदा करते थे। एक बार एक सज्जन बाबा से मिलने आये तो वहाँ का दृश्य देखकर वे घबड़ा गये। बाबा के शरीर के कई अंग खण्डित अवस्था में चारों ओर बिखरे हुए थे। इस दृश्य को देखकर वे बौखलाये हुए पड़ोस में स्थित मुखिया के घर की ओर दौड़े, पर कुछ दूर जाकर वे रुक गये। उन्होंने सोचा कि अगर इस घटना का वर्णन करूँगा तो लोग मुझे पागल समझेंगे। दूसरे दिन जब वे बाबा के निकट आये तो उन्हें स्वाभाविक रूप में पाया। कहा जाता है कि योग-विद्या का ज्ञान तथा आसनों के प्रयोग की दीक्षा बाबा को श्री व्यंकुशा (गोपालस्वामी)

नामक गुरु से प्राप्त हुई थी।''

एक भक्त महिला से बातचीत करते हुए बाबा ने अपने गुरु के बारे में कहा था—''मेरे गुरु अत्यन्त दयालु प्रकृति के महापुरुष थे। मैंने उनकी सेवा अनेक वर्षों तक की है। लेकिन उन्होंने मेरे कान में कोई मन्त्र नहीं दिया। मेरी यह इच्छा सदा बनी रही कि जीवन के अन्तिमकाल तक उनकी सेवा करता रहूँ, किन्तु उनका मार्ग निराला था। वे मुझे अपने पुत्र की तरह प्यार करते थे। किसी को ऐसा गुरु मिलना सौभाग्य की बात है। जब वे समाधिस्थ होकर बैठते थे तब मैं उनके सामने बैठ जाता था। उनके नेत्रों से निकलनेवाली ज्योति से मेरा अन्तःकरण भर जाता। इस प्रकार मुझे ज्ञात हुआ कि गुरु के प्रति निष्ठा कैसे रखी जा सकती है।''

* * *

गाजा, बाजा, बरातियों को लेकर एक बरात कई बैलगाड़ियों में लदकर शिरडी गाँव में आई। बरातियों के ठहरने का इन्तजाम गाँव की सीमा के पास स्थित मन्दिर में किया गया था। गर्मी का मौसम था। गाड़ियों में जुते बैलों को खोलकर पेड़ के नीचे बाँध दिया गया। लोग आराम करने की गरज से मन्दिर के प्रांगण में जाने लगे।

सहसा पुजारी की नजर एक नौजवान की वेश-भूषा पर पड़ी। उसने कड़कती आवाज में कहा—''ए छोकरे, यह हिन्दुओं का मन्दिर है। मुसलमानों का यहाँ प्रवेश वर्जित है।''

सिर पर कफनी बाँधे, चोंगा जैसा ढीला-ढाला बिना बाँहवाला कुर्ता, कन्धे पर रंगीन चादर, कमर में लुंगी तथा हाथ में एक छड़ी लिये एक नवयुवक के पैर मन्दिर की ओर जाते-जाते रुक गये। पुजारी की झिड़की सुनकर उसके चेहरे पर शिकन तक नहीं आई। उल्टे पाँव लौटकर वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया। अपने झोले से चिलम निकालकर सुलफा पीने लगा।

मुख्य सड़क के किनारे शिरडी गाँव बसा हुआ है, इसलिए मन्दिर के आसपास चहल-पहल रहती है। कुछ देर बाद गाँव की ओर से म्हालसापति नामक एक सज्जन मन्दिर की ओर आ रहे थे। एक किशोर युवक को फकीर जैसी वेशभूषा में देखकर वे आकर्षित हुए। कुछ लोगों की आदत बन जाती है जो समदर्शी होते हैं। म्हालसापति ऐसे लोगों में अन्यतम थे जो गाँव में आनेवाले सन्त, फकीरों का स्वागत करते थे। सन्तों की सेवा निरन्तर करने के कारण उन्हें पर्याप्त अनुभव हो गया था। इस युवक के नेत्र और आकृति से निकलनेवाले तेज को देखकर वे चकित रह गये। अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से वे उक्त युवक के पास आये और कहा—''आओ, साईं।''

म्हालसापति द्वारा सम्बोधित यही नाम आगे चलकर विख्यात हो गया। साईंनाथ, साईं महाराज, शिरडी के साईं बाबा आदि नामों से उन्हें स्मरण किया जाता है।

इस आह्वान की उपेक्षा साईं बाबा नहीं कर सके। उनके साथ चले आये और एक नीम-वृक्ष[1] के नीचे अपना आसन जमाया। नीम के वृक्ष के नीचे ही उन्होंने क्यों आसन लगाया, इसकी जानकारी बहुत बाद में लोगों को ज्ञात हुई।

एक बार किसी भक्त ने अपनी उत्सुकता को मिटाने के लिए यही प्रश्न किया था। प्रत्युत्तर में बाबा ने कहा—"यहाँ मेरे गुरु की समाधि है।"

बहुत दिनों बाद उस स्थान की खुदाई होने पर देखा गया कि नीचे एक सुरंग बनी हुई है। भीतर एक समाधि है जिस पर ताजे फूल चढ़े हुए हैं और चारों ओर दीपक की रोशनी है। आगे चलकर यहीं 'गुफा-पादुका' की प्रतिष्ठा की गई।

गाँव में जर्जर स्थितिवाली एक मस्जिद थी। कुछ दिनों बाद साईं बाबा उसमें जाकर रहने लगे। केवल मिट्टी की दीवारें और खपरैल का छाजन था। नीम के पेड़ के नीचे बहुत कम लोग आते थे, पर जब से बाबा यहाँ रहने लगे तब से भक्तों की संख्या में वृद्धि होने लगी। इस स्थान का नाम उन्होंने रखा—'द्वारकामाई'। यहाँ एक घण्टा लगाया गया। राम-नाम का जयघोष किया गया। इसके बाद एक धूनी जलाकर अग्निदेव का विधिवत् पूजन किया गया।

जवानी के दिनों साईं बाबा पहलवान जैसे मालूम पड़ते थे। शिरडी में एक मुसलमान पहलवान रहता था। उसे अपनी ताकत पर घमण्ड था। अकारण लोगों से भिड़ जाता था। एक बार साईं बाबा से उसकी कुश्ती हो गई। बाबा को उसने उठाकर पटक दिया। इस पराजय का साईं बाबा पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अब वे सिर पर कपड़ा बाँधने लगे ताकि उनके घुँघराले बाल छिप जायें। तहमद की तरह लुंगी पहनने लगे। सोने के लिए टाट का प्रयोग करने लगे। यहाँ तक कि अब लोगों से कम मिलने-जुलने लगे। बाबा दिन में गाँव में जाकर मधुकरी माँग लेते और उसे पकाकर खाते रहे। सामानों में कफनी, लुंगी, चिलम और तम्बाकू के अलावा टीन का एक लोटा रखते थे। सब कुछ मिलाकर वे एक प्रकार से अवधूत-प्रकृति के थे और उसी तरह जीवन व्यतीत करते रहे।

भक्तों को उपदेश देने के अलावा कभी-कभी कहते थे—"मेरे प्रिय भक्तों, आप कहीं भी हों, कुछ भी करते रहें, पर एक बात का ध्यान अवश्य रखें कि मैं आपकी सभी भली-बुरी घटनाओं पर नजर रखता हूँ। मुझसे कुछ छिपता नहीं। विश्व की रंगभूमि पर परदा खींचनेवाला मैं एक निमित्तमात्र सामान्य मनुष्य हूँ। मेरे हाथों में यह मायापटल दूर करने की ईश्वरदत्त शक्ति है।"

साईं बाबा के इस कथन का प्रमाण उनके भक्तों को यदाकदा मिल जाता था। शिरडी के बाबा की चमत्कारी कहानियाँ सुनकर एक डॉक्टर तमाशा देखने के लिए अपने एक मित्र के साथ आये। डॉक्टर साहब राम के कट्टर भक्त थे, साथ ही छुआ-छूत का विचार उनमें था। यहाँ आते समय वे यह निश्चय करके आये थे कि उनकी मस्जिद के भीतर नहीं जायँगे और न उनके दिये प्रसाद को ग्रहण करेंगे। सैर करके वापस चले आयेंगे। उनके इस विचार को सुनकर मित्र महोदय ने कहा—"जैसी आपकी इच्छा।"

मित्र महोदय डॉक्टर को लेकर द्वारकामाई आये। मित्र तो बाबा के भक्त थे। उन्होंने बाबा को साष्टांग प्रणाम किया। प्रणाम करने के बाद जब वे उठे तो देखा कि डॉक्टर साहब भी साष्टांग प्रणाम कर रहे हैं। यह दृश्य देखकर वे दंग रह गये।

---

१. आजकल इस स्थान को 'गुरु-पादुका स्थान' कहा जाता है।

बाद में उन्होंने डॉक्टर से पूछा कि ''कहिये, आप तो मस्जिद में जानेवाले नहीं थे और प्रणाम का नाटक क्यों किया?'' डॉक्टर ने कहा—''मस्जिद के दरवाजे के पास खड़े होकर जब मैंने बाबा को देखा तब उनके स्थान पर मैंने अपने प्रभु राम को देखा। ऐसी हालत में बिना प्रणाम किये कैसे रहता? धन्य हो, साईंनाथ बाबा। मुझे क्षमा कर दो। आज मेरे मन का अहंकार दूर हो गया।''

* * *

कई साल बाद प्रयाग में कुम्भ लगने का अवसर आया। शिरडी के लोगों ने सोचा कि इस वर्ष प्रयाग चलकर त्रिवेणी में स्नान किया जाय। इसी उद्देश्य से दासगणू महाराज ने द्वारकामाई में आकर बाबा से अनुमति माँगी।

साईं बाबा ने कहा—''बेकार उतनी दूर जाने से क्या फायदा? 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' कहावत तुम लोगों ने सुनी होगी। अपना प्रयाग तो यहीं है। बस, मन में विश्वास कर लो तो त्रिवेणी-स्नान का पुण्य यहीं प्राप्त हो जायगा।''

साईं बाबा के कथन का प्रभाव पड़ा। दासगणू महाराज ने सिर झुकाकर बाबा के चरणों पर माथा नवाया और तभी चमत्कार हुआ। बाबा के दोनों पैरों के अँगूठों से गंगा-यमुना की धारा प्रवाहित होने लगी। यह दृश्य देखकर उपस्थित सभी लोग चमत्कृत रह गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि आज भक्तों पर बाबा की असीम कृपा हुई है।

साईं बाबा के कारण शिरडी जैसा नगण्य गाँव तीर्थ का रूप ग्रहण कर चुका था। नित्य कई सौ यात्री शिरडी में बाबा का दर्शन करने तथा आशीर्वाद प्राप्त करने आते थे। वास्तव में आज का मानव तनाव में रहता है। मानसिक शान्ति, पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए वह मन्दिरों-मस्जिदों में जाता है, सन्त-फकीरों के यहाँ जाता है। इन सबका उद्देश्य यही रहता है कि उसे कष्टों से मुक्ति मिले। अगर किसी सन्त-फकीर या देवता के दर्शन-पूजन से व्यक्ति लाभान्वित होता है तो उनके प्रति आस्था उत्पन्न होती है, विश्वास होता है और लोग उसके भक्त बन जाते हैं। भारत में ऐसे सन्तों की कमी नहीं रही। अनादिकाल से आज तक ऐसे सन्तों का आविर्भाव समय-समय पर हुआ है।

साईं बाबा एक प्रकार से सन्त कबीरदास की भूमिका निबाहते रहे। वास्तविक सन्त वही है जो मानव में भेदभाव न रखे। सन्त कबीर ने कहा है—

पूरब दिशा हरि को वासा,
पश्चिम अलह मुकामा।
कबीर पोगंड़ा अलह राम का,
सो गुरु पीर हमारा ॥

साईं बाबा का भी सिद्धान्त यही रहा। कोपरगाँव में गोपालराव नामक एक इंस्पेक्टर थे। बाबा की कृपा से उन्हें सन्तान की प्राप्ति हुई। इस खुशी में उन्होंने 'उर्स' मनाने का निश्चय किया। बाबा से अनुमति माँगने पर उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। इसके लिए जिला कलेक्टर के पास पत्र भेजा गया। कलक्टरी में कुलकर्णी नामक एक कर्मचारी ने इसका घोर

विरोध किया, पर बाबा की अलौकिक शक्ति से यह बाधा दूर हो गई। लेकिन बाबा ने एक अनोखा निर्णय दिया—"रामनवमी के दिन यह उत्सव मनाया जाय।"

एक प्रकार से यह एक विचित्र निर्णय था। राम के जन्म-दिन पर 'उर्स' का मनाना दूध में गोबर डालने जैसा था। लेकिन सभी बाबा के कट्टर भक्त थे। बाबा के निर्णय का विरोध करने को कौन कहे, किसी ने अपनी शंका तक प्रकट नहीं की। शिरडी गाँव के सभी लोगों ने सन् १८९७ ई० को यह अद्भुत उत्सव मनाया।

बाबा की आज्ञा से हिन्दू उर्स मना रहे हैं, यह बात सुनकर काफी तादाद में मुसलमान भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए। भजन और जयघोष के साथ, बाबा को पालकी पर बैठाकर जुलूस निकाला गया। बाबा के परम भक्त शक्कर दलाल ने दूसरे दिन हाथों में चन्दन की थालियाँ लेकर 'सन्दल' का भव्य जुलूस निकाला। इस प्रकार प्रतिवर्ष 'उर्स' का उत्सव होने लगा।

आगे चलकर सन् १९१२ ई० में इस उत्सव ने एक नया रूप धारण किया। एक बार कृष्णराव भीष्म शिरडी आये। उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि बाबा ने रामनवमी के दिन उर्स मनाने की परम्परा क्यों चालू की? रामजन्म के दिन राम का उत्सव मनाना चाहिए, ताकि लोग इस दिन का महत्त्व समझ सकें। उन्होंने अपना यह विचार बाबा के भक्तों के सामने रखा जिसे सभी लोगों ने पसन्द किया।

अब लोग बाबा से आज्ञा लेने के लिए आये। सारी बातें सुनते ही बाबा ने अनुमति दे दी। स्थान-स्थान पर बन्दनवार लगाये गये। कृष्णराव भीष्म ने स्वरचित 'श्री रामजन्मोपाख्यान' पाठ करने का निश्चय किया। धूमधाम से राम-जन्म हुआ। चारों ओर गुलाल उड़ाया गया।

साईं बाबा की इन अद्भुत परम्पराओं को देखकर यह मानना पड़ता है कि सन्तों का कोई खास धर्म नहीं होता। वे सभी धर्मों को समान रूप से देखते हैं। साईं बाबा के आविर्भाव के बहुत पहले सन्त दादू से कहा गया था कि अगर तुम मानव की सेवा करना चाहते हो तो किसी सम्प्रदाय को अपना लो। उस सम्प्रदाय के लोग तुम्हें मदद देंगे तभी तुम्हें सफलता मिलेगी। इस पर दादू ने कहा था—

दादू ये सब किसके पन्थ में, धरती अरु असमान,
पानी-पवन दिन-रात का, चन्द-सूर रहिमान।
ब्रह्मा-विश्न-महेस को, कौन पन्थ गुरुदेव,
साईं सिरजनहार तूँ, कहिये अलख अभेव।
महमद किसके दीन में, जबराइल किस राह,
इनके मुर्सद पीर को कहिये एक अलाह।
दादू ये सब किसके ह्वै रहे यहु मेरे मन माँही,
अलख इलाही जगद्गुरु दूजा कोई नाहिं।

केवल सन्त दादू ने ही नहीं, बल्कि अधिकांश समदर्शी सन्तों ने इसी प्रकार के

विचारों को व्यक्त किया है। अधिक दूर क्यों, साईं बाबा के समकालीन बंगाल के बाउल सन्तों ने कहा है—

तोमार पथ ढाकाइयाछे मन्दिरे-मस्जेदे ।
तोमार डाक शुनि साईं, चलते ना पाइ;
रुकाइया दांडाय गुरुते मुर्शेदे ।
डूबाइया याते अंग जुड़ाय, तातेइ यदि जगत पुडाय
बलतो गुरु कोथाय दांड़ाय
तोमार अभेद साधन मरलो भेदे
तोर दुबारेइ नानान ताला, पुरान कोरान तसबी माला
भेख पखइ त प्रधान ज्वाला
कांदेइ मदन मरे खेदे ।
तोमार पथ ढाकाइयाछे मन्दिरे-मस्जेदे

अर्थात् मन्दिरों और मस्जिदों ने तुम्हारा रास्ता ढँक लिया है। हे स्वामी, तुम्हारी पुकार पर मैं चल नहीं पाता, गुरु और मुर्शिद रोककर खड़े हो जाते हैं। जिसमें डूबने से शरीर जुड़ा जाना चाहिए, तर हो जाना चाहिए, उसी से अगर संसार जलने लगे, तो हे गुरु, हम खड़े कहाँ हों? हाय, तुम्हारी 'अभेद-साधना' भेद से मारी गई! तुम्हारे ही द्वार पर ये नाना ताले—पुराण, कुरान, तसवीह, माला इत्यादि लगे हैं। भेख और पक्ष ही तो प्रधान ज्वाला हैं। मदन तो खेद के कारण रो-रोकर मर रहा है।

साईं बाबा के समन्वयवाद का शिरडी पर व्यापक प्रभाव रहा। भारत में सर्वत्र दंगे हुए। महाराष्ट्र भी अछूता नहीं रहा। पड़ोसी जिला नासिक भी कर्फ्यू के आतंक से त्रस्त रहा। दंगों के कारण भारत का बँटवारा हुआ, पर उस दौरान में शिरडी शान्त रहा। दोनों ही सम्प्रदाय के लोगों की श्रद्धा साईं बाबा के प्रति थी।

* * *

सन्त या योगी की प्रसिद्धि तभी होती है जब वह अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से कुछ चमत्कार दिखाता है। भक्तों के कष्टों को दूर करता है और अपने उपदेशों से उत्तप्त मानव को सान्त्वना देता है। साईं बाबा ने समय-समय पर अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति का प्रदर्शन किया है जैसे अन्य अनेक योगियों ने किया था।

एक दिन उनके भक्तों ने रात को उनकी आरती की। दूसरे दिन जब वही लोग बाबा का दर्शन करने गये तब उन्होंने आगत भक्तों से कहा—"दल मैं दक्षिण दिशा में घूमने गया था।"

बाबा की बातें कोई नहीं समझ सका। सभी लोग देखते रहे कि बाबा दिनभर तो उनके साथ रहे। फिर घूमने कब गये? शायद विनोद कर रहे हैं। यह सोचकर किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया।

बाबा सामने बैठे लोगों से बातें कर रहे थे। थोड़ी देर बार दक्षिण दिशा में

रहनेवाला एक व्यक्ति आया और उसने प्रसंगवश कहा—"बाबा कल हमारे गाँव गये थे। आज मैं यहाँ दर्शन करने आया हूँ।"

यह बात सुनकर उपस्थित लोग चकित रह गये। योगीगण कभी-कभी द्विशरीरी रूप धारण कर लेते हैं।

* * *

एक बार बाबा भक्तों से घिरे बैठे थे। द्वारकामाई-भवन में एक दीवार पर एक छिपकली आवाज करने लगी। सहसा एक भक्त के मन में यह शंका उत्पन्न हुई। जिस प्रकार कुत्ते, बिल्ली, सियार के रोने से मुसीबतें आती हैं उसी प्रकार छिपकली का चिल्लाना अपशकुन है। उसने अपने मन की शंका प्रकट कर बाबा से प्रश्न किया—"बाबा, यह छिपकली क्या कह रही है?"

बाबा ने कहा—"अरे भाई, इसकी बहन औरंगाबाद से यहाँ इससे मिलने के लिए आ रही है, इसीलिए यह आनन्द से विभोर होकर खुशी मना रही है।"

इस उत्तर को सुनकर बेचारा भक्त चुप हो गया। भला छिपकली को कैसे मालूम हो गया कि उसकी बहन औरंगाबाद से यहाँ आ रही है। औरंगाबाद क्या पास में है? इस तरह के प्रश्न उसके मन में उठते रहे। बाद में सोचा—शायद बाबा ने परिहास किया है।

थोड़ी देर बाद ताँगे पर सवार एक भक्त बाबा का दर्शन करने औरंगाबाद से आया। अपने थके हुए घोड़े को चारा खिलाने के लिए ताँगेवाले ने चने का बोरा जमीन पर उड़ेलकर झटका। उसमें से एक छिपकली निकली और तेजी से सामने की दीवार पर चढ़ गई। इसके बाद दोनों छिपकलियाँ खुशी से दौड़-धूप करने लगीं। यह दृश्य देखकर प्रश्नकर्त्ता भक्त ही नहीं, सभी लोग आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता प्रकट करने लगे। हमारे साईं बाबा कितने दूरदर्शी हैं, यह समझते उन्हें देर नहीं लगी।

मानव-स्वभाव बड़ा विचित्र है। कोई अर्थ के पीछे परेशान रहता है तो कोई रोग-शोक के पीछे। ऐसी ही परेशानी में कभी-कभी लोगों के मन में वैराग्य की भावना उत्पन्न हो जाती है और निरुद्देश्य घर से निकल पड़ता है। ऐसी घटनाएँ अनेक लोगों के जीवन में होती हैं। ऐसे लोगों में योग्य व्यक्ति को सन्त अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

बालाराम मानकर की मानसिक स्थिति खराब हो गई थी। उन्हें अपनी पत्नी से बेहद प्यार था। सहसा उसके निधन से वे इतने उद्विग्न हो उठे कि सब कुछ छोड़कर शिरडी में बाबा के पास आ गये। बाबा अन्तर्यामी थे। उन्हें रहस्य समझते देर नहीं लगी।

एक दिन बाबा ने बालाराम को बारह रुपये देते हुए कहा—"मच्छिन्दरगढ़ चले जाओ।"

बालाराम बाबा का सान्निध्य छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। बाबा ने देर तक उसे काफी समझाया। उनके प्रबोध-वचन का प्रभाव पड़ा। साथ ही उसे यह बताया कि वहाँ जाकर योग की साधना करो। योग की साधना कैसे करनी चाहिए, इसकी जानकारी दी, ताकि वे इस दिशा में सफलता प्राप्त कर सकें।

अन्त में बाबा के आज्ञानुसार वे मच्छिन्दरगढ़ आकर बाबा की बतायी प्रक्रिया के अनुसार साधना करने लगे। ऐसे भक्तों को गुरु सूक्ष्म रूप में प्रकट होकर अन्य क्रियाएँ बताते हैं। बाबा प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित होकर कभी-कभी निर्देश देते रहे।

अन्त में एक दिन बालाराम ने पूछा—"जब आप नित्य दर्शन देते हैं तब मुझे यहाँ क्यों भेजा? मैं आपके चरणों के पास रहकर सारी जानकारी प्राप्त कर लेता। आपको इस तरह कष्ट नहीं करना पड़ता।"

बाबा ने कहा—"शिरडी में भक्तों के कोलाहल में तुम अपने मन को एकाग्र न कर पाते। साधना के लिए शान्त परिवेश की आवश्यकता होती है। यही वजह है कि मैंने यहाँ तुम्हें भेजा, ताकि तुम्हारी उद्विग्नता दूर हो जाय। केवल यह सोचना कि मैं शिरडी में ही सशरीर रहता हूँ, यह मन का भ्रम है। अब तुम स्वयं देख रहे हो कि मैं यहाँ उपस्थित हूँ। जब भी तुम्हें कोई कठिनाई होगी तब मैं स्वयं उपस्थित होकर तुम्हारी परेशानी दूर कर दूँगा। मेरी बतायी प्रक्रिया का निरन्तर अभ्यास करो।"

इतना कहकर साईं बाबा अदृश्य हो गये। यहाँ भी वे द्विशरीरी रूप में प्रकट हुए थे। मच्छिन्दरगढ़ में एक अर्से तक साधना करने के बाद बाबा के आज्ञानुसार बालाराम घर की ओर रवाना हुआ। पूना स्टेशन पर अपार भीड़ थी। फलस्वरूप उन्हें लाइन में खड़े होकर प्रतीक्षा करनी पड़ी। इतने में एक आदमी उनके पास आया और बोला—"शायद आप दादर जा रहे हैं। मेरे पास दादर तक का टिकट है। मैं इसी गाड़ी से जानेवाला था, पर एक आवश्यक कार्य आ जाने के कारण मैं जा नहीं पाऊँगा। आपको जरूरत हो तो टिकट ले लीजिए।"

बालाराम ने टिकट लेकर देखा, फिर जेब से मनीबैग निकालकर किराया देने के लिए हाथ बढ़ाया तो वह व्यक्ति न जाने कहाँ गायब हो गया था। चारों ओर नजर दौड़ाने पर भी वह नहीं मिला। इस घटना को बाबा की कृपा मानकर उन्होंने बाबा का स्मरण करते हुए प्रणाम किया।

* * *

बाबा के एक भक्त मेघा थे। एक दिन उन्हें झक सवार हुई कि मकर-संक्रान्ति के दिन बाबा को गोदावरी नदी में स्नान कराया जाय। इस प्रस्ताव को सुनकर बाबा ने उपेक्षा दिखाई। लेकिन मेघाजी कम जिद्दी नहीं थे। जब सनक सवार हुई है तब कार्य होना चाहिए। चारों ओर से दबाव पड़ने पर बाबा को स्वीकृति देनी पड़ी। मेघाजी स्नान-सन्ध्या करने के बाद घड़ा लेकर गोदावरी से पानी लेने चल पड़े। आना-जाना मिलाकर बत्तीस मील का सफर था। मेघाजी कर्मठ थे। पानी लेकर लौटे। बाबा को एक छोटी चौकी पर बैठाया गया।

एकाएक बाबा ने मेघा का हाथ पकड़ते हुए कहा—"मेघा, मेरे शरीर में सिर ही मुख्य है। केवल मेरा सिर भीगे, बाकी बदन सूखा रहे।"

मेघाजी ने सोचा—ऐसा कैसे हो सकता है? लेकिन वे अपने मूड में थे। बोले—"ठीक है, बाबा। ऐसा ही होगा।"

इतना कहने के पश्चात् मेघाजी ने घड़े का सारा पानी बाबा के सिर पर उड़ेलते हुए कहा—''हर हर महादेव शम्भो।''

घड़े को जमीन पर रखने के बाद मेघाजी ने जब बाबा की ओर देखा तो चौंककर देखता ही रह गया। बाबा का केवल सिर भीगा था। शेष अंगों पर पानी की एक बूँद भी नहीं थी। उसे विस्मित देखकर बाबा मुस्कराने लगे। भक्त की इच्छा पूरी हुई और बाबा ने कौतुक भी दिखाया।

* * *

विनायकराव बाबा के पुराने भक्त थे। नौकरी के सिससिले में बीकानेर गये तो वहीं व्यस्त हो गये। सहसा एक दिन स्वप्न में बाबा ने दर्शन दिया। उलाहना देते हुए बोले—''क्या मुझे भूल गया?''

विनायकराव ने बाबा के चरणों पर सिर नवाते हुए कहा—''भला कोई बालक अपनी माँ को भूल सकता है?'' इतना कहकर वे अपने बगीचे में गये और वहाँ से 'बालपापड़ी' की सेम तोड़कर लाये। ज्योंही बाबा के चरणों में उसे अर्पित किया त्योंही उनकी नींद खुल गई।

विनायकराव समझ गये कि बाबा मुझे भूले नहीं। जरूर याद की होगी। व्यक्तिगत कार्यवश वे ग्वालियर गये हुए थे। वहीं एक ऐसे सज्जन मिले जो बाबा का दर्शन करने के लिए शिरडी जा रहे थे। उन्हें बारह रुपये देते हुए कहा कि दो रुपये में बालपापड़ी की सेम तथा सीधा-सामग्री खरीद लीजिएगा। शेष दस रुपये बाबा को दक्षिणा के रूप में दे दीजिएगा।

वह व्यक्ति शिरडी पहुँचा और सारा सामान खरीदने के बाद बालपापड़ी सेम की तलाश करने लगा, पर कहीं दिखाई नहीं दी। कोपरगाँव आने पर देखा—एक महिला की सब्जी की टोकरी में बालपापड़ी की सेम है। उसने तुरत खरीद ली। शिरडी पहुँचकर निमोणकरजी को सारी सामग्री दे दी। निमोणकरजी ने भोजन तैयार कर विनायकराव का नैवेद्य बाबा को अर्पित किया। विनायकराव के मित्र तथा अन्य लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस दिन बाबा ने केवल सेम की तरकारी ग्रहण की, अन्य सामग्रियों को स्पर्श तक नहीं किया।

* * *

बाबा के एक भक्त थे—दामूअण्णा। यह वही व्यक्ति हैं जिन्होंने रामनवमी का उत्सव प्रारम्भ किया था। इन्होंने एक बार बाबा को पत्र लिखा कि मैं रूई का सट्टा खेलना चाहता हूँ। आप कृपया आज्ञा दें। बाबा ने लिखवाया—''जुए का मार्ग पतन का मार्ग है। परमेश्वर की दी हुई आधी रोटी में सन्तोष करो।''

दामूअण्णा ने सोचा कि बाबा से पत्र-व्यवहार करने की अपेक्षा प्रत्यक्ष रूप से बातचीत करना उचित होगा। दामूअण्णा की इच्छा थी कि वह लखपति बन जाय। यहाँ आने पर सहसा बात छेड़ने का साहन नहीं हुआ। बातचीत के सिलसिले में दामूअण्णा ने कहा—''रूई के बदले मैं अनाज का व्यापार करना चाहता हूँ।''

बाबा ने इस प्रश्न का विचित्र उत्तर दिया—''एक रुपये का पाँच सेर खरीदकर

सात सेर के भाव से बेचोगे क्या?''

दामूअण्णा को समझते देर नहीं लगी कि अनाज के रोजगार में घाटा होनेवाला है, इसीलिए बाबा ऐसा कह रहे हैं।

कुछ ही दिनों बाद दामूअण्णा ने देखा कि उसके सभी व्यापारी मित्र रोना रो रहे हैं। वर्षा अच्छी होने की वजह से अनाज का भाव गिर गया था। सभी को घाटा लगा। यहाँ तक कि रूई के सट्टे में सटोरियों का दिवाला निकल गया।

कभी-कभी सामान्य व्यक्ति अपने अहं का प्रदर्शन करने सन्तों के पास आ जाते हैं। बेचेंगे धनिया, जीरा और बातें करेंगे—ब्रह्मज्ञान की। सन्तों के समीप आकर भी सौदेबाजी करते हैं। इस प्रकार एक व्यापारी सज्जन बाबा के पास आये और उन्होंने कहा कि मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म देखना चाहता हूँ।

बाबा मन ही मन मुस्कराये। बोले—''ठीक है, बैठो।'' कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद उन्होंने एक बालक से कहा कि जाओ, अमुक मारवाड़ी से पाँच रुपये उधार माँग लाओ।

बालक ने वहाँ से वापस आकर कहा—''मारवाड़ी घर पर नहीं हैं।''

बाबा ने एक दूसरे व्यापारी के पास भेजा। वहाँ से खाली हाथ आया। इस प्रकार तीन-चार जगहों से वह वापस आया। रुपये कहीं नहीं मिले। दरअसल बाबा को रुपयों की जरूरत नहीं थी। वे ब्रह्म दिखाने की भूमिका बना रहे थे। सामने बैठे व्यापारी की जेब में काफी रकम थी। वह चाहता तो दे सकता था, पर उसे अपनी रकम से मोह था।

वह बाबा के नाटक और बातचीत से बोर हो गया था। उसने कहा—''अब आज्ञा दीजिए बाबा। काफी देर हो गई। मुझे जाना है। आप ब्रह्म दिखा रहे थे, पर मैं देख नहीं पाया।''

बाबा ने कहा—''मैंने तुम्हारे सामने इस बालक को इतना दौड़ाया, फिर भी तुम्हें ब्रह्म दिखाई नहीं दिया? ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए पाँच वस्तुओं का त्याग करना पड़ता है। पंचप्राण, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और देहाभिमान। तभी ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। तुम्हारे जैसा व्यक्ति जब पाँच रुपये का मोह त्याग नहीं सकता तब ब्रह्मज्ञान क्या प्राप्त करेगा? ब्रह्मज्ञान क्या कोई साधारण वस्तु है जो पैसे से खरीद लेगा। मुमुक्षु भक्त जब सब कुछ त्यागकर साधना-तपस्या करता है तब उसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। इतने बड़े व्यापारी होकर जब तुम पाँच रुपये का मोह त्याग नहीं सके तब ब्रह्मज्ञान क्या प्राप्त करोगे?''

* * *

'ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती' के अनुसार गोदावरी नदी कोपरगाँव के निकट बहती है। इस नदी से नौ मील दूर शिरडी गाँव है। साईं बाबा के कारण यह नगण्य गाँव सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध हो गया। नित्य कई सौ यात्री, भक्त बाबा की समाधि दर्शन करने आते हैं। यहाँ के स्थानीय वृद्धों का कहना है कि जवानी के आलम में बाबा अत्यन्त सुन्दर तथा तेजस्वी थे। उनका स्वभाव बड़ा उग्र था। बड़े व्यक्तियों की तनिक भी परवाह नहीं करते थे। गरीबों के लिए वे बड़े कृपालु थे। कथा-कीर्तन के बड़े प्रेमी

थे। द्वारकामाई में जब वे धूनी के सामने ध्यान लगाकर बैठते थे तब पूर्ण-ब्रह्म-अवस्था में रहते थे। उनकी आँखों से निरन्तर ज्योति निकलती थी। किसी के मन की बात वे तुरत समझ जाते थे। पीड़ितों की सेवा करने में हमेशा तत्पर रहते थे। उन्हें दीप जलाकर प्रकाश करने का विचित्र शौक था।

एक बार मजेदार घटना हुई थी। बाबा नित्य दुकानदारों से तेल मँगवाते और द्वारकामाई में मिट्टी के अनेक दीपक जलाते थे। कुछ दिनों बाद दुकानदारों ने निश्चय किया कि अब बाबा को तेल नहीं देंगे। उस दिन बाबा तेल माँगने निकले तो किसी ने नहीं दिया। किसी को बिना कुछ कहे वे वापस चले आये। कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहने के बाद एकाएक उठे और सभी दीपकों में रूई की वर्त्तिकाएँ बनाकर रख दीं। कनस्तर में जितना तेल था, उसमें पानी मिलाकर पी गये। फिर उसी कनस्तर में पानी डाल दिया। उस पानी को लेकर तमाम दीपकों में डालने लगे। सभी दीपक पानी से जलने लगे।

तेल के स्थान पर पानी से बत्ती जलते देख दुकानदारों के होश उड़ गये। लोगों को अपने व्यवहार पर बड़ा पश्चाताप हुआ। इस घटना के बाद से सभी दुकानदार पुनः बाबा को तेल देने लगे।

बाबा की आज्ञा लेकर नागपुर के एक धनाढ्य ने शिरडी में एक मन्दिर बनवाया। उसकी इच्छा थी कि इस मन्दिर में श्रीकृष्ण की मूर्ति स्थापित की जाय। लेकिन उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी। बाबा ने कहा कि इस भवन में मैं रहूँगा। चूँकि इस मन्दिर का निर्माण बूटी साहब ने किया था, इसलिए इसे बूटी का मन्दिर कहा जाता है।

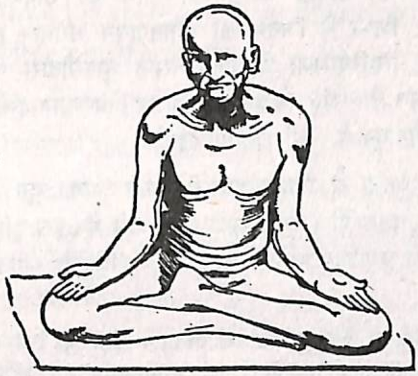
काल की घटना विचित्र होती है। राम, कृष्ण, बुद्ध आदि भी काल के हाथों मुक्ति नहीं पा सके, फिर सन्त-महात्मा कैसे पाते? सन् १९१७ की विजयदशमी से लगभग पन्द्रह दिन पूर्व एक दुर्घटना हो गई। द्वारकामाई में झाड़ू लगानेवाले एक बालक से वह ईंट गिरकर टूट गई जिस पर सिर रखकर बाबा सोते थे। उस समय जितने लोग मौजूद थे, उन लोगों ने इसे महत्त्व नहीं दिया। बाबा जब बाहर से घूमकर आये तब वे बड़े दुःखी हो गये। उन्होंने कहा—"केवल ईंट नहीं टूटी है। वह मेरी जीवनसंगिनी थी। उसी को लेकर वर्षों तक मैं आत्मज्ञान के प्रयोग तथा ध्यान करता रहा। वह ईंट मुझे प्राणों से अधिक प्यारी थी।"

साईं महाराज समझ गये कि अब उनका अन्तिम समय आ गया है। उन्होंने बझे नामक भक्त को 'राम-विजय' नामक ग्रन्थ पाठ करने का आदेश दिया। एक बार समाप्त होने पर पुनः पाठ करने को कहा। इस प्रकार चार बार पाठ हुआ। अपने निधन के तीन-चार दिन पूर्व उन्होंने अपना घूमना-फिरना बन्द रखा था। एक दिन उन्होंने कहा—"आज मेरा जी घबरा रहा है। मुझे जल्द बूटी की हवेली ले चलो।"

तुरत आज्ञा का पालन किया गया। बयाजी की गोद में सिर रखकर वे लेट गये। नानासाहब ने उनके मुख में गंगा-जल छोड़ा।

साईं बाबा के निधन का समाचार आग की तरह चारों ओर फैल गया। अगणित भक्त आने लगे। चारों ओर आँसुओं की बाढ़ आ गई। जिस व्यक्ति के कारण शिरडी को गर्व था, आज वह अनाथ हो गया था।

■ ■ ■



रणछोड़दास महाराज

भारत सन्तों का देश है। यहाँ न जाने कितने दीर्घायुवाले सन्त हो गये हैं, उनके बारे में सामान्य लोगों को बहुत कम जानकारी है। स्वामी विशुद्धानन्द के गुरुदेव की उम्र १२०० वर्ष से अधिक है। वे आज भी हिमालय के ज्ञानगंज में हैं। योगी वरदाचरण ने काशी में रहनेवाले सन्त का उल्लेख किया है जो दाराशिकोह के गुरु रहे। अब उनका यश:शरीर है या नहीं, पता नहीं। सिद्धयोगी तैलंग स्वामी का जन्म सन् १६०७ ई० में हुआ और वे परलोकवासी हुए १८८७ ई० में। लगभग २८० वर्ष तक वे जीवित रहे।

इसी प्रकार बाबा रणछोड़दास दीर्घायुप्राप्त सन्त रहे हैं। यद्यपि वे अपनी उम्र तथा साधना के बारे में पूछने पर भी विशेष नहीं बताते थे, तथापि उनके कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उनका जन्म शाहंशाह अकबर के शासन के पूर्व हुआ था।

अपने सम्प्रदाय के बारे में आपका कहना है—"हमारा श्री-सम्प्रदाय है। हमारे इष्ट श्री रामचन्द्र महाराज हैं। श्रीनाथ मुनिजी महाराज के शिष्य पुण्डरीकाक्षजी थे। इनके शिष्य राम मिश्रजी हुए। इनके शिष्य यामुनाचार्यजी थे (रामानुजाचार्य के गुरु)। ये श्रीनाथ मुनि महाराज के पौत्र थे। इनके शिष्य पूर्णाचार्य परांकुशजी हुए। इनके शिष्य रामानुजाचार्य थे। रामानुजाचार्य की १२वीं पीढ़ी में राघवानन्दाचार्यजी हुए। इनके शिष्य रामानन्दाचार्य हुए। इसी बीच एक घटना के कारण श्री-सम्प्रदाय में दो सम्प्रदाय हुए—श्री रामानन्द-सम्प्रदाय और श्री रामानुज-सम्प्रदाय। रामानन्दी सम्प्रदाय को वैरागी-सम्प्रदाय भी कहा जाता है। इनका सिद्धान्त है—

जाति-पाँति पूछे नहिं कोई ।
हरि को भजै सो हरि का होई ॥

उन दिनों हिन्दुओं में ऊँच-नीच का भाव उग्र रूप में था। इस प्रथा को समाप्त करने के लिए रामानन्दी सम्प्रदाय ने कमर कस ली थी। उन्हें यह देखकर दुःख हुआ कि उच्चवर्ग की उपेक्षा के कारण निम्नवर्ग के लोग तेजी से मुसलमान बनते जा रहे हैं। अपने सम्प्रदाय में बिना भेदभाव के सभी लोगों को रामानन्दी सम्प्रदाय ने स्थान दिया।

रामानन्दजी के १३ प्रमुख शिष्य थे। इनमें श्री अनन्तानन्दजी प्रधान थे। अनन्तानन्दजी के १२ शिष्य थे जिनमें श्री पतितपावन भगवान् तथा नरहरिदास की ख्याति अधिक हुई। नरहरिदासजी के शिष्य सन्त तुलसीदास थे। ज्ञातव्य रहे कि अनन्तानन्दजी का निधन वि० सं० १५३० में हुआ था। अनन्तानन्दजी महाराज रणछोड़-दास के दादागुरु थे और गुरु थे—श्री पतितपावनजी।

अपने गुरु की आज्ञा से रणछोड़दासजी अपने काका गुरु नरहरिदास के साथ गलता (जयपुर) से जगन्नाथजी (पुरी) यात्रा करने गये थे। इस दृष्टि से रणछोड़दासजी १५वीं शताब्दी के सन्त प्रमाणित होते हैं जो भारत के विभिन्न स्थानों में जनता-जनार्दन की सेवा करते रहे।

वि० सं० १५२० में जब गुजरात में अकाल पड़ा था तब पतितपावन महाराज अपने काका गुरुओं कबीरदास, धनाजी, रैदास, पीपाजी के साथ काम करते रहे।

रणछोड़दासजी के अग्रज गुरुभाई श्री कीलकरणजी का काल १५६० ई० के पूर्व का है। आमेर-नरेश मानसिंह कीलकरणजी के यहाँ सत्संग में भाग लेते रहे।

एक बार रणछोड़दासजी से एक भक्त ने प्रश्न किया कि आपकी कितनी उम्र है? प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा—"उम्र के बारे में क्या बतलाऊँ? इससे क्या लाभ होगा? और न बताने पर कौन-सी हानि होगी? तुम्हारे मन में जो आये, उतनी समझ लो।"

भक्त ने अपना अन्दाजा सौ वर्ष बताया तो उन्होंने कहा—"मेरा अनुभव सुनो। १०० वर्ष तो क्या मैंने २५०, ३००, ५००, ७०० वर्ष आयुवाले महात्माओं के दर्शन किये हैं। जिन दिनों मैं काश्मीर में रहता था, उन दिनों पतितपावनजी भगवान् के परम स्नेही सिद्ध सन्त श्री बनवारीदासजी महाराज इस कोटि के सन्त थे। शतकुम्भा पर्वत की दो मील की ऊँचाई पर उनकी तपोभूमि थी। महाराजजी के पास हमेशा दो सिंह पालतू बिल्ली की तरह बैठे रहते थे।"

एक भक्त ने पूछा—"आपकी साधना-भूमि कहाँ है?"

रणछोड़दासजी ने कहा—"सर्वप्रथम गलताजी है। यह स्थान जयपुर नगर से ८-९ मील दूर है। बाद में काश्मीर। पुष्करराज तीर्थ में मैं बहुत दिनों तक था। ध्येयसिद्धि वहीं हुई है।"

दूसरे भक्त ने पूछा—"आप राजकोट (गुजरात) में कब आये?"

रणछोड़दासजी—"मेरा ऐसा ख्याल है कि सन् १८५७ के गदर के दिनों पहले-

पहल आया था। उन दिनों यह स्थान देहात जैसा था। सिहोर के पास नानासाहब पेशवा गुप्त वेश में रहते थे। मैं उनसे मिला था। सन्-संवत् ठीक से याद नहीं, पर मैं ४०-४५ साल अनसूया में भी था तब विक्टोरिया की ओर से ढिंढोरा पिटवाया गया था कि अब हिन्दुस्तान का कारोबार ब्रिटिश राजसत्ता ने सँभाल लिया है। इन्हीं दिनों स्वामीनारायण-सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री सहजानन्द स्वामीजी के गुरुदेव श्री रामानन्द स्वामीजी विप्लव के ४०-४५ साल पहले तथा उससे २५ साल पहले सहजानन्द स्वामीजी साकेत पधार गये थे। रामसनेही-सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री रामचरणजी महाराज रामानन्द स्वामी से पहले जा चुके थे। रामसनेहीजी राम-राम कहते थे, सीताराम नहीं कहते थे। वे केवल राम के सनेही थे, इसीलिए रामसनेही कहलाये।''

एक भक्त ने पूछा—''काश्मीर में आप किस जगह थे?''

महाराजजी—''रसायणी गुफा में, जो श्रीनगर से ७०-८० मील दूर है।''

'श्री गुरुदेव की सन्निधि में' नामक ग्रन्थ की लेखिका कुमारी कुमुदिनी परमानन्द पजवाणी ने महाराजजी से एक बार उनके जीवन के बारे में प्रश्न किया था। प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा—''तुम मेरे बारे में जानना चाहती हो और बार-बार पूछती हो, पर क्या बताऊँ? पूर्वाश्रम की बातें बताना पूर्वजन्म की बातें जैसी लगती है। यह शरीर महाराष्ट्रीय देशस्थ ब्राह्मणकुलोत्पन्न है। व्हाड़ के अमरावती जिले में वायफल नामक गाँव मेरी जन्मभूमि है। पिता पुलिस के महकमे में थे। मेरे तीन बड़े भाई और एक बहन थी। बचपन में दो पुस्तकें वायफल के स्कूल में पढ़ी थीं। इसके बाद पास के नाचन नामक गाँव के एक स्कूल में एक पुस्तक पढ़ी थी। नाचन गाँव में दो बड़े भाई बुक बाइण्डिग का काम करते थे। पिताजी अपराधियों को कड़ी सजा देते थे। इससे माँ को बहुत कष्ट होता था। एक बार ऐसी घटना के समय माँ सामने आ गई तब पिताजी के द्वारा माँ का भयानक अपमान हुआ।

''इससे मेरे मन को चोट पहुँची। मैंने घर छोड़ दिया। उन दिनों मेरी उम्र नौ साल, चार महीने थी। माँ धार्मिक थी। परिवार ऋग्वेदी था। जब मैं साढ़े-सात वर्ष का था तब यज्ञोपवीत हुआ था। माँ तथा पिताजी नित्य सन्ध्या-पूजन आदि नियमपूर्वक कराते थे। बराबर पूछते कि सन्ध्या-पूजन किया? जब तक सन्ध्या-पूजन नहीं कर लेता था तब तक भोजन नहीं मिलता था।

''घर से चलकर मैं जयपुर आ गया। मार्ग में नाना-संन्यासियों ने मुझे आश्रय दिया। महन्तजी ने ऊँट, बैल, गाय आदि चराने का काम मुझे सौंपा। इधर मैं महन्तजी से बार-बार दीक्षा देने का आग्रह करता। मेरा मन बचपन से ही योगी बनने का था। आगे चलकर मुझे मालूम हो गया कि महन्तजी को योग का ज्ञान नहीं है, अतएव यहाँ कुछ मिलनेवाला नहीं है। फलतः एक दिन इस जमात से भाग निकला। पर दो-तीन नागा मुझे पकड़ लाये। अब मेरे ऊपर पहरेदारी होने लगी, ताकि पुनः भाग न पाऊँ।

''ठीक इन्हीं दिनों श्री पतितपावन भगवान्‌जी का दर्शन धौंसा ग्राम में हुआ। आपने मुझे देखते ही कहा—'तुम गलत जगह फँस गये हो। यहाँ रहने पर जीवन का

कल्याण नहीं होगा। अच्छा होगा कि घर वापस चले जाओ। अगर यहाँ से छुटकारा पाना चाहते हो तो मेरे पीछे-पीछे चले आओ। बिलकुल निर्भय होकर। नागा लोग तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेंगे। एक बार यहाँ से छुटकारा पा जाओ तो ठीक होगा। इसके बाद तुम्हारी जो इच्छा हो करना। मेरे साथ चलना या घर वापस चले जाना।'

''श्री पतितपावनजी की अभय-वाणी सुनकर मैं उनके चरणों पर गिर पड़ा और रोने लगा। मैंने कहा कि मैं आपके साथ चलना चाहता हूँ। आपकी शरण में रहना चाहता हूँ। तब उन्होंने कहा—'यह तो खुशी की बात है। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में था। अब तुम मेरे साथ चले आओ।'

''इतना कहने के बाद वे मेरा हाथ पकड़कर चल पड़े। महन्तजी तथा उनके नागा शिष्य देखते रह गये। कोई कुछ नहीं कर सका। आपके साथ गलता आश्रम में आ गया। आपके प्रथम दर्शन से ही मेरे मन में अपूर्व शीतलता उत्पन्न हो गई। माँ के समान प्रेम तथा वात्सल्य प्राप्त हुआ। गलता में आपने मेरा पंच-संस्कार किया। तिलक-कण्ठी धारण कराई। साधन-नियम बताये और बड़ी कृपा करके अपनी सेवा तथा सन्निधि में रख लिया। साधु-संस्कार से मैं यजुर्वेदी हूँ।''

कुमारी कुमुद ने उनके जीवन के बारे में लिखा है—''श्री गुरुदेव पौने-तीन गज की सफेद पापलीन लुंगी पहनते हैं। काफी पहले टाट पहनते थे। बाद में किसी भक्त ने अपने हाथ से बनाकर खद्दर की लुंगी पहनायी थी। वे सिलाई किया हुआ कोई वस्त्र धारण नहीं करते। स्वेटर तक नहीं। बाहर जाते समय शाल ओढ़ लेते हैं। खड़ाऊँ या रबड़ की स्लीपर भी नहीं पहनते। यज्ञोपवीत, तुलसी की कण्ठी और चश्मा जरूर पहनते हैं। ऊनी कम्बल का आसन अधिक पसन्द करते हैं। टाट में नारियल की जटा भरकर गद्दी-तकिये का प्रयोग करते हैं। खान-पान में काँच के नये या तपे बरतन अथवा पत्तलों का प्रयोग करते हैं। भोजन दिन में दो बार करते हैं। सबेरे ८॥ से ९ के भीतर तथा शाम को ५ से ५॥ के भीतर कर लेते हैं। आहार में सूखी रोटी, उबली सब्जी या मूँग की दाल, गेहूँ की दलिया नमक डालकर स्वयं बनाते हैं। मसाले में सेंधा नमक, जीरा, काली मिर्च और अदरक लेते हैं। दूध, चाय, कॉफी, फल, मेवा, घी, तेल आदि नहीं लेते। फलों में पपीता जरूर पसन्द करते हैं।

भोजन के पूर्व दोनों वक्त स्नान करने की आदत है। प्रातःकाल तीन, सवा तीन बजे गरम पानी से स्नान करने के बाद आसन पर बैठते हैं। तीन घण्टे पश्चात् साढ़े-छः बजे नियम से उठते हैं तब लोगों को दर्शन देते हैं। शाम को पौने-पाँच बजे भोजन बनाकर खाते हैं और बाद में नियम पर बैठते हैं। रात को नौ या साढ़े-नौ बजे नियम से उठते हैं तब लोगों को दर्शन देते हैं। दोनों वक्त सन्ध्या-पूजन अवश्य करते हैं। गुरुदेव की ऊँचाई ५ फुट २॥ इंच और वजन १२१ पौण्ड है।

''श्री गुरुदेव हिन्दी बोलते हैं। वैसे उर्दू, बंगला, मराठी, संस्कृत, पाली, फारसी, पश्तो, अंग्रेजी, मराठी, ब्रजभाषा तथा गुजराती जानते तथा बोलते हैं।''

श्री रणछोड़दासजी के बारे में जानकारी इतनी ही है। अब उनकी योगविभूति

घटनाओं को बताना आवश्यक है। यों महाराजजी का कहना है कि मैं चमत्कार पर विश्वास नहीं करता। मुझे इससे घोर नफरत है। फिर भी सन्तों के अनजाने में कुछ-न-कुछ घटनाएँ हो जाती हैं। स्वयं रामकृष्ण परमहंस भी योग-विभूतियों को विष्ठा कहा करते थे। केवल कुछ लोग कभी-कभी योग-विभूतियों का प्रदर्शन अवश्य करते रहे।

कुमारी कुमुदिनी ने अपने दो अनुभवों का उल्लेख किया है। इस तरह की घटनाएँ योगियों द्वारा सम्भव हैं।

ज्ञातव्य है कि चित्रकूट स्थित जानकी कुण्ड के सामने महाराज का नेत्र-शिविर कैम्प है। इन पंक्तियों के लेखक ने उस शिविर को देखा है। जब वहाँ ऑपरेशन का कार्यक्रम होता है तब सड़क पर अनेक दुकानें सजती हैं, सद्गुरु ट्रस्ट की जीपें दौड़ती हैं और कई हजार लोग आपरेशन के लिए आते हैं।

घटना उन दिनों की है जब महाराजजी अपने शिष्यों तथा भक्तों के साथ चित्रकूट के समीप जानकी कुण्ड स्थित अपने पड़ाव पर थे। लोगों की राय हुई कि अनसूया आश्रम का दर्शन किया जाय। महाराज के नेतृत्व में काफिला चल पड़ा। महाराजजी की प्रिय शिष्या कुमुदिनी भी साथ ली। उससे उन्होंने कहा कि तेरे लिए पालकी मँगवाई है। तू उसमें बैठ जा। हम लोग तेरे पीछे-पीछे चलेंगे।

कुमुदिनी राजी नहीं हुई। बोली—''मैं भी आप लोगों के साथ पैदल चलूँगी।''

महाराज ने कहा—''तेरे पैर में गठिया का दर्द है और पाँच दिन का सफर है। तू डोली में बैठ जा।''

''नहीं गुरुदेव। ये लोग जल्दी-जल्दी ले चलेंगे। मैं अकेली दूर चली जाऊँगी। मुझे बहुत डर लग रहा है। मैं पालकी में नहीं जाऊँगी बल्कि पैदल चलूँगी।''

''तुम्हें चाहे कितना भी डर क्यों न लगता हो और कुछ भी हो, पर जाना तुम्हें पालकी पर ही है। तुम घबराओ नहीं। मैं प्रत्येक आधे घण्टे बाद तुमसे मिलता रहूँगा। सभी पालकीवाले मेरे परिचित हैं।''

इस आश्वासन के बाद कुमुदिनी पालकी पर सवार हो गई। दरअसल वह पालकी ढोनेवालों की शक्ल देखकर डर गई थी। स्थानीय लोग कोल, भील और निषाद थे जो देखने में भयानक लगते थे।

काफिला चल पड़ा। महाराजजी दिये गये अपने आश्वासन के अनुसार प्रत्येक आधे घण्टे बाद कुमुदिनी की पालकी के पास जाकर उसे ढाढ़स देते रहे। वह प्रसन्न चित्त से यात्रा करती रही। यात्रा-समाप्ति के बाद वह पैदल चलनेवालों से जब यह कहने लगी कि गुरुदेव मेरी पालकी के पास हर आधे घण्टे बाद बराबर दर्शन देने आते रहे और बराबर दस मिनट तक साथ-साथ चलते हुए बातें करते रहे तब किसी को विश्वास नहीं हुआ।

साथ के लोगों ने कहा—''गुरुदेव तो हमारे साथ बराबर चलते रहे। एक मिनट के लिए भी हमसे अलग नहीं हुए। यह तुम्हारे मन का भ्रम है।''

इस बात पर कुमुदिनी को आश्चर्य हुआ। उसने गुरुदेव से इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा—"तुम्हारी और इनकी दोनों की बातें ठीक हैं। यह सत्य है कि मैंने इन लोगों का साथ नहीं छोड़ा और यह भी सत्य है कि हर आधे घण्टे बाद दस मिनट तक तुमसे मुलाकात करते हुए मैं बातें करता रहा। यह कोई विशेष बात नहीं है। दो शरीर तो मैं यों ही कर लेता हूँ।"

द्विशरीरी की घटनाएँ अनेक योगी करते रहे हैं। इनका जिक्र पिछले खण्डों में किया जा चुका है। यहाँ तक कि परलोकवासी होने के बाद भी उच्चकोटि के सन्त अपने शिष्यों की सहायता करने चले आते हैं। महाराजजी की दूसरी घटना यों है—

* * *

१० सितम्बर, सन् १९५१ ई० के दिन महाराजजी डहाणु में भक्तों के मध्य प्रवचन दे रहे थे। सहसा प्रवचन रोककर उन्होंने एक युवक से कहा—"रमेश, मेरी बातचीत तो बराबर जारी रहेगी। तुम्हें जाना है। गाड़ी का समय हो गया है। स्टेशन पहुँचने में भी १५-२० मिनट लग जायेंगे। अब तुम कुमुद-ज्योति को लेकर तुरत स्टेशन पहुँच जाओ। मैं तो बातों में ही लगा रहा। अब समय बिलकुल नहीं है। घबराओ नहीं, गाड़ी तुम लोगों को बिना लिए जायगी नहीं।"

हुआ भी वही। जब ये लोग बोरबली स्टेशन पहुँचे तब गाड़ी खड़ी थी। इनके सवार होते ही रवाना हो हुई। यात्रियों से इन्हें पता चला कि पता नहीं क्यों आज गाड़ी यहाँ आधा घण्टा खड़ी रही। काफी लेट हो गई।

इसी प्रकार की एक घटना शामभाई के साथ हुई थी। यह २० मई, सन् १९४३ ई० की घटना है। राजकोट में प्रवचन देते हुए महाराजजी अचानक बोल उठे—"शामजी, घर जाओ।"

शामजी ने कहा—"बापू, घर पर कोई काम नहीं है। आपके सत्संग से जाने का मन नहीं कर रहा है।"

महाराजजी ने कहा—"शामजी, तुम घर चले जाओ। तुम्हारी माँ तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रही है। जल्दी घर जाओ।"

आखिर शामजी भाई को जाना पड़ा। महाराजजी को दण्डवत् करने के बाद वे घर की ओर रवाना हुए। चलते समय महाराज ने कहा—"लो, यह प्रसाद माँ को दे देना और जय सियाराम कहना।"

घर आकर शामजी ने माँ को प्रसाद दिया। उन्होंने ग्रहण किया। शेष प्रसाद शामजी को देती हुई माँ बोली—"इसे आसपास के बच्चों में बाँट दो। हाँ, बापू ने मुझे याद किया था या नहीं?"

शामजी ने कहा—"माँ, बापू ने याद करके मुझे यहाँ आपके पास भेजा है। उन्होंने चलते समय कहा कि यह प्रसाद माँ को दे देना और मेरा जय सियाराम कहना।"

यह बात सुनकर माँ ने कहा—"जय सियाराम।"

इतना कहते ही तुरत माँ की आत्मा शरीर से बाहर निकल गई। शामजी भाई के लिए यह अद्‌भुत घटना थी। वे माँ के शव के पास बैठकर रोने लगे।

* * *

सन् १६२६ ई० की एक और घटना है। उन दिनों महाराजजी माणेकवाड़ा गाँव के बाहर भक्तों के बीच बैठे प्रवचन दे रहे थे। उस सभा में गाँव के कई मूर्धन्य व्यक्तियों के अलावा महिलाएँ तथा बच्चे भी थे।

एकाएक भक्त लोग जिनमें सभी किसान थे, घबरा उठे। पश्चिम दिशा से टिड्डियों का बहुत बड़ा दल आ रहा था। उनके पंखों की आवाज से हवा गूँजने लगी। टिड्डी को सौराष्ट्र की भाषा में खपेड़ी कहा जाता है।

किसानों की घबराहट देखकर महाराजजी सारी स्थिति समझ गये। तुरत एक किसान पटेल से कहा—''तुम मैदान में जाकर कहो कि खपेड़ियो, गाँव के खेतों में मत बैठना।''

उस किसान पटेल ने सभा के बाहर आकर तेज स्वर में कहा—''हमारे गुरु महाराज श्री रणछोड़दासजी बापू कहते हैं कि आप लोग हमारे खेतों में नहीं बैठना। इतनी कृपा करना।''

इस आवाज को सुनते ही टिड्डियों का दल जैसे आया था, वैसे ही उड़कर दूसरी ओर चला गया। गुरुदेव ने उस किसान पटेल का नाम रखा—'खपेड़ी पटेल'। फलतः गाँव के सभी लोग उसे इसी नाम से पुकारने लगे।

एक बार की घटना है। भीखू महाराज नामक एक ज्योतिषी 'ब्रह्मानन्द परम-सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्' श्लोक पढ़ते हुए महाराज के निकट आये। सामने भक्त-मण्डली बैठी थी।

ज्योंही भीखू महाराज ने रणछोड़दासजी को प्रणाम किया त्योंही वे बोल उठे—''आइये ज्योतिषी महाराज। कुमुद, देखो भीखू महाराज आये हैं, अब ज्योतिष की बातें होंगी।''

भीखू महाराज ने विस्मय के साथ कहा—''हे सिद्ध गुरुदेव, आपको मेरा परिचय किसी ने नहीं दिया और मैं आपके सामने पहली बार आ रहा हूँ। फिर भी आपने मुझे पहचान लिया, नाम आदि जान लिया। आपके दर्शन से मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है। साथ ही आश्चर्य भी।'' इसके बाद भक्तों की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—''आप लोगों का यह अहोभाग्य है, जो ऐसे सद्‌गुरु की शरण में आये हैं।''

गुरुदेव ने कहा—''आप सहसा पहुँचे हैं, इस पर हमें भी आश्चर्य हो रहा है। कुमुद ने ज्योतिष की बातें कहीं तो आपका परिचय ज्ञात हो गया।''

इसके बाद गुरुदेव ने कुमुद की ओर देखते हुए कहा—''कल तुम्हारे ताऊजी यहाँ आये थे तब भी ऐसा हुआ था। तुम्हारे ताऊजी जब छोटे से थे तब ट्रेन में अपने पिताजी के साथ जा रहे थे। जहाँ मैं बैठा था, वहीं आकर दोनों बैठ गये। मुझे देखकर तुम्हारे दादाजी ने सोचा कि सामने कोई महात्मा बैठा है। पितामह ने प्रणाम करते हुए

मुझसे पूछा—"महात्माजी, आप ज्योतिष जानते हैं? कृपया मेरे इस पुत्र का भाग्य बताइये। मैं इसे वकील बनाना चाहता हूँ। मेरे कुल चार लड़के हैं। यह सबसे बड़ा है। इन दिनों इसकी उम्र १२ साल है।"

"मैंने कहा—'अब आप इसे स्कूल न भेजें। अपने कारोबार में तुरत लगा दें और व्यापारिक ज्ञान इसे दें।'

"वे मायूस हो गये। बोले—'यह पढ़ने में तेज है और मैं इसे वकील बनाना चाहता था।'

"मैंने कहा—'ऐसी गलती न करें तो अच्छा होगा। व्यापारिक अनुभव इसके लिए जरूरी है। अभी समय है। यह भगवान् की कृपा है कि आपने यह प्रश्न मुझसे पूछा। प्रश्न का उत्तर देना साधु का कर्तव्य है।'

"उन्हें मेरी सलाह पसन्द आ गई। उन्होंने कहा कि आपकी सलाह के अनुसार काम करूँगा। आपने मुझे सावधान करके मार्ग दिखाया, इसके लिए आभारी रहूँगा।"

तभी कुमुदिनीजी के पिताजी वहाँ आये। उनसे उनकी बेटी ने गुरुदेववाली घटना सुनाने के बाद पूछा कि क्या यह बात सही है।

पिताजी को सारी बातें मालूम नहीं थीं। गुरुदेव के कहने पर उन्होंने कहा—"इस घटना के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं है, पर बड़े भाई साहब की शिक्षा बीच में बन्द कर उन्हें व्यापार में लगाया गया था। इस घटना के तीन साल के भीतर पिताजी की मृत्यु प्लेग की बीमारी में हो गई थी। बस, इतना जानता हूँ।"

* * *

९ फरवरी, १९५३ की घटना है। गुरुदेव का दर्शन करने के लिए बेरावल से गोरधन भाई, सोमजी भाई आदि आये थे। इनका आग्रह था कि इनके पुत्र प्रवीण भाई के विवाह के अवसर पर गुरुदेव पधारें।

गुरुदेव ने कहा—"क्या मेरे स्थूल देह को ही हाजिरी मानोगे? मैं तो बराबर तुम्हारे साथ हूँ। जाओ, आनन्द के साथ लड़के का विवाह करो।"

११ फरवरी को गुरुदेव से बिदा लेते समय गोरधन भाई ने उनके एक चित्र पर हस्ताक्षर करने का उनसे अनुरोध किया। गुरुदेव ने चित्र पर हस्ताक्षर करते हुए कहा—"लो, इसे अपने साथ बारात में ले जाना।"

१६ फरवरी की शाम को गुरुदेव भक्तों के बीच बैठे बातें कर रहे थे। अचानक वे खड़े हो गये और जल्दी से सीढ़ी उतरने लगे।

मोटी माँ ने पूछा—"क्या आज्ञा है?"

गुरुदेव ने कहा—"मोटी माँ, मैं बाहर जाना चाहता हूँ। कल तक वापस आ जाऊँगा। बहुत जल्दी है। इन्दु भाई, जरा अपनी मोटर से तुरत ले चलो।"

जिस तरह व्यस्तता के साथ गुरुदेव रवाना हुए, उस माहौल को देखते हुए लोग

समझ गये कि किसी भक्त पर मुसीबत आई है। दूसरे दिन दोपहर को १२ बजे गुरुदेव वापस आये।

मोटी माँ ने पूछा—"क्या बात रही?"

गुरुदेव ने कहा—"भगवान् ने अपना विरुद कर दिखाया। प्रपन्नों की रक्षा करते हुए लाज रखते हैं। गोरधन भाई के पुत्र की जान बच गई।"

यह बात सुनकर सभी सन्न रह गये।

इन्दु भाई ने घटना का विवरण देते हुए कहा—"चलाला होकर इंगरोला जाने के मार्ग में, प्रवीण भाई जिस मोटर पर सवार होकर जा रहे थे, वह मोटर रास्ते में उलट गई। जब हम वहाँ पहुँचे तब देखा कि मोटर औंधी होकर एक ओर पड़ी है। सारा सामाने बिखरा हुआ है। वहाँ से इंगरोला केवल दो मील की दूरी पर था। यह समाचार इंगरोला पहुँच गया था। समधी साहब उधर से पहुँचे और इधर से हम लोग हाजिर हो गये। दोनों ही एक साथ वहाँ पहुँचे थे। आश्चर्य की बात यह रही कि मोटर में बैठे प्रवीण भाई तथा अन्य यात्रियों को खरोंच तक नहीं आई थी। श्री गुरुदेव का वह फोटो जिसे गुरुदेव ने यह कहकर दिया था कि इसे अपने साथ ले जाना, दहेज के बक्स पर रखा था। मोटर उलट गई, सन्दूक उछलकर दूर गिरकर टूट भी गई। अन्दर की सारी चीजें बिखर गईं, पर बीच में टीन के एक पीपे पर गुरुदेव का फोटो सही सलामत था, जैसे गुरुदेव साक्षात् विराजमान हों, मानो सामानों की देखरेख कर रहे हों। बाद में सभी लोगों को इंगरोला पहुँचाया गया। निश्चित समय पर विवाह सम्पन्न हुआ। इसके बाद तुरत गुरुदेव ने आज्ञा दी कि अब हम लोग भावनगर चलें। वहाँ मोटी माँ चिन्ता कर रही है।

* * *

कभी-कभी योगी पुरुष जान-बूझकर सामान्य व्यक्तियों की तरह अपने चरित्र का परिचय देते हैं। एक बार आप भ्रमण करते हुए अपने राजकोटवाले आश्रम में पहुँचे। रात अधिक हो गई थी। आश्रम के सभी व्यक्ति गहरी नींद में सो रहे थे। अचानक गुरुदेव यहाँ पधारेंगे, इसकी सूचना किसी को नहीं थी।

गुरुदेव ने सोचा—क्यों किसी को जगाकर कष्ट दिया जाय। चुपचाप आश्रम में जाकर कहीं सो जाऊँगा। बाहर का पहरेदार भी कर्त्तव्यच्युत होकर सो रहा था, पर उसके कान सजग थे।

अचानक उसे लगा कि कोई व्यक्ति धीरे-धीरे आश्रम की ओर जा रहा है। तुरत जाग पड़ा। यह पहरेदार नया था। गुरुदेव को पहचानता नहीं था। तुरत कड़ककर बोला—"बाबाजी, जल्दी से बाहर निकल जाइये।"

अब गुरुदेव ने सोचा कि भीतर के लोगों को सूचना देकर जगाना उचित नहीं है। चुपचाप आश्रम के बाहर दूर एक वृक्ष के नीचे जाकर सो गये।

इधर कुछ ही क्षण बाद भगवत्-प्रेरणा से पहरेदार की बुद्धि जाग्रत् हुई। उसे सन्देह हुआ कि कहीं यह बाबा आश्रम के रणछोड़दास महाराज तो नहीं हैं? वह तुरत

आश्रम के भीतर जाकर गुरुदेव का चित्र देखने लगा। चित्र देखते ही उसे साँप सूँघ गया। हे भगवन्, यह मैंने क्या किया? इस आश्रम के महाराज को ही धता बता दिया। तुरत उन्हें खोजता हुआ पेड़ के पास आया और उनके चरणों पर गिर पड़ा। अपनी भूल के लिए क्षमा माँगते हुए आश्रम आने की प्रार्थना करने लगा।

सदाशय गुरुदेव प्रसन्न होकर उसके साथ आश्रम में चले आये। इस अपराध के लिए उन्होंने कुछ नहीं कहा।

दूसरे दिन जब यह घटना आश्रम के भक्तों को मालूम हुई तब वे बड़े दु:खी हुए। गुरुदेव के आश्रम में गुरुदेव का अपमान! सभी उनसे इस अपराध के लिए क्षमा माँगने लगे।

गुरुदेव ने कहा—''कैसी क्षमा, कैसा अपराध, कैसा अपमान? पहरेदार ने अपना कर्त्तव्य निभाया। अगर वह मुझे नहीं पहचानता तो अपराध कैसे हुआ? इसमें मेरा अपमान कहाँ हुआ? साधु को मान-अपमान से दूर रहना चाहिए।''

* * *

इसी प्रकार एक बार आपने अपने प्रवचन में कहा—''मेरा सिद्धान्त है कि प्राण रहते दूसरों का हित करना।

व्यापक ब्रह्म अखण्ड अनन्ता ।
अखिल अमोघ एक भगवन्ता ॥

'यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्' वे ही राम सर्वभूतमात्र में स्थित हैं। 'सर्वेभ्यो भूतेभ्यो-न्तरो' वे सबके भीतर हैं। 'यं सर्वाणि भूतानि न विदुर:' जिसको सर्वभूत जानते ही नहीं हैं। 'यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरम्' परन्तु सर्वभूतमात्र इन्हीं के शरीर हैं। सर्व के अन्दर वे ही शरीरी हैं। 'सर्वेस्य प्रभुं ईशानं सर्वस्य शरणं बृहत्' वे ईश्वर सबके स्वामी हैं और सर्व-समर्थ-शरण हैं।

भगवान् ने कहा है कि मैं सर्वप्राणीमात्र में समान रूप में हूँ—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥

जो प्राणीमात्र में समान रूप से स्थित तथा देहादि के नाश होने पर भी, अविनश्वर रूप से रहनेवाले मुझे जानता है, वही ज्ञानी है।

सर्वभूतमात्र को अपने में और अपने को सर्वभूतों में एक आत्मरूप से समान भाव से देखता है, वही योगी है। ऐसी स्थिति में वह किससे द्वेष कर सकता है? किसका मोह और किसका शोक कर सकता है? अपने ही उपास्य से वैर, क्रोध, अनीति, अन्याय आदि कौन कर सकता है? वही, जो अपने को आस्तिक कहलाता है, पर भीतर से नास्तिक है।''

रणछोड़दासजी ने अपने इस वचन का पालन एक घटना में किया था। घटना गुजरात के जूनागढ़ की है। नगर से बाहर आते ही सभी गाड़ियाँ रुक गईं। यहाँ से सभी लोग अपने-अपने गन्तव्य स्थान की ओर चले जायेंगे।

गुरुदेव की गाड़ी रुकते ही सभी भक्त पास आ गये। गुरुदेव एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद बोले—''सभी लोग आ गये न? अब सभी प्रसाद, फल, मिष्टान्न यहाँ लाकर रख दो। आप लोग यह आशा मत करना कि इसमें से कुछ आपको दिया जायगा। मैं सबसे पहले ड्राइवरों को दूँगा। इसके बाद शेष महाप्रसाद सभी को मिलेगा। अब आप लोग मेरी सहायता करें। सभी ड्राइवरों को यहाँ बुला लाइये।''

ड्राइवरों के आने पर सभी को हाथ में काफी प्रसाद दिया गया। इसके बाद शेष लोगों को दोनों हाथ भरकर दिये गये। उसी समय न जाने कहाँ से ८-९ मोटरें आकर रुक गईं। स्थानीय गाँव से ४०-५० देहाती भाई आ गये। गुरुदेव लोगों के नाम लेकर बुलाते रहे और भर-भर अंजलि प्रसाद देते रहे। अभी सभी को प्रसाद दे रहे थे कि गाँव से ५०-६० व्यक्ति और आये तथा पंक्तिवार खड़े हो गये। प्रणाम करने की होड़ लग गई।

गुरुदेव ने कहा—''प्रणाम बाद में करना। पहले प्रसादी की लाइन में खड़े हो जाओ। पहले प्रसाद, बाद में प्रणाम।''

धीरे-धीरे कतार इतनी लम्बी हो गई कि कुछ मत पूछिये। थोड़ी देर बाद कुमुदिनी ने हँड़िया की ओर देखा तो चकित रह गई। अभी तो आधी हँड़िया खाली नहीं हुई है। इतने लोगों को प्रसाद बाँटने पर भी इतना शेष है?

कुमुदिनी को चकित देखकर गुरुदेव ने कहा—''यह तो मामूली बात है। इसमें आश्चर्य की क्या बात है? इस तरह के चमत्कार अनेक साधु करते हैं। तुम इसे नोट करो—

प्रभुता को सबही भजैं, प्रभु को भजै न कोय ।
जो कोई प्रभु को भजै, (तो) प्रभुता दासी होय ॥

सन् १९१९ की घटना है। उन दिनों महाराजजी कोटड़ा में एक शिव-मन्दिर में विराज रहे थे। यहाँ यज्ञोपवीत-समारोह हो रहा था। भण्डारा हो चुका था।

आगत भक्तों में जयराम भाई ने महाराज से प्रार्थना की कि न्यारा में पधारने की कृपा करें।

गुरुदेव ने कहा—''ठीक है, पर मैं पैदल ही आऊँगा। घोड़े पर चढ़ने की इच्छा नहीं है।''

जयराम भाई ने कहा—''मैं समझ गया, गुरुदेव। आप प्राणी को कष्ट देना नहीं चाहते। एक बात की अनुमति चाहता हूँ। आपके साथ कोई एक व्यक्ति कर दूँ जो आपको मार्ग बताता हुआ चले।''

गुरुदेव ने कहा—''इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं अकेला भ्रमण करता हूँ। आप चिन्ता न करें। मैं अकेला चला जाऊँगा। अब आप लोग अपने-अपने घोड़े से चले जायँ।''

गुरुदेव पैदल चल दिये। गुरुदेव के जाने के दस मिनट बाद जयराम भाई और उनके चाचा माधवभाई घोड़े पर सवार होकर रवाना हुए। काफी दूर आने पर भी मार्ग में कहीं गुरुदेव दिखाई नहीं दिये। यह देखकर ये लोग चिन्तित हो उठे। मार्ग में जो मिलता, उसी से पूछते—''क्यों भाई, एक साधुजी को इधर से जाते देखा है?''

कोटड़ा से न्यारा १४ मील दूर है। तेज घोड़े पर इतनी दूरी पार करने में दो घण्टे लगते हैं। जब न्यारा दो मील दूर रह गया तब एक किसान से मुलाकात हुई। उससे भी यही प्रश्न पूछा गया।

उसने कहा—"लगभग डेढ़ घण्टा पहले मैंने दूर से एक सफेद गोला आँधी की तरह आते देखा था। मुझे यह देखकर भय हुआ कि यह क्या आ रहा है। अभी मैं यह सब सोच रहा था कि मेरी आँखों के सामने से वह चीज निकल गई। गौर से देखने पर ज्ञात हुआ कि श्वेत वस्त्र पहने एक साधु आँधी की तरह जमीन से कुछ ऊपर उठकर जा रहे हैं। वे न्यारा की ओर गये हैं।"

यह बात सुनते ही दोनों व्यक्तियों ने घोड़े की गति तेज कर दी। न्यारा पहुँचने पर इन लोगों ने देखा—गुरुदेव एक पेड़ के नीचे विश्राम कर रहे हैं।

नौकर ने बताया—"बाबू, महाराज तो यहाँ डेढ़-दो घण्टे से आराम कर रहे हैं।"

* * *

महाराजजी अपने प्रवचनों में गीता, कबीर तथा तुलसीदास के पदों का उद्धरण देते थे। श्री सद्‌गुरु सेवा ट्रस्ट के नाम से बम्बई, राजकोट, पुष्कर, गोंडल, चित्रकूट आदि जगहों पर आश्रम स्थापित किया गया है। महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, गुजरात और राजस्थान आदि प्रदेशों में नेत्र-ऑपरेशन होते हैं। पाठशाला, गोशाला, अस्पताल, अकाल के समय अन्न-वितरण एवं राहत-कार्य करते हुए वे जनता-जनार्दन की सेवा करते रहे। अब तक जितने सेवा-कार्य किये गये हैं, उनका संक्षिप्त विवरण कुमारी कुमुदिनी परमानन्द पजवाणी की पुस्तक में उल्लेख है। अभी हाल ही में वे परलोकवासी हुए हैं। लगभग चार सौ वर्ष तक वे भारत में साधना करते रहे।

■ ■ ■



अवधूत माधव पागला

शंकर की नगरी काशी में आज भी एक परम्परा का पालन होता है, आषाढ़ मास में जब पानी नहीं बरसता और गर्मी से लोग व्याकुल हो उठते हैं तब भक्त लोग, खासकर अहीर जाति के लोग गंगा-जल कलश में भरकर, 'हर हर महादेव शम्भो काशी विश्वनाथ गंगे' का नारा लगाते हुए क्रमबद्ध रूप में अधिकांश मन्दिरों में पानी चढ़ाते हैं। ऐसी मान्यता है कि इससे प्रसन्न होकर देवाधिदेव शंकर पानी बरसाते हैं।

काशी के सकरकन्द गली मुहल्ले में श्री गोविन्द का मन्दिर है जहाँ माधव नामक पुजारी कार्य करते थे। कुछ झक्की स्वभाव के थे, इसलिए लोग उन्हें माधव पागला कहते थे। उस वर्ष आषाढ़ मास लगने पर जब पानी नहीं बरसा तब माधव ने निश्चय किया कि वे अपने इष्टदेवता श्री गोविन्द को १०८ कलश-जल से स्नान करायेंगे।

इस समाचार को सुनते ही मन्दिर के भक्तों में उत्सुकता उत्पन्न हुई। एक-एक कर नर-नारी आने लगे। देखते ही देखते काफी भीड़ एकत्रित हो गई। माधव विग्रह पर पानी उड़ेलने लगे।

आगत लोगों में से किसी ने कहा—"माधव भाई, आज आप १०८ कलश-जल से गोविन्दजी को स्नान करा रहे हैं, इसलिए आज पानी जरूर बरसना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ तो हम समझेंगे कि आपके मन्त्र का कोई प्रभाव नहीं है।"

इस शिगूफा को सुनते ही उपस्थित जनसमूह ने भी कहा—"आपका कहना ठीक है। देखना है आज माधव भाई अपने मन्त्र की शक्ति दिखाते हैं या नहीं।"

भक्तों का मन्तव्य सुनते ही माधव का मुँह सूख गया। मन ही मन घबराने लगे। यह कैसे सम्भव है कि श्री गोविन्द से प्रार्थना करने पर पानी बरसेगा? अगर न बरसा तो लोग समझेंगे कि मेरे मन्त्र में, पूजा में, भक्ति में, कोई दम नहीं है। मैं पुजारी के योग्य नहीं हूँ।

इसी प्रकार के चिन्तन में माधव विग्रह को स्नान कराने के बाद उसे कमरे में ले आये और उनका शृंगार करने लगे। बाद में हाथ जोड़ते हुए विग्रह से निवेदन किया—"माधव, आज जरूर पानी बरसाना।"

माधव पागला अपने गोविन्द को भी अपने ही नाम से सम्बोधित करते थे। विग्रह को सजाने में वे इतने दत्तचित्त रहे कि बाहर क्या हो रहा है, इसका उन्हें आभास नहीं हुआ।

एक घण्टा बाद बाहर निकलते ही मन्दिर की स्वामिनी साधु माँ ने कहा—"माधव, देखी तुमने हमारे गोविन्द की लीला?"

माधव का ध्यान आँगन की ओर न जाकर साधु माँ की ओर केन्द्रित था। उसने चकित भाव से प्रश्न किया—"क्या हुआ?"

साधु माँ ने कहा—"देख नहीं रहे हो? चारों ओर पानी ही पानी है।"

अब माधव ने गौर किया तो देखा कि चारों ओर वर्षा का जल वेग से बाहर निकल रहा है। यह दृश्य देखते ही वे समझ गये कि गोविन्द ने कृपा करके उनकी लाज रख ली। मन ही मन माधव अपने गोविन्द के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगे।

इस वर्षा के कारण उपस्थित सभी भक्त साधु माँ से कहने लगे—"निस्सन्देह आपका यह पुजारी असाधारण है। इनके मन्त्र में शक्ति है। गोविन्दजी ने इनका मान रख दिया है।"

माधव अपने गोविन्दजी के एकनिष्ठ भक्त थे। जिस प्रकार कदम-कदम पर माधव अपने गोविन्दजी से प्रार्थना करते, ठीक उसी प्रकार गोविन्दजी भी उसे सावधान करते रहते थे। दोनों आपस में बातें भी करते थे। अगर निष्ठा के साथ सर्वस्व इष्ट को समर्पित किया जाय तो प्रभु अपने भक्त पर अवश्य कृपा करते हैं। लेकिन आज भी इस बात को कुछ लोग समझ नहीं पाते।

आमतौर पर लोग बाजार से पूजन-सामग्री खरीदते समय दुकानदार से कहेंगे—पूजा के लिए लेना है। अर्थात् रद्दी या सस्ती सामग्री दो। पूजा के बाद सारी सामग्री फेंक दी जायगी या पुजारी उसका उपयोग करेगा। अगर यही सामग्री श्रद्धापूर्वक समर्पित की जाय तो देवता उसे ग्रहण करते हैं। अश्रद्धा करनेवालों को उसका फल मिल जाता है।

*   *   *

दीपावली का अवसर था। प्रतिवर्ष इस पर्व को मनाया जाता है। अन्नकूट-महोत्सव राधा-गोविन्द मन्दिर में धूमधाम से मनाया जाता है। इस उत्सव में भाग लेने के लिए देश के विभिन्न स्थानों से भक्तों का आगमन होता है। दिनभर उपवास रहने के पश्चात् लोग सायंकाल भोग ग्रहण करते हैं।

प्रातःकालीन पूजा समाप्त करने के बाद माधव पुनः एक बार स्नान करने के लिए स्नानघर में आये। तभी उसे लगा जैसे गोविन्दजी मन्दिर के भीतर से कह रहे हैं— ''आज तुम यहाँ भोजन मत करना।''

इस दैववाणी को सुनकर माधव विस्मित रह गये। नाराज होकर बोल उठे—''इस घर में नहीं खाऊँगा तो क्या भूखा मरूँगा?''

स्नान करने के पश्चात् अपने कमरे में आकर सोचने लगे—मैं यहाँ का पुजारी हूँ, भोग चढ़ाऊँगा। न जाने कितने तरह के पकवान बने हैं। सभी लोग खायँगे और एक मैं वंचित रह जाऊँगा। मैंने यहाँ का प्रसाद ग्रहण नहीं किया है, अगर इस बात का पता साधु माँ को लग गया तो वे क्या सोचेंगी? आखिर मैं खाऊँगा क्या? आज तो मुझे यहाँ से बाहर कहीं जाने भी नहीं दिया जायगा। अगर बाजार से कुछ मँगाकर खाऊँ तो साधु माँ बेहद नाराज होंगी। अजीब तमाशा है। इसी प्रकार के ऊहापोह में माधव खिजला उठा।

एकाएक बगल के मकान से एक लड़की आई और बोली—''बाबा, उमा मौसी तुम्हें बुला रही हैं।''

माधव ने कहा—''चल, आता हूँ।''

कपड़े बदलकर माधव पड़ोस के मकान में आये तो देखा कि उमाशशि देवी ने उसके लिए फलाहार का प्रबन्ध किया है। माधव को देखते ही उमाशशि देवी ने गले में आँचल डालकर उन्हें प्रणाम किया। फिर बोली—''दादा, आज आपको मेरे यहाँ अन्नकूट का प्रसाद ग्रहण करना होगा। घर में पूजा हुई है।''

भोजन करते समय माधव की आँखें अपने-आप भर आईं। अभी कुछ देर पहले वह अपने इष्ट गोविन्द पर नाराज होकर न जाने कितनी बातें कहते रहे और इधर उन्होंने उसके भोजन के लिए पहले से ही प्रबन्ध कर रखा है। प्रभु, आपकी माया अपरम्पार है।

मन्दिर में आकर माधव ने अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। इसके बाद ग्लानि के कारण जमीन पर लोटते हुए कहने लगे—''माधव, मुझे क्षमा कर दो। मैं आपकी कृपा को समझ नहीं सका। मुझसे बड़ा अपराध हो गया दीनबन्धु।''

इधर कुछ देर के बाद साधु माँ को जब यह बात मालूम हुई कि पुजारीजी ने पड़ोस के घर में जलपान किया है तब वे बिगड़ उठीं। उन्हें अपने आत्म-सम्मान में आघात लगा। उन्होंने माधव को बुलाकर डाँटना प्रारम्भ किया। माधव सिर झुकाकर समस्त तिरस्कार चुपचाप सुनते रहे। अगर सही बात कहते तो कोई विश्वास न करता। अपने गोविन्द का आदेश उन्हें मानना ही था। आखिर गोविन्द ने ऐसा आदेश क्यों दिया, वे समझ नहीं पा रहे थे।

भोग-निवेदन करते समय एक अनहोनी घटना घट गई। आचमन करते वक्त मन्त्र भूल गये। भोग-निवेदन का मन्त्र जबान पर नहीं आ रहा था। मस्तिष्क पर काफी जोर डालने पर भी कुछ स्मरण नहीं कर सके। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? अपनी कमजोरी पर वे रोने लगे। तभी दैववाणी सुनाई दी—''मैं जूठा भोग खाऊँगा?''

'जूठा खाऊँगा' शब्द सुनकर अब माधव चौंक उठे। आखिर भोग जूठा कैसे हो गया? किसने यह अपराध किया? जूठा भोग तो गोविन्द को दिया नहीं जा सकता। शायद इसीलिए गोविन्द ने मुझे इस घर में भोजन करने के लिए मना किया। मेरे लिए दूसरे के घर प्रबन्ध कर दिया ताकि भूखा रहूँ। हे माधव, यह सब क्या हो रहा है? इतने सारे भक्त तुम्हारा प्रसाद न खाकर किसी पातकी का जूठा खायँगे?

अत्यन्त खिन्न होकर माधव मन्दिर से बाहर आये। आगे बढ़ते ही दीनबन्धु नामक पाचक ने कहा—''पुजारीजी, आप मालपूआ और पायस डटकर खाना। बहुत बढ़िया बना है।''

यह बात सुनते ही माधव चौंक उठे। अब उसे यह समझते देर नहीं लगी कि भोग को जूठा किसने किया है। भोग बनाते समय इसने रसोईघर में चखा होगा। देवता को चढ़ाने के पहले चखने के कारण सारा भोग जूठा हो गया।

इधर बाहर भक्तों में भोग-वितरण किया जा रहा था, पर माधव ने उसे ग्रहण नहीं किया। यह बात सुनकर साधु माँ ने पूछा—''तुमने आज भोग क्यों नहीं ग्रहण किया?''

माधव ने उत्तर दिया—''अपने गोविन्द से पूछ लेना।''

मन्दिर में स्थायी रूप से भोग बनानेवाला पाचक कुछ दिनों से अस्वस्थ था, इसलिए दीनबन्धु नामक पाचक को अस्थायी रूप में रखा गया था। भोग बनाते समय अक्सर वह चख लेता था। एक दिन उसके भाग्य ने साथ नहीं दिया और मुसीबत आ गई।

उसने भण्डारघर की नौकरानी से कहा—''आज की दाल बहुत कड़वी है। कोई खा नहीं सकेगा। साधु माँ से अच्छी दाल माँग लाओ। दूसरी दाल बना दूँ।''

दाल कड़वी है, अब अच्छी दाल चाहिए, यह बात सुनकर साधु माँ का माथा ठनका। पाचक को बुलाकर उन्होंने कहा—''दाल कड़वी है, यह बात तुम्हें कैसे मालूम हुई? अभी तो भोग भी नहीं चढ़ाया गया है। क्या भोग चढ़ाने के पहले सारी सामग्री चख लेते हो?''

रँगे हाथ पकड़े जाने के कारण दीनबन्धु सिर झुकाये खड़ा रहा। इससे अपराध स्पष्ट हो गया।

साधु माँ ने कहा—''माधव को आने दो। आज ही तुम्हारा हिसाब करके बिदा कर दूँगी।''

माधव के आते ही साधु माँ ने कहा—''भोग की दाल को दीनबन्धु ने जूठा कर दिया है, अब क्या होगा?''

इस शिकायत को सुनते ही माधव ने कहा—''अगर मैं उसकी यही शिकायत उस दिन करता तो आप तथा अन्य लोग मुझ पर विश्वास न करते, उल्टे दो-चार बातें सभी सुनाते। झूठे अपवाद के कारण मैं दोषी बन जाता। आज आपको प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। अन्नकूटवाले दिन मेरे माधव ने भोग खाने को मना किया था। मैं अपने माधव से इधर बराबर कहता आ रहा हूँ कि एक बार उसे पकड़वा दो। आज वह पकड़ा गया और सही जानकारी आप लोगों को मिली।''

इतना कहते-कहते माधव रो पड़ा। साधु माँ भी पश्चात्ताप के आँसू बहाने लगीं।

* * *

श्री माधव पागला की जन्म-तिथि के बारे में मतभेद है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराजजी को उन्होंने बताया था कि उनका जन्म ढाका जिले में विक्रमपुर परगने के अन्तर्गत काचिआइल गाँव में माघ १३०७ बंगाब्द (१६०० ई०) में एक कुलीन ब्राह्मण के घर हुआ था। नाम रखा गया गोपालचन्द्र मुखोपाध्याय। चार वर्ष की आयु में आप पितृहीन हो गये। दादी ने स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा, वहाँ आपका नाम शैलजाकान्त मुखोपाध्याय लिखाया गया। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके तेलारबाग स्थित के० एस० डी० एम० हाईस्कूल में प्रविष्ट हुए। यहाँ प्रथम श्रेणी में पास होने के बाद आप कलकत्ता चले आये। यहाँ देशबन्धु चित्तरंजन दास ने उनका नाम साउथ सबबर्न कॉलेज में लिखा दिया और प्रतिमाह ४० रुपये सहायता देते रहे। यहाँ से बी० ए० पास कर आप कानून की शिक्षा लेने लगे। बाद में रेलवे में ठीकेदारी करने लगे। सन् १६३१ में एक जमींदार के यहाँ प्राइवेट ट्यूटर हुए। इसके बाद १६३४ ई० में काशी चले आये।

काशी में आपके मामा पण्डित आनन्दचन्द्र विद्यालंकार काशीराज के सभापण्डित तथा बंगाल सारस्वत-समाज के अध्यक्ष थे। यहाँ के पण्डित-समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इनके कारण माधव बराबर काशी आते थे। सन् १६३४ में जब माधव यहाँ आये तब संयोगवश श्री राम ठाकुर[1] यहीं निवास कर रहे थे। माधवजी उनका दर्शन करने गये। बातचीत के सिलसिले में श्रद्धापूर्वक दीक्षा देने की प्रार्थना की। ठाकुर महाशय तैयार हो गये।

इसके पूर्व जब आपकी उम्र १२ वर्ष थी तब आप दीक्षा लेने के उद्देश्य से महात्मा भोलानन्द गिरि[2] के पास गये जो उन दिनों हरिद्वार में थे। उन्होंने कहा—''मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता। आगे कोई महापुरुष देगा।''

बाईस वर्ष बाद इन्हें उपयुक्त गुरु से दीक्षा प्राप्त हुई। बाद में महात्मा भोलानन्द गिरि के प्रधान शिष्य महामण्डलेश्वर महादेवानन्द गिरि जब काशी पधारे तब आपने उनसे इस घटना का जिक्र किया। महामण्डलेश्वर ने कहा—''गुरु किना (क्रीत) होता है। तुम्हारा जो गुरु होगा वही दीक्षा देगा।''

---

१. देखिये, भारत के महान् योगी, चौथा भाग।

२. वही, भाग सात-आठ।

इस घटना के बाद आप कुछ दिनों के लिए कलकत्ता चले गये। वहाँ एक साल रहने के बाद १६३६ में काशी आकर यहीं हमेशा के लिए रह गये। आपके साथ आपकी माताजी रहती थीं। उनका देहान्त १६४५ ई० में हुआ था। पहले बंगाली टोला में रहते थे। बाद में पातालेश्वर स्थित एक किराये के मकान में रहने लगे। सन् १६५१ में आप एक मस्जिद के बाहरी कमरे में रहने लगे। आपके शिष्यों में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही थे।

आपके बारे में एक राय यह है कि आपका जन्म १६ अगहन, शुक्ल त्रयोदशी, मंगलवार को ढाका जिले के विक्रमपुर परगना के अन्तर्गत विदगाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम चन्द्रकान्त मुखर्जी था। नामकरण के दिन आपका नाम गोपालचन्द्र रखा गया था। आपकी माता श्रीमती मनोरमादेवी स्वयं श्री राम ठाकुर की शिष्या थीं।

आपके गुरुओं की लम्बी कहानी है। कई जन्मों के गुरुओं का उल्लेख किया गया है। आपके आदिगुरु श्री माधवेन्द्र पुरी थे। इष्टगुरु रामचन्द्र देव दयानिधि थे। महाप्रभु चैतन्यदेव के आविर्भाव-काल से अब तक आपने दस बार जन्म लिया है। इस जन्म के बाद आपका पुनर्जन्म नहीं होगा। इस बार आपका जन्म ननिहाल में हुआ था। सन् १६३४ ई० में आपने श्री राम ठाकुर से काशी में दीक्षा ली। आपके शिक्षागुरु श्री नरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय थे। शिक्षागुरु से ही इन्हें ज्ञात हुआ कि पिछले जन्म में आप माधव पागला के नाम से प्रसिद्ध थे। शायद इसीलिए इस जन्म में आपने उस नाम को पुनः ग्रहण कर लिया। पूर्वजन्म में आप छपरा जिले में रहते थे। पागलों की तरह मार्ग में घूमते हुए कहा करते थे—''आमार माधव खूब भालो।'' (मेरा माधव बहुत अच्छा है।)

काशी-निवासकाल में आपने अनेक महात्माओं का सत्संग किया। माधवानन्द गिरि, बालानन्द ब्रह्मचारी के शिष्य मोहनानन्द, सीतारामदास ओंकारनाथ,[1] स्वामी सर्वानन्द, मौनी बाबा, फकीरसाहब, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी कृष्णानन्द आश्रम, स्वामी प्रणवानन्द, ज्ञानानन्द स्वामी, शोभा माँ, रांगा माँ, केवलानन्द ब्रह्मचारी आदि।

* * *

माधव को दीक्षा देने के दो वर्ष बाद श्री राम ठाकुर पुनः काशी आये। माधव पागला गुरु-दर्शन के लिए उनके निकट गये। गुरु ने पूछा—''नाम जप रहे हो न?''

माधव ने कहा—''मेरा मन बहुत चंचल रहता है। मुझसे यह सब नहीं होगा।''

ठाकुर ने कहा—''एक बार में नहीं होगा। नाम की जड़ पकड़े रहो। जड़ पकड़े रहने पर सब अपने-आप ठीक हो जायगा।''

श्री ठाकुर हमेशा अपने भक्तों तथा शिष्यों को नाम जपने की सलाह देते थे। उनका कहना था कि यही सबसे सरल मार्ग है—चिन्दानन्द को पाने के लिए।

श्री राम ठाकुर ने एक बार माधव पागला से कहा कि किसी का नाम लेते समय 'श्री' शब्द आगे जरूर लगाना चाहिए। यह सलाह सुनते ही उन्हें ख्याल आया कि वे

---

१. देखिये, भारत के महान् योगी, भाग सात-आठ।

बातचीत के सिलसिले में अपने गुरुदेव का नाम 'राम ठाकुर' कहते हैं। अन्तर्यामी गुरुदेव ने शिष्य के अपराध को कितने सहज ढंग से समझा दिया।

एक बार श्री राम ठाकुर काशी आकर पाण्डे धर्मशाला में ठहरे। अस्वस्थ रहने के कारण वे किसी से मिलते नहीं थे। भक्त आते, दरवाजा बन्द देखकर लौट जाते थे। ऐसे माहौल में माधव पागला गुरुदेव का दर्शन करने के लिए चल पड़े। मार्ग में दर्शन से वंचित भक्तों की भीड़ मिली तो उन लोगों ने कहा—"गुरुदेव का दर्शन नहीं कर सकेंगे। दरवाजा बन्द है।"

यह बात सुनकर माधव पागला निराश नहीं हुए। उन्होंने सोचा कि गुरु द्वारा दिये गये नाम से अगर मैं भवसागर पार हो सकता हूँ तो क्या उस नाम के जरिये गुरु का दर्शन नहीं कर सकता? अगर आज ऐसा न हुआ तो मैं इस नाम को ही नहीं, बल्कि अपने गुरु को भी त्याग दूँगा। झक्की आदमी थे। मन ही मन इस प्रकार निश्चय करके वे धर्मशाला में आये तो देखा—गुरुदेव के कमरे का दरवाजा खुला है।

भक्त की विजय हुई। गुरुदेव को प्रणाम करने के बाद प्रसन्नचित्त घर वापस आ गये। माँ से उन्होंने कहा—"माँ, मैं गुरुदेव का दर्शन कर आया।"

लड़के की बात सुनकर माँ चकित रह गई। आज वह स्वयं दर्शन करने गई थीं तब दरवाजा बन्द रहने के कारण निराश लौट आई थीं। बोलीं—"बेटा, मुझे तो दर्शन नहीं मिला। मैं ही क्यों, जितने लोग दर्शन की आशा से गये थे, वे सभी निराश होकर वापस चले आये।"

माँ की बात सुनकर माधव पागला अत्यन्त दुःखित हुए। उन्होंने कहा—"माँ, कल दर्शन करने चली जाना। इस बार जरूर दर्शन होगा। अगर दरवाजा न खुला तो मैं इसका प्रबन्ध कर दूँगा।"

बेटे की बात पर विश्वास कर माँ उसके मित्र यदुलाल बनर्जी के साथ गुरुदेव का दर्शन करने आईं तो देखा—दरवाजा कल की तरह बन्द है। वह निराश होकर वापस चली गईं।

माँ की जबानी सारी बातें सुनने के बाद माधव पागला अपने साथ माँ और यदुलाल बनर्जी को लेकर चल पड़े। दरवाजे के समीप आते ही भीतर से आवाज आई—"कोई मुझे बुला रहा है। जल्द दरवाजा खोल दे।"

दरवाजा खुला। सभी लोगों ने श्री राम ठाकुर का दर्शन किया। इस घटना के बाद से इन्हें बिना किसी बाधा के दर्शन प्राप्त होता रहा।

एक दिन धर्मशाला में श्री राम ठाकुर के सामने कुछ लोग बैठे हुए थे। सभी को वे उपदेश दे रहे थे। माधव पागला आये और चुपचाप एक किनारे बैठ गये। गुरुदेव किसी शिष्य को सत्यनारायण-कथा कराने की तो किसी को बेलपत्ती-फूल से विग्रह की पूजा करने की बातें कह रहे थे।

इन्हीं सब उपदेशों को सुनते-सुनते माधव पागला के मन में विचार उत्पन्न हुआ।

दीक्षा प्राप्त किये काफी दिन हो गये हैं। गुरु से ही शिष्य को ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। आज मैं गुरुदेव से निवेदन करूँगा कि वे मुझे ब्रह्मज्ञान दें।

यही सब सोचते हुए उन्होंने गुरुदेव के चरणों पर अपना मस्तक रखा। गुरुदेव ने उनकी पीठ पर हाथ रखते हुए एक मुद्रा बनाई। इसके बाद कुछ देर तक किसी मन्त्र का जाप करते रहे। एकाएक माधव पागला को एक नई अनुभूति प्राप्त हुई। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि आज के पहले उन्हें इस प्रकार का आशीर्वाद प्राप्त नहीं हुआ था।

बातचीत के सिलसिले में ठाकुर ने कहा—"साधना के पथ पर अग्रसर होने के लिए हमेशा जप पर ध्यान देना आवश्यक है। सबसे पहले गुरु-मूर्ति का ध्यान करना चाहिए। अगर ध्यान में उनकी मूर्ति न आये तो उनका एक चित्र उत्तम स्थान पर रखकर भक्तिपूर्वक गन्ध-पुष्प से पूजा तथा स्तव-पाठ करना चाहिए। पहले-पहल मानसिक कष्ट, क्लेश, सांसारिक चिन्ताओं के कारण मन उद्वेलित रहेगा। लेकिन इन बाधाओं से जूझते हुए निरन्तर जप करते रहना चाहिए। घर-गृहस्थी के कार्यों में लगे रहते हुए भी सर्वदा जप करते रहना चाहिए। जब इस दिशा में प्रगति करोगे तब कान के समीप साँय-साँय या शंख या घण्टा बजने जैसी आवाजें आयेंगी। आँखों से आँसू निकलेंगे और शरीर में सिहरन उत्पन्न होगी। इससे घबराना नहीं और न इसे रोग समझकर इलाज करना। यह उत्तम लक्षण है। ध्यान करते वक्त जब गुरु-मूर्ति स्पष्ट रूप से दिखाई दे तब समझ लेना कि मन स्थिर हो गया है। इस प्रकार अपने को गुरु के चरणों में समर्पित कर देना चाहिए। इससे रिपुओं का नाश होता है और मन शान्त हो जाता है। गुरु पर विश्वास होता है और आस्था जमती है। उस समय गुरु की चिन्मय सत्ता तुम्हारे अन्तर में प्रकट होगी। गुरु-शिष्य की अभेदात्मा स्थापित होगी। अपनी समस्त जिम्मेदारी से मुक्त हो जाओगे तब धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, सुख-दुःख आदि संस्कार तुम्हें विचलित नहीं कर सकेंगे। इसके बाद तुम अपनी सारी जिम्मेदारी गुरु को देकर निरपेक्ष भाव से विचरण करोगे।

"इस स्थिति में गुरु तुम्हारे शरीर में आवेशित होकर तुमसे नाना प्रकार के कार्य करा लेंगे। उन कार्यों को अपनी क्षमता मत समझना। इससे अनिष्ट हो सकता है और साधना का मार्ग अवरुद्ध हो सकता है। साधक अपनी योग्यता के अनुसार ही फल प्राप्त करता है। गुरु-शक्ति से ही सब कुछ सुलभ होता है। क्रमशः उन्नीत होने पर इष्ट से साक्षात्कार होता है। उस वक्त जप-ध्यान से केवल इष्ट की अनुभूति होती है। अपनी सत्ता नहीं रहती। समस्त इन्द्रियाँ स्वतः इष्ट की ओर उन्मुख हो जाती हैं।

"कहने का आशय यह है कि इस संसार में जब तक यह शरीर रहे तब तक भजन-जप करते रहना चाहिए। भजन के प्रारम्भ में गहरी भक्ति उत्पन्न होती है। इसे साधक-भक्ति कहा जाता है। जब यह भक्ति और गहरी हो जाती है तब प्रेम-भक्ति का रूप ले लेती है। यह तो केवल हृदय में प्रकट होती है। अब तो समझ गये न?"

गुरु-वचन को सुनकर माधव पागला आत्मविभोर हो उठे। उन्होंने निश्चय किया कि भविष्य में वे इस उपदेश का निष्ठापूर्वक पालन करते रहेंगे।

* * *

दीक्षा लेने के चार वर्ष बाद की बात है।

माधव पागला घर-घर जाकर छात्रों को पढ़ाया करते थे। इस कार्य के लिए कुल जमा पन्द्रह रुपये मिलते थे। इतनी छोटी रकम से गृहस्थी की गाड़ी चल नहीं रही थी। परिवार में माँ और वे स्वयं थे। मां को भी भरपेट भोजन न दे पाने का उन्हें कष्ट था। रात को अधिकतर वे लाई-चना खाकर सो जाते थे। अपने इस कष्ट के कारण कभी-कभी इतने दु:खी हो जाते थे कि रात को चुपचाप घण्टों रोते रहते थे।

सोचा करते थे—मैं गरीब आदमी हूँ, इसलिए गुरुदेव की मुझ पर कृपा नहीं हो रही है। वे बड़े आदमियों के यहाँ ठहरते हैं, ऐसी स्थिति में मेरे जैसे नगण्य शिष्य पर उनका ध्यान नहीं जाता। मेरी याद उन्हें कैसे आयेगी, भला।

एक दिन इसी प्रकार की चिन्ता करते-करते उन्होंने दशाश्वमेध घाट की सीढ़ियों पर बैठकर मुँह ढाँप लिया और रोने लगे।

इस घटना के कई दिनों बाद उनकी बाल्य-सहचरी से अचानक मुलाकात हो गई। दोनों एक-दूसरे को देखकर चकित रह गये। दोनों एक ही गाँव में पैदा हुए थे, साथ खेलते रहे। आज बाईस वर्ष बाद यह मुलाकात हुई है।

माधव पागला ने विस्मय के साथ पूछा—"तू तो साधुनी बन गई है।"

उसने भी कहा—"और तू? तू भी साधु बन गया है। तू श्री राम ठाकुर का शिष्य है और मैं भी। गुरुदेव ने मुझे तेरे पास भेजा है।"

गुरुदेव की चर्चा चलने पर माधव पागला के दिल का दर्द उमड़ आया। उन्होंने कहा—"गुरुदेव बड़े लोगों के हैं। उन्हीं का ध्यान रखते हैं। हमारे जैसे दरिद्रों की ओर ध्यान देने के लिए उनके पास अवकाश कहाँ है?"

यह बात सुनते ही शिव दुर्गा ने कहा—"चुप-चुप। गुरुदेव के बारे में ऐसी बातें नहीं कहते। शोभा नहीं देतीं। जानता है, तेरे रोने के कारण आजकल वे बहुत अस्थिर हो उठे हैं। बराबर कहते हैं कि मेरा माधव रो-रोकर मुझे परेशान कर रहा है। तुझे शान्त करने के लिए उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है। इधर तू रोता है और उधर उन्हें कष्ट होता है। गुरुदेव ने कहा है कि क्या अभाव होने पर रोना चाहिए?"

सारी बातें सुनने के बाद माधव पागला को आश्चर्य हुआ, आखिर इन तमाम बातों से गुरुदेव कैसे परिचित हो गये? इसका अर्थ यह है कि वे मेरी वर्तमान स्थिति से परिचित हैं। इस शरीर पर तो श्री ठाकुर का अधिकार है।

एक दिन रात को माधव ने स्वप्न में देखा कि बाढ़ के कारण चारों ओर पानी ही पानी है। वह गुरुदेव के साथ एक नाव पर यात्रा कर रहा है। श्री राम ठाकुर नाव पर खिचड़ी और आलू का चोखा बना रहे हैं। भोजन तैयार हो जाने पर गुरुदेव ने कहा—"आओ भोजन करें।"

गुरु की आज्ञा सुनकर वे चौंक उठे। बोले—"यह क्या गुरुदेव? आप ठहरे गुरु और मैं शिष्य हूँ। एक ही थाली में कैसे खा सकता हूँ?"

तभी उनकी नींद खुल गई। उस दिन अपने शिक्षागुरु श्री नरेन्द्रनाथ बनर्जी से उन्होंने इस स्वप्न का अर्थ पूछा। बनर्जी बाबू ने कहा कि इसमें कोई दोष नहीं है।

श्री राम ठाकुर काशी बराबर आते थे। यहाँ वे कभी पाण्डे धर्मशाला या हरसुन्दरी धर्मशाला में ठहरते थे। इसी प्रकार जब एक बार ठाकुर आये तब उनका दर्शन करने वे धर्मशाला में गये तो देखा कि एक सज्जन को गुरु-पूजा के बारे में अनेक झंझटवाली प्रक्रिया समझा रहे थे। सारी बातें सुनने के बाद माधव पागला ने सोचा—अगर मुझे यह सब करने को कहा जायगा तो मुझसे हो नहीं पायेगा।

उक्त सज्जन से बातचीत समाप्त करने के बाद ठाकुर ने माधव पागला से कहा—"आप मेरा नाम लेते हुए जो कुछ हाथ में लेंगे, वह मुझ तक पहुँच जायगा। याद रखिये, मैं उसे ग्रहण भी कर लूँगा।"

श्री राम ठाकुर में एक विशेषता यह थी कि वे प्रत्येक व्यक्ति से बातचीत करते समय सर्वदा 'आप' शब्द का प्रयोग करते थे। गुरुदेव के इस उपदेश को सुनते ही माधव प्रसन्न हो गये। प्रणाम करने के पश्चात् चल पड़े।

* * *

सन् १९३९ की घटना है। द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया था। चारों ओर सनसनी फैली हुई थी।

माधव अपने मित्र यदुलाल बनर्जी की दुकान पर गये। सुबह के दस बजे थे। अपने मित्र के मुरझाये चेहरे को देखकर माधव ने पूछा—"क्या बात है? चूसे हुए आम की तरह शक्ल क्यों बनाये हुए हो?"

यदुलाल ने कहा—"क्या बताऊँ, सबेरे से अब तक केवल चार आने की बिक्री हुई है। अगर यही हालत रही तो कैसे काम चलेगा? समझ में नहीं आता।"

माधव ने कहा—"मेरे ठाकुर को अमरूद खिलाइये, बिक्री बढ़ जायगी।"

यदु बाबू को इन सब बातों पर विश्वास नहीं था। काफी देर तक किचकिच करने के बाद यदु बाबू ने एक आने का अमरूद मँगवाया और कहा—"ठीक है। लो, इसे ले जाकर अपने ठाकुर को भोग लगा देना।"

माधव ने कहा—"घर जाने की जरूरत नहीं है। यहीं भोग लगा देता हूँ।"

इतना कहने के बाद माधव ने अमरूदों को चाकू से चीरकर उसे दो भागों में बाँटा। इसके बाद एक हिस्सा यदू बाबू को देकर दूसरा हिस्सा स्वयं खाने लगे।

यह दृश्य देखकर यदुलाल बिगड़ उठे—"बड़े भारी धोखेबाज हो। अमरूद खाने की इच्छा थी तो साफ कहते। इस तरह मूर्ख क्यों बनाया?"

माधव ने हँसते हुए कहा—"मैं खा रहा हूँ यानी स्वयं ठाकुर खा रहे हैं। आप भी प्रसाद ग्रहण कीजिए।"

यदुलाल को मजाक पसन्द नहीं आया। वे देर तक झनकते रहे। यह देखकर

माधव ने कहा—"अगर आज आपकी बिक्री अच्छी हुई तो समझ लीजिएगा कि इस फल को ठाकुर ने खाया है।"

यदुलाल का मिजाज इस परिहास से और भी बिगड़ गया। बोले—"ठीक है। पता चल जायगा। अब आप यहाँ से चलते-फिरते नजर आइये। मेरा पारा गरम हो रहा है।"

शाम को माधव टहलते हुए पुनः दुकान पर आये। तब तक कुछ भी बिक्री नहीं हुई थी। थोड़ी ही देर बाद धीरे-धीरे ग्राहक आने लगे। इसके बाद यह हालत हो गई कि ग्राहकों को सँभालना कठिन हो गया। कहाँ नित्य ४०-५० रुपये की बिक्री होती थी और उस दिन १२३ रुपये की बिक्री हुई।

रात ९ बजे आकर माधव ने पूछा—"कहो, क्या हाल है?"

यदुलाल बनर्जी ने प्रसन्नचित्त से कहा—"आज तो चमत्कार हो गया। सिर्फ चार घण्टे में १२३ रुपये की बिक्री हुई। पिछले छः माह में इतनी बिक्री कभी नहीं हुई थी।"

माधव ने हँसकर कहा—"अब भविष्य में कभी मेरे ठाकुर के बारे में दोषारोपण न कीजिएगा।"

* * *

खाली समय में माधव अक्सर दशाश्वमेध घाट पर टहलने चले जाते थे। काशी के घाटों पर कथावाचक कथा कहते हैं, जिसे अधिकतर बंगाली महिलाएँ, कुछ वृद्ध पुरुष कथा सुनते हैं।

स्वामी निखिलानन्द से माधव की घनिष्ठता थी। बातचीत के सिलसिले में एक दिन दोनों में विवाद हो गया। स्वामीजी ने उसे फटकारते हुए कहा—"एक ओर तुम साधु बनते हो और दूसरी ओर स्वामियों का मखौल उड़ाते हो। यह गलत बात है। प्रत्येक संन्यासी को नारायण समझकर उनके प्रति श्रद्धा-ज्ञापन करना चाहिए। श्रीकृष्ण ने यही उपदेश उद्धव को दिया था।"

माधव ने पूछा—"उद्धव? यह कौन था?"

माधव के इस प्रश्न पर स्वामीजी चौंक उठे। उन्होंने पूछा—"ब्राह्मण-सन्तान होकर तुम उद्धव को नहीं जानते? धार्मिक ग्रन्थों का पाठ किया है या नहीं?"

स्वामीजी के प्रश्न को सुनकर माधव लज्जित हो उठे। उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। अपनी अज्ञानता के प्रति उन्हें क्षोभ हुआ। बड़े संकोच के साथ विनम्र भाव से उन्होंने कहा—"स्वामीजी, क्या आप मुझे गीता पढ़ाने का कष्ट करेंगे?"

स्वामीजी ने कहा—"नहीं। मैं नहीं पढ़ा सकता। मैं काफी वृद्ध हो गया हूँ। तुम किसी अन्य विद्वान् से पढ़ लेना।"

उस दिन माधव रातभर बेचैन रहे। ब्राह्मण-पुत्र होकर उन्होंने गीता का अध्ययन नहीं किया। बार-बार अपने गुरुदेव का स्मरण करते हुए उन्होंने कहा—"गुरुदेव, मुझे गीता पढ़वाकर ज्ञानी बना दो। अपना दुःख आपके सिवा किससे कहूँ?"

इस घटना के कई दिनों बाद दशाश्वमेध घाट पर टहलते हुए एक व्यक्ति पर माधव की नजर पड़ी। देखने में वे लगभग ४० वर्ष के थे यानी माधव से ४-५ वर्ष बड़े थे। माधव इन्हें १०-१२ दिनों से चुपचाप टहलते देखा करते थे। एक दिन आगे बढ़कर उन्होंने अपना परिचय दिया।

उक्त अपरिचित सज्जन ने कहा—''मेरा नाम नरेन्द्रनाथ बनर्जी है। तुम मुझे दादा कह सकते हो। तुम्हारे गुरु महापुरुष हैं। मैं उन्हें जानता हूँ। उनका मुझ पर स्नेह है। लगता है, आप योगाभ्यास करते हैं?''

माधव ने कहा—''जी नहीं। मैं केवल नाम जपता हूँ। कुछ दिन हुए शव-शिवा मन्दिर में स्थित पंचमुण्डी आसन पर मन्त्र सिद्ध किया है।''

नरेन्द्रनाथ ने कहा—''यह बात गुरु के अलावा अन्य किसी को नहीं बतानी चाहिए। अब यह बताओ कि तुम मुझसे क्या चाहते हो?''

''मैं गीता पढ़ना चाहता हूँ। क्या आप मुझे गीता पढ़ा सकते हैं?''

नरेन्द्रनाथ ने कहा—''जरूर पढ़ाऊँगा। कल तुम गंगा-स्नान करने के बाद नये वस्त्र पहनकर मेरे यहाँ चले आना। साथ में थोड़ा घिसा हुआ चन्दन लेते आना।''

दूसरे दिन निर्देशानुसार माधव स्नानादि करने के बाद नरेन्द्रनाथ के यहाँ पहुँचे। उन्हें प्रणाम करने के बाद चन्दन लगाया। नरेन्द्रनाथ माधव के मस्तक, बाँह, मुँह और वक्षःस्थल पर चन्दन लगाने के बाद बोले—''उस स्टूल पर बैठ जाओ।''

आज्ञानुसार माधव स्टूल पर बैठ गये। उन्होंने सोचा कि अब शायद दादा गीता-पाठ करेंगे। देखते ही देखते माधव का शरीर अवसन्न हो गया। दोनों आँखें बन्द हो गईं। धीरे-धीरे वे सो गये। पर भीतर ही भीतर जप चलता रहा। कुछ देर बाद घड़ी की आवाज से उनकी नींद खुली तो देखा—दादा एकटक उसकी ओर देख रहे हैं।

माधव को जागते देख नरेन्द्रनाथ ने पूछा—''नींद खुल गई? काफी देर तक सोते रहे।''

माधव की समझ में कुछ नहीं आया। लज्जित भाव से उन्होंने कहा—''पता नहीं कैसे नींद आ गई।''

नरेन्द्रनाथ ने कहा—''ठीक है, गीता के श्लोक कहो।''

''मैं गीता नहीं जानता।''

''मैं कह रहा हूँ, उसे दोहराते चलो।''

इसके बाद नरेन्द्रनाथ ने गीता का एक श्लोक सुनाया। तुरत उसे दोहराते हुए माधव ने अर्थ भी बताया।

नरेन्द्रनाथ ने प्रसन्न होकर कहा—''तुम तो श्लोक का उच्चारण अच्छी तरह कर लेते हो और अर्थ भी बता देते हो।''

''मैं आपकी जबानी सुनता गया और उसकी पुनरावृत्ति करता गया। इसमें कौन-सा कमाल किया?''

इसी प्रकार एक के बाद एक करके श्लोकों की आवृत्ति होती रही। यहाँ से उस दिन रवाना होने के बाद माधव के मन में एक सवाल बराबर टकराने लगा—दादा जरूर कोई जादू जानते हैं। शायद इसीलिए नींद आ गई थी और मैं गीता का अर्थ कहता गया।

लगातार कई दिनों तक गीता-पाठ का कार्यक्रम चलता रहा। एक दिन नरेन्द्रनाथ ने कहा—"अब यहाँ आने की जरूरत नहीं है। जब तुम्हें इसकी जरूरत होगी तब आपने-आप आवृत्ति हो जायगी।"

गीता की शिक्षा के बाद माधव नरेन्द्रनाथ से उपनिषदों का पाठ पढ़ने लगे।

एक दिन एक श्लोक की प्रथम पंक्ति सुनने के बाद नरेन्द्रनाथ दूसरी पंक्ति का स्मरण करने लगे, पर कुछ देर तक उन्हें याद नहीं आया। तभी माधव ने उस श्लोक की आवृत्ति कर दी।

नरेन्द्रनाथ ने चौंककर पूछा—"क्यों भाई, उपनिषद् मेरे अलावा और किसी से पढ़ते हो क्या?"

माधव ने हँसते हुए कहा—"जी नहीं। मैंने केवल उपनिषद् का नाम मात्र सुना है। अभी तक देखा नहीं है।"

"तब आपने श्लोक की पूर्ति कैसे की?"

"जब आप इस श्लोक की अर्द्धाली सुना रहे थे तब मुझे ऐसा लगा जैसे इस श्लोक को कहीं सुन चुका हूँ या जानता हूँ?"

नरेन्द्रनाथ ने पूछा—"इस श्लोक का अर्थ बता सकते हो?"

माधव ने कहा—"जी हाँ।"

कहने के बाद उन्होंने श्लोक का अर्थ बताया।

नरेन्द्रनाथ को समझते देर नहीं लगी कि माधव पागला सामान्य व्यक्ति नहीं है। यह असाधारण व्यक्ति है। गुरु-कृपा से इसे अलौकिक शक्ति प्राप्त हो गई है। इधर नरेन्द्रनाथ के व्यवहार और ज्ञान से माधव भी काफी प्रभावित हो गये थे।

माधव अपने दादा नरेन्द्रनाथ का निरन्तर चिन्तन करते थे। एक प्रकार से वह नरेन्द्रमय हो गये थे। उनका ख्याल था कि दादा का निरन्तर ध्यान करते रहने पर उनका ज्ञान मुझमें आ जायगा और मैं योग्य बन जाऊँगा।

धीरे-धीरे कई माह गुजर गये। चैत्र का महीना आ गया। सहसा एक दिन उपलवृष्टि हुई। दोपहर का वक्त था। माधव अपने कमरे में सो रहे थे। अचानक उन्होंने देखा—दादा अपने कमरे में खाट पर बैठे काँप रहे हैं। दरवाजा तथा खिड़कियों से पानी की बौछार उनके कमरे में आ रही है। घर में सहायता करनेवाला कोई नहीं है।

यह दृश्य देखकर माधव परेशान हो उठे। उन दिनों माधव पातालेश्वर और नरेन्द्रनाथ बाँसफाटक मुहल्ले में रहते थे जिनकी दूरी एक-डेढ़ मील थी। तुरत अपनी माँ से गरम कपड़े लेकर वे दादा के घर आये। सूक्ष्म दृष्टि से दादा के यहाँ का जो दृश्य

माधव ने देखा था, यहाँ आने पर वही दृश्य देखा।

कमरे के भीतर प्रवेश करने के बाद माधव ने कहा—"घर बैठे आपकी हालत देखकर रहा नहीं गया। अपने साथ कुछ गरम कपड़े लाया हूँ।"

नरेन्द्रनाथ ने कहा—"तुम्हारे इस व्यवहार के कारण लोग तुम्हें पागल समझते हैं।"

माधव ने जवाब दिया—"घर पर बैठा था। अचानक आपकी यह हालत देखी। यह सच है या नहीं, यही देखने के लिए चला आया।"

नरेन्द्रनाथ ने कहा—"यह सब छोड़ दो। इससे कोई लाभ नहीं। अपनी शक्ति इस दिशा में मत लगाओ।"

क्षुण्ण मन से माधव ने कहा—"मैं इधर कहाँ मन लगाता हूँ? अपने आप मुझे दिखाई देने लगता है।"

समझौताभरे शब्दों में नरेन्द्रनाथ ने कहा—"अगर गुड़ खाकर तृप्त हो जाओगे तो मोहनभोग कैसे खाओगे? अगर इस दिशा में मन लगा रहा तो साधना में प्रगति नहीं होगी।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद नरेन्द्रनाथ वृन्दावन चले गये। उनके जाने के कई दिनों बाद पुनः माधव ने देखा कि नरेन्द्रनाथ एक खाट पर कम्बल ओढ़े सो रहे हैं। सारा शरीर फूला हुआ है। शायद बुखार से पीड़ित हैं। यह दृश्य देखकर उन्हें अपार कष्ट हुआ। पता मालूम नहीं था। उस दिन २८ दिसम्बर था। इस तारीख को माधव ने नोट कर लिया।

कई माह बाद नरेन्द्रनाथ वापस आये। मुलाकात होने पर माधव ने पूछा—"२८ दिसम्बर के दिन आप कहाँ थे?"

नरेन्द्रनाथ ने कहा—"माधव भाई, मैंने इसके पहले तुम्हें मना किया था और अब पुनः कर रहा हूँ। क्यों अपनी शक्ति इधर लगाते हो? जानते हो, इसकी कीमत कितनी है? केवल तीन पैसे मात्र यानी एक पोस्टकार्ड लिखकर मेरी हालत की जानकारी प्राप्त कर सकते थे।"[१]

माधव ने मायूस होकर रहा—"मैंने इसके लिए कुछ नहीं किया। यह तो मुझे अपने-आप दिखाई देने लगा था। इसमें मेरी गलती कहाँ है? अगर कोई दृश्य अपने-आप दिखाई दे तो उसे मैं कैसे रोक सकता हूँ?"

माधव की सरलता से नरेन्द्रनाथ प्रसन्न होकर बोले—"तब कोई बात नहीं। लेकिन इस दिशा में प्रगति करोगे तो भगवान् की चिन्ता नहीं कर सकोगे। हर वक्त भगवद्-चिन्तन में मन लगाओ।"

आखिर एक दिन वह भी आया जब शिक्षा-गुरु नरेन्द्रनाथ ने अपने शिष्य माधव पागला से कहा कि अब मैं हमेशा के लिए अरविन्द आश्रम जा रहा हूँ। इस समाचार से माधव अत्यन्त व्याकुल हो उठे। उन्होंने नरेन्द्रनाथ के पैर पकड़ते हुए कहा—"मैं आज

---

१. परमहंस रामकृष्ण तथा अन्य सन्त भी इस तरह की योग-विभूति के बारे में कह चुके हैं।

तक आपसे ज्ञान प्राप्त करता रहा। आपके चले जाने पर कौन मुझे ज्ञान देगा? कहीं प्राप्त-ज्ञान लोप न हो जाय?''

नरेन्द्रनाथ ने हँसकर कहा—''तुम्हारा यह भय व्यर्थ है। अपने पूर्वजन्म में तुम प्रकाण्ड पण्डित थे। गुरु ने उस आवरण को हटा दिया है, इसीलिए तुममें स्वतः ज्ञान का स्फुरण हो रहा है। भविष्य में तुम जिस पुस्तक का अध्ययन करोगे, आसानी से समझ जाओगे। यह मेरी नहीं, श्री राम ठाकुर की कृपा है। तुम क्या हो, इसे अभी तुम समझ नहीं पा रहे हो। भविष्य में ज्ञान के विकास होने पर स्वतः समझ जाओगे।''

*   *   *

नरेन्द्रनाथ चले गये। कई महीने बाद की घटना है।

समाधि के समय माधव पागला को अक्सर बड़ी परेशानी होती रही। आखिर अपने इष्ट को किस नाम से पुकारें। इसी ऊहापोह में वे व्याकुल हो उठते थे। भगवान् के तो अगणित नाम हैं, पर इनमें से उन्हें कोई नाम पसन्द नहीं आ रहा था।

एक दिन वे खोये हुए भाव से कोदई चौकी मुहल्ले में स्थित बरगद के पेड़ के नीचे से गुजर रहे थे। ठीक इसी समय ऊपर से आवाज आई—''तू मुझे माधव के नाम से पुकार सकता है। इससे मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा।''

इस दैववाणी को सुनते ही उनका तन-मन एक अव्यक्त आनन्द से सिहर उठा। राह चलते-चलते उनकी स्थिति पागलों जैसी हो गई। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है, इसे वे समझ नहीं पा रहे थे। इसी चिन्तन में उनकी आँखें ढपने लगीं और उन्हें नरेन्द्र भाई की वह बात याद आ गई जिसे उन्होंने एक अर्सा पहले सुनाई थी।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा था—''अपने पूर्वजन्म में तुम छपरा जिले के एक गाँव में रहते थे। कन्धे पर एक फटी कथरी डाले, पागलों की तरह सड़कों पर घूमा करते थे। राह चलते बालक तुम्हें पागल समझकर ढेला मारते, चिढ़ाते और तंग करते थे। तुम्हारे ऊपर कीचड़ फेंककर 'माधव पागला' कहा करते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जो तुम्हें आदर के साथ अपने घर ले जाकर भोजन कराते थे। छपरा जिले में श्री माधव का एक मन्दिर है। तुम उसी मन्दिर के पुजारी थे। कठोर साधना के कारण तुम पागल हो गये। आश्चर्य की बात यह रही कि लोगों की फटकार, ताड़ना, किसी का आदर, पीड़ा तुम्हें कभी प्रभावित नहीं करती थी। हर वक्त तुम 'मेरा माधव बहुत अच्छा है' कहा करते थे।''

कोदई चौकी में उक्त दैववाणी को सुनने के बाद एक दिन माधव पातालेश्वर स्थित अपने भवन में समाधि लगाकर गुरुप्रदत्त मन्त्र का जप कर रहे थे। उनका हृदय इष्ट की तलाश में व्याकुल था। धीरे-धीरे वे भावावेश में आ गये और उनकी आँखें बन्द हो गईं। उन्होंने देखा कि गुरुदेव उनका हाथ पकड़े उनके इष्टदेव के पास ले आये। कितनी सुन्दर मूर्ति है। माधव के शरीर पर विभिन्न प्रकार के अलंकार हैं। श्याम वर्ण, पैरों में नूपुर, पीत वस्त्र, कानों में कुण्डल, सिर पर मयूर-पुच्छ, सुकुमार बालकों की तरह

हँसी। गुरुदेव के अनुरोध पर वे दर्शन देने आये थे। माधव पागला अपने इष्ट को देखकर अचैतन्य हो गये। थोड़ी देर बाद सारा दृश्य गायब हो गया।

कुछ देर बाद जब उन्हें होश आया तब उनका तन-बदन परिपूर्ण आनन्द से सराबोर हो चुका था। गुरुदेव की असीम कृपा से आज उन्हें अपने प्रभु के दर्शन हुए। इस घटना के बाद वे नवद्वीप के राजा कृष्णचन्द्र द्वारा स्थापित शव-शिवा मन्दिर में स्थित पंचमुण्डी आसन पर बैठकर दो रात साधना करते रहे। इस साधना से वे मन्त्र सिद्ध हो गये। बाद में उन्हें सर्वत्र श्री नाम का आभास होने लगा। लगता था, जैसे सहस्रों कण्ठों से नाम ध्वनित हो रहा है।

* * *

पातालेश्वर स्थित जिस मकान में माधव रहते थे, उस मकान में श्री श्यामसुन्दर तथा गोपालजी की मूर्ति स्थापित थी। इस मन्दिर के प्रतिष्ठाता थे—श्री रामहरि ठाकुर। एक दिन विचित्र घटना हुई।

नित्य रात की शयन-आरती करनेवाला व्यक्ति उस दिन किसी कारण से नहीं आया। यह देखकर घर की मालकिन ने माधव से आरती करने का अनुरोध किया। माधव ने अपनी माँ से कहा—"मैं आरती कैसे करूँगा? मैं मन्त्र वगैरह कुछ नहीं जानता।"

माँ ने कहा—"कोई हर्ज नहीं। तू अपना इष्ट मन्त्र जपते हुए आरती कर दे। इसी से सब कुछ हो जायगा।"

माँ के आज्ञानुसार मन्दिर में जाकर उन्होंने आरती की। बाद में विग्रह को गोद में उठाकर लिटाने गये तो वे चौंक उठे। उन्हें प्रस्तर-प्रतिमा के स्थान पर जीवन्त मूर्ति-बोध हुआ। बाद में गृहस्वामी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि इस मूर्ति की प्रतिष्ठा एक सिद्ध महात्मा के द्वारा हुई है।

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक दिन माधव गंगा-स्नान करने के पश्चात् घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। इनके पीछे-पीछे एक बालक आ रहा था। उसने चलते-चलते कहा—"देखो, ये लोग मुझे पायस नहीं देते।"

माधव अपनी धुन में थे। अनमने भाव से उन्होंने जवाब दिया—"नहीं देते तो मैं क्या करूँ?"

वह बालक अपनी रट लगाता हुआ घर के समीप तक आया और फिर न जाने कहाँ गायब हो गया। यह देखकर माधव को चैतन्य हुआ। भीतर आकर उन्होंने गृहस्वामी से इस घटना का जिक्र करते हुए कहा—"आप आज ही श्यामसुन्दर को भोग में पायस दीजिए।"

गृहस्वामी ने कहा—"ओह! बड़ी भूल हो गई। पायस-भोग देने के लिए कलकत्ते से खजूर का गुड़ मँगवाया था। बक्से में बन्द रखने के कारण हम लोग भूल गये। आज ही श्यामसुन्दर को पायस-भोग दूँगा।"

इसी प्रकार माधव के जीवन में अनेक चमत्कारिक घटनाएँ हुई हैं। पण्डित

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—"एक विचित्र बात है कि इतने वैराग्यसम्पन्न अवधूत महापुरुष होते हुए भी अब तक एक गृहस्थ-परिवार से इनका पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित है। इस सम्बन्ध में पूछने पर इन्होंने एक दिन इसका भेद खोलते हुए मुझसे कहा—"यदुलाल बनर्जी की चौक में दवा की दुकान थी। नरेन्द्रनाथ बनर्जी ने मुझे एक दिन बताया था कि तुम इस परिवार के अभिन्न अंग थे। बाद में गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि वे हमारे पूर्वजन्म के पिता थे। सन् १९५६ ई० में उनका देहान्त हो गया। इनका एक पुत्र था। परिवार में पुत्र, पुत्रवधू और माँ थी। माँ को मैं चाची कहा करता था। पुत्र की चार सन्तानें हैं जिनके पालन-पोषण का भार मेरे ऊपर है। ये लोग मेरी भरपूर सेवा करते हैं। मैं स्वयं भी इनकी सहायता करता हूँ। इस प्रकार संस्कारजन्य बन्धन से बँधा हूँ।"

इसी बीच एक दिन माँ का निधन हो गया। अब माधव पूर्ण रूप से बन्धनहीन हो गये। माँ के निधन के पश्चात् आप सकरकन्द गली में स्थित राधा गोविन्दजी मन्दिर में पुजारी बने जिसका उल्लेख प्रारम्भ में किया गया है। इस मन्दिर की स्वामिनी को लोग 'साधु माँ' कहते थे। वे अत्यन्त निष्ठापूर्वक भजन-पूजन करती हैं। धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन करती हैं और राधा-गोविन्द का पूजन श्रद्धा-भक्ति से कराती हैं।

माधव को जब पुजारी के पद पर रखा गया तब पुराने पुजारी ने कहा—"आप पुजारी तो बन गये, क्या आपसे सारा काम सँभलेगा? आपका दुबला-पतला शरीर है और इधर राधारानी और गोविन्द की मूर्ति काफी भारी है। नित्य उन्हें स्नान कराने के बाद सिंहासन पर रखना पड़ता है। दोपहर को उन्हें लिटाना पड़ता है। शाम को पुनः बैठाना पड़ता है और रात को शयन-आरती के बाद लिटाना पड़ता है। क्या आपसे इतना श्रम हो सकेगा? अगर आप इतना कर सकेंगे तो अपने कार्य में सफल होंगे।"

पुजारी का वक्तव्य सुनकर माधव चकित हो उठे। वे कितने कमजोर हैं, इसका ज्ञान उन्हें था। पहली बार जब वे मूर्ति उठाने लगे तब उनका सारा शरीर काँपने लगा। पसीने-पसीने हो गये। किसी सूरत से दोनों-मूर्तियों को लिटाने के बाद धीरे से माधव ने कहा—"गोविन्द, तुम हल्के हो जाओ। तुम इतने भारी हो कि मुझसे उठाते नहीं बन रहा है। तुम्हें हलका होना है।"

रात को सोते समय इन्हीं बातों को दोहराते हुए माधव ने कहा—"अगर तुम हलके न हुए तो मैं यहाँ काम नहीं कर पाऊँगा।"

दूसरे दिन स्नान कराने के बाद माधव ने जब मूर्ति को उठाया तब कुल वजन पाँच सेर था। बड़ी आसानी से दोनों मूर्तियों को स्नान कराने के बाद उन्हें सिंहासन पर स्थापित किया।

कई दिनों बाद साधु माँ प्रश्न कर बैठीं—"कहिये पुजारीजी, आपको विग्रह उठाने में कोई परेशानी तो नहीं होती?"

माधव ने हँसकर कहा—"साधु माँ, भले ही गोविन्दजी औरों के निकट वजनी हों, पर मेरे निकट बालक जैसे हैं। कहिये तो उन्हें गोद में उठाकर दौड़ सकता हूँ।"

यह जवाब सुनकर साधु माँ चकित रह गईं। प्रारम्भ से ही वे माधव में अद्भुत भाव देखती आ रही हैं। उन्हें लगा, जैसे इतने दिनों बाद एक वास्तविक पुजारी मिला है।

इस घटना के कुछ दिनों बाद की बात है। देवता को भोग देने के बाद माधव ने महाराज से कहा—"आपने आज दाल ठीक नहीं बनाई है। मिर्च कुछ अधिक है।"

यह शिकायत सुनकर पाचक महाराज आगबबूला हो गये। साधु माँ से शिकायत करने पर वे बोलीं—"नाराज क्यों हो रहे हो? बात सही है या नहीं, जाँच कर लेने पर पता चल जायगा।"

उस दिन भोजन करते समय सभी लोगों ने स्वीकार किया कि आज महाराज ने दाल में मिर्च अधिक डाल दी है।

इसी प्रकार माधव अक्सर भोग की कमी का उल्लेख करते रहे। पाचक को आश्चर्य होता है कि इस पागल को इन बातों की जानकारी पहले से कैसे हो जाती है।

एक बार पूछने पर माधव ने जवाब दिया—"मुझे गोविन्द बता देते हैं।"

लेकिन इस बात पर कोई विश्वास नहीं करता था।

* * *

माधव में दो कमजोरियाँ थीं। एक तो ताश खेलने में मशगूल हो जाते थे, दूसरे सिगरेट बहुत पीते थे। एक बार मित्रों के साथ ताश खेलने बैठे तो उन्हें समय का ध्यान नहीं रहा। तभी एक मित्र ने आकर कहा—"माधव, तुम यहाँ बैठे ताश खेल रहे हो, उधर मन्दिर का दरवाजा बन्द हो गया है। रात के नौ बज चुके हैं।"

इतना सुनते ही माधव ताश के पत्ते फेंककर तुरत मन्दिर की ओर दौड़े। राह चलते भगवान् से प्रार्थना करने लगे—"हे माधव, मेरी रक्षा करो। अब मैं कभी ताश नहीं खेलूँगा।"

घर के पास आकर देखा—दरवाजा खुला है और भीतर मन्दिर में विग्रह स्थापित है। सन्तोष की साँस लेते हुए माधव ने मन ही मन कहा—"माधव, आज तुमने बचा लिया। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब भविष्य में कभी ताश नहीं खेलूँगा।"

धीरे-धीरे साढ़े-नौ बज गये। अब माधव ने चकित भाव से पाचक के पास जाकर पूछा—"महाराजजी, साढ़े-नौ बज गये और अभी तक भोग क्यों नहीं तैयार हुआ? फाटक भी बन्द नहीं किया गया?"

पाचक ने कहा—"भोग बनाते समय आज पता नहीं, क्यों तीन-तीन बार चूल्हा बुझ गया। चौथी बार बना रहा हूँ, इसलिए देर हो गई।"

पाचक का जवाब सुनकर माधव अपने-आपमें कहने लगे—हे माधव, आज आपने मेरी रक्षा की। अब साधु माँ की डाँट से बचा लो।

इस मन्दिर का एक विशेष नियम है। यहाँ रहनेवाले सभी लोग रात को आठ बजे तक भीतर आ जाते हैं वरना उन्हें साधु माँ डाँटती हैं। भोजन करते समय माधव ने जान-बूझकर साधु माँ से पूछा—"आज आपने मुझे फटकारा क्यों नहीं?"

साधु माँ ने पूछा—''आखिर क्यों डाँटूँगी? मैं बरामदे पर बैठी सब देखती रहती हूँ। तुम ठीक आठ बजे भीतर आये। गमछा लेकर कल-घर में मुँह धोने गये। इसके बाद यहाँ बैठे सिगरेट पीते रहे और अब पूछते हो कि डाँटा-फटकारा क्यों नहीं?''

माधव ने सोचा—यह भी मेरे गोविन्द की लीला है। अगर वे सहायक रहें तो कोई कुछ नहीं कर सकता।

दूसरी घटना सिगरेट के बारे में है।

माधव को सिगरेट पीने की बहुत बुरी लत है। एक दिन शाम के समय माधव सायं-आरती करने के बाद साधु माँ के पास आकर बोले—''साधु माँ, मुझे चार आने दीजिए।''

''क्या करोगे?''

''मेरे पास सिगरेट नहीं है। सिगरेट खरीदूँगा।''

साधु माँ एक अर्से से माधव को समझा रही थीं कि वह सिगरेट पीना छोड़ दे, पर वह अपनी आदत से बाज नहीं आ रहा था। आज मौका मिला तो साधु माँ जिद कर बैठीं। बोलीं—''सिगरेट के लिए पैसे मेरे पास नहीं हैं।''

साधु माँ का जवाब और जिद देखकर माधव ने कहा—''देखो साधु माँ, मैं सिगरेट पीना बन्द नहीं करूँगा। भले ही तुम पैसे न दो, गोविन्द का बाप देगा।''

साधु माँ भी चिढ़कर बोलीं—''देखूँ, कौन तुम्हें सिगरेट पीने के लिए पैसे देता है?''

मन्दिर से बाहर आकर माधव गंगा किनारे टहलने लगे ताकि कोई परिचित मिल जाय तो उससे पैसे माँगकर सिगरेट का जुगाड़ करे। लेकिन उस दिन कोई नहीं मिला। इधर सिगरेट की तलब तंग कर रही थी। धीरे-धीरे वक्त गुजरता गया। सायं-आरती का समय हो रहा है, समझकर माधव मन्दिर की ओर रवाना हुए। लेकिन सिगरेट के लिए छटपटा रहे थे। सोचने लगे—कहीं रात को नींद न आई तो मुश्किल होगी। क्या करें, समझ नहीं पा रहे थे।

विश्वनाथ गली में प्रवेश करते ही अचानक उनकी निगाह फर्श पर पड़ी एक चवन्नी पर गई। उसे उठाकर वे राह चलते लोगों से पूछने लगे—''यह चवन्नी किसकी गिर गई है?'' आसपास के दुकानदारों से भी यही प्रश्न पूछा।

लेकिन किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उस चवन्नी का कोई भी दावेदार सामने नहीं आया। माधव को समझते देर नहीं लगी कि माधव ने उनके लिए यह इन्तजाम किया है। तुरत पास की दुकान पर जाकर उन्होंने एक पैकेट सिगरेट खरीदी और ठाठ से कश खींचते हुए मन्दिर में आये।

भोग-आरती के बाद साधु माँ को चिढ़ाने के लिए दनादन सिगरेट पर सिगरेट पीने लगे।

यह देखकर साधु माँ ने विस्मय से पूछा—''बहुत सिगरेट पी रहा है? सिगरेट के पैसे किसने दिये?''

माधव ने कहा—''साधु माँ, मेरी बात झूठी नहीं है। गोविन्द के बाप ने ही मुझे पैसे दिये। दस पैसे की सिगरेट खरीदी, बाकी छ: पैसे मेरी जेब में हैं।''

बाद में साधु माँ को उन्होंने चवन्नी कैसे मिली, इसकी पूरी कहानी सुनाई।

साधु माँ ने कहा—''भक्त की हर इच्छा भगवान् पूरी करते हैं। अब आगे से सिगरेट के पैसे माँग लेना।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद माधव अस्वस्थ हुए। कई दिनों बाद उन्होंने अरविन्द आश्रम में श्री माताजी तथा नरेन्द्रनाथ को पत्र लिखा कि मैं रोग-मुक्त होना चाहता हूँ।

एक दिन जब वे अकेले में चुपचाप सिगरेट पी रहे थे तब उनकी आँखों के सामने श्री माताजी की मूर्ति तैर गई। माधव ने स्पष्ट रूप से सुना—''धूम्रपान बन्द कर दो। बदले में दूध पिओ।''

शायद यह आँखों का भ्रम है, समझकर माधव ने इस आदेश को टाल दिया। चौथे दिन पाण्डीचेरी से इसी आशय का एक पत्र आया। इस पत्र को पढ़ने के बाद माधव ने सिगरेट पीना बन्द कर दिया।

* * *

गोविन्दजी के लिए एक दिन माधव रोटी बना रहे थे। ठीक इसी समय सदर दरवाजे पर एक पागल आया और चिल्लाकर बोला—''भूख लगी है, रोटी लाओ।''

इस आवाज को सुनकर साधु माँ दरवाजे के पास आईं और बोलीं—''अभी गोविन्दजी के लिए रोटी बन रही है। थोड़ी देर बाद मिलेगी।''

पागल ने कहा—''क्या मैं गोविन्द नहीं हूँ?''

साधु माँ को ऐसे जवाब की आशा नहीं थी। वे मन ही मन डर गईं। बोलीं—''अच्छी बात है, बैठो। तुम्हारे लिए रोटी बनवा देती हूँ।''

माधव भीतर बैठे सारी बातें सुन रहा था। पागल का उत्तर सुनकर उसने सोचा—सामान्य पागल इस तरह का जवाब नहीं दे सकता। इसमें कोई विशेषता जरूर होगी।

उसने साधु माँ से कहा—''मैं पागल को एक बार देखना चाहता हूँ। उसे रुकने के लिए कहिये। मैं उसके लिए रोटी बना देता हूँ।

इतना कहकर उसने कई रोटियाँ बनाईं और उन्हें लेकर पागल के समीप आकर कहा—''लीजिए।''

पागल एक चबूतरे पर रोटियाँ लेकर बोला—''ओ ढाका के रहनेवाले, जरा चटनी भी लेते आओ।''

पागल के इस सम्बोधन से माधव बुरी तरह चौंक उठे। मैं ढाका-निवासी हूँ, इसे कैसे मालूम हुआ? बनारस के इने-गिने लोग इस बात को जानते हैं। पछाँह में एक अर्से तक रहने के कारण पूर्वी बंगाल की भाषा भी भूल गया हूँ। आखिर इस पागल को इस बात की जानकारी कैसे हो गई?

तभी पागल ने पुनः कहा—''जाओ, चटनी ले आओ।''

इस चेतावनी को सुनकर माधव घबराकर भीतर आया और साधु माँ से चटनी की माँग की। साधु माँ ने कहा—''इस बार बीमारी की वजह से चटनी नहीं बना सकी।''

माधव को एकाएक ख्याल आया कि आज से १०-१२ दिन पहले आम की चटनी खाने के लिए साधु माँ ने दी थी जिसे उसने मन्दिर के बाहर ताखे पर रख दिया था। अभी तक खाई नहीं। उस चटनी को ले जाकर उसने दे दी।

इस घटना के बाद वह पागल अक्सर आता और अद्भुत बातें कहा करता था। एक दिन साधु माँ की बातों से माधव क्षुण्ण हो गया। उस दिन जब पागल आया तब माधव ने पूछा—''एक बात बताओ। अब मुझे यहाँ और कितने दिन नौकरी करनी पड़ेगी?''

पागल ने कहा—''जब तक तुम्हारी इच्छा हो, कर सकते हो। जब जाने की इच्छा होगी तब तुम्हें कोई रोक नहीं सकेगा।''

इस बातचीत के तीसरे दिन एक घटना हो गई। साधु माँ ने एक ब्राह्मण का अपमान किया। यह देखकर माधव अपनी क्षुब्धता को रोक नहीं सका। हमेशा के लिए राधा-गोविन्द के मन्दिर से चला गया। आश्चर्य की बात यह हुई कि माधव के जाने के बाद से पागल का आना भी बन्द हो गया।

मन्दिर की नौकरी छोड़ देने के बाद भी माधव कभी-कभी यहाँ आते रहे। माधव के एक ठीकेदार मित्र थे। जिन दिनों उनकी हालत बहुत खराब थी, उन दिनों माधव के माध्यम से गोविन्दजी की मिन्नत करने पर एक बड़ा काम मिल गया था जिसमें काफी आमदनी हुई थी। इससे सन्तुष्ट होकर उन्होंने माधव के पास गोविन्दजी को भोग चढ़ाने के लिए पाँच रुपये भेजे।

रुपये पाकर माधव मन्दिर में आये और साधु माँ को देकर कहा—''मेरे एक मित्र ने पाँच रुपये अपनी मनौती के भेजे हैं। गोविन्दजी को पायस का भोग दीजिएगा।''

माधव वहाँ से अपने डेरे की ओर रवाना हुए तो मार्ग में सुना जैसे गोविन्दजी कह रहे हैं—पायस के साथ आम खाने की इच्छा है। दो बार इस कथन को सुनकर माधव परेशानी महसूस करने लगा। उसने मन में सोचा—सारी रकम तो मन्दिर में दे आया, अब आम कहाँ से खरीदूँ? जेब टटोलने पर साढ़े पाँच आने पैसे मिले। उस रकम से एक आम खरीदकर पुनः मन्दिर में आये।

साधु माँ, पाचक, पुजारी तथा अन्य कर्मचारी जितने लोग वहाँ मौजूद थे, उनके सामने आम देते हुए माधव ने कहा—''पायस-भोग के समय इस आम को भी चढ़ा दिया जाय। भूलें नहीं।''

दूसरे दिन सबेरे जब माधव स्नान कर रहा था तभी गोविन्दजी की आवाज सुनाई दी—कल मुझे पायस के साथ आम नहीं दिया गया।

इतना सुनना था कि माधव का पारा गरम हो गया। स्नान अधूरा छोड़कर तेजी से मन्दिर की ओर रवाना हो गया। मन्दिर में आते ही वृद्ध पुजारी से पूछा—''कहिये

पुजारीजी, कल मैं सभी लोगों से बार-बार अनुरोध कर गया था कि पायस-भोग के साथ आम को जरूर चढ़ा दीजिएगा। आखिर आम क्यों नहीं चढ़ाया गया?''

गोविन्द का भोग हो गया था। इस वक्त लोगों को परोसा जा रहा था। माधव के इस प्रश्न से पुजारी चौंक उठे। अपनी गलती के लिए क्षमा माँगने लगे।

एक ओर बैठी साधु माँ प्रसाद ग्रहण कर रही थीं। गलती हो गई है सुनकर उन्हें दुःख तो हुआ, पर आश्चर्य भी। उन्होंने विस्मय के साथ पूछा—''तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि गोविन्दजी को भोग में आम नहीं दिया गया है?''

माधव ने हँसकर कहा—''जिसे नहीं दिया गया, वही तुम्हारी शिकायत मुझसे कर गया है।''

यह सुनकर न केवल साधु माँ बल्कि उपस्थित सभी लोग दंग रह गये। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि निस्सन्देह माधव अलौकिक शक्तिवाला व्यक्ति है।

अभी तक गोविन्द सिंहासन पर बैठे थे। उन्हें आम का भोग दिया गया। उस आम को काटकर प्रसाद के रूप में लोगों को दिया गया। आम चखते हुए लोगों ने स्वीकार किया कि आम बहुत मीठा है।

इस घटना के बाद से लोग माधव से भयभीत रहने लगे। इस व्यक्ति से गोविन्द अपनी बातें कहते हैं।

* * *

माधव के एक घनिष्ठ मित्र विनय बाबू थे। इनके यहाँ माधव का बराबर आना-जाना, भोजन करना तथा वक्त-जरूरत पर सहायता प्राप्त करना आदि होता था। विनय बाबू एक बैंक में क्लर्क थे।

एक बार उन्हें खुजली की बीमारी हुई। छुतहा-रोग जानकर बैंक ने इन्हें कुछ दिनों के लिए छुट्टी दे दी। जिस रोग को लोग खुजली समझ रहे थे, आगे चलकर वह कुष्ठ प्रमाणित हुआ। शर्म के कारण विनय बाबू का घर से बाहर निकलना बन्द हो गया। सम्पूर्ण शरीर में जगह-जगह पीप भर गया। घाव में कीड़े बिलबिलाने लगे।

एकाएक एक दिन उन्हें माधव की याद आई। उसे बुलाने के लिए आदमी भेजा। माधव के आने पर उन्होंने कहा—''भाई, तुममें भगवद्-शक्ति है। अगर तुम चाहो तो मुझे बचा सकते हो। मुझे बचा लो वरना मेरी नौकरी छूट जायगी।''

माधव ने कहा—''ठीक है, मैं अपने माधव से कहूँगा।''

विनय बाबू की रोग-मुक्ति के लिए माधव पूजा पर बैठ गया। शालिग्राम काँपने लगे। एकाएक आवाज आई—''तुम प्रसाद ग्रहण मत करना।''

पूजा समाप्त होने के बाद उसने मन में कहा—''अगर कोई अनुरोध करेगा तो खायेगा, वरना नहीं। आश्चर्य की बात यह रही कि तीन दिन लगातार पूजा करते रहने पर भी किसी ने प्रसाद खाने को नहीं कहा। तीसरे दिन चलते समय पुनः गोविन्द की आवाज आई—''मुझे पायस खिलाना पड़ेगा।''

इस पूजा के बाद विनय बाबू धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे और आगे चलकर बैंक में काम करने लगे। एक दिन माधव ने उनसे पायस-भोग की चर्चा की। उन्होंने भोग के लिए कुछ रुपये दिये।

साधु माँ को जब पायस-भोग के लिए उसने रुपये दिये तब उन्होंने कहा कि कल आकर प्रसाद ले लेना।

माधव ने कहा—"ठीक है, आ जाऊँगा।"

राह चलते माधव को पुनः आवाज सुनाई दी—"तुम्हें कह चुका हूँ कि प्रसाद मत ग्रहण करना।"

इस आवाज को सुनते ही माधव चौंक उठा। उसे सारी बातें याद आ गईं। मन में कहने लगा—"मैंने साधु माँ को वचन दिया है। मैं अवश्य जाऊँगा।"

इसी जिद के कारण उस दिन अधिक रात तक बाजार में टहलते रहे। जब घर आये तब मकान में रहनेवाली एक अन्य किरायेदार बुढ़िया ने कहा—"दादा, कल डिप्टी साहब के यहाँ तुम्हारा निमन्त्रण है। तुम्हें भोजन के लिए बुलाया है। वहाँ तुम्हें गीता-पाठ भी करना होगा। तुम्हारी ओर से मैंने वचन दे दिया है। इनकार मत करना।"

यह बात सुनकर माधव मन ही मन हँस पड़े। मन्दिर में प्रसाद ग्रहण करने न जाऊँ, इसलिए गोविन्द ने मेरे लिए अन्यत्र प्रबन्ध कर दिया।

* * *

उन दिनों माधव पागला गंगामहल मुहल्ले में रहते थे। यह घटना उसी स्थान की है—

नित्य कथा कहने के लिए वे लक्ष्मणपुरा जाते थे। वहाँ से वापस आने के बाद स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाकर खाते थे।

एक दिन रात एक बजे चूल्हे पर खिचड़ी चढ़ाकर वे चुपचाप बैठे सिगरेट पी रहे थे। अचानक पीछे की ओर नजर गई तो देखा—सफेद धोती पहने एक विधवा महिला दरवाजे के पास खड़ी है। गले में रुद्राक्ष की माला, हाथ में कमण्डल है।

माधव से दृष्टि-विनिमय होते ही महिला ने कहा—"बेटा, मैं राह भूल गई हूँ।"

माधव ने सोचा—"बुढिया कहीं कीर्तन सुनने गई थी। अब अँधेरे में रास्ता भूल गई है। उसने पूछा—"कहाँ रहती हैं आप?"

बुढ़िया ने कहा—"रांगामाटी कालीबाड़ी में।"

माधव ने खिजलाकर कहा—"आप तो घर के पास ही आ गई हैं। इस सड़क के अगले मोड़ से मुड़ने के बाद कालीबाड़ी का फाटक दिखाई देगा। चलिये, आपको पहुँचा आऊँ।"

बुढ़िया को गन्तव्य स्थान तक पहुँचाकर आने के बाद अकस्मात् माधव के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ—इतनी रात गये यह बुढ़िया इस गली में क्यों आई? वह भी मेरे घर में क्यों आई? क्या बुढ़िया के रूप में कोई देवी थीं?

सहसा आज सबेरे की घटना याद आ गई। डिप्टी साहब के घर पर माधव नित्य गीता-पाठ करने जाता था। बातचीत के सिलसिले में लोग अपने-अपने इष्ट देवता के महत्त्व पर विचार प्रकट करने लगे। कोई काली तो कोई तारा, कोई दुर्गा तो कोई छिन्नमस्ता को महत्त्व देने लगा।

माधव ने कहा—"आप लोगों के इष्ट भयंकर हैं। सबसे अच्छे माधव हैं जिन्हें सामने पाकर गोद में उठा लेने की इच्छा होती है। अगर ऐसे देवता को इष्ट बनाया जाय तो भय उत्पन्न नहीं होगा।"

तो क्या मेरी इस धारणा को दूर करने के लिए काली माता बुढ़िया के रूप में आई थीं। यह विचार मन में उत्पन्न होते ही दूसरे दिन माधव पड़ोस में स्थित कालीबाड़ी में गये। वहाँ जाकर माधव ने देखा कि दो विधवाएँ, एक सधवा महिला आपस में बातें कर रही हैं।

माधव ने पूछा—"यहाँ की एक बुढ़िया कल रात को एक बजे मेरे घर गई थीं। वे वहाँ हैं?"

माधव के प्रश्न को सुनकर तीनों महिलाएँ हँस पड़ीं। मन्दिर में स्थित कालीदेवी की ओर इशारा करती हुई एक महिला बोली—"शायद वही बुढ़िया गई थी। उसे पहचान नहीं सके?"

माधव ने कहा—"मजाक मत करिये। आप लोगों के अलावा यहाँ और कौन बुढ़िया रहती है?"

महिला ने कहा—"हम तीनों के अलावा यहाँ अन्य कोई महिला नहीं रहती। इसके अलावा यहाँ रात दस बजे फाटक बन्द हो जाता है। फिर कोई आ-जा नहीं पाता।"

माधव को समझते देर नहीं लगी कि काली माता बुढ़िया के रूप में आकर उसकी इष्टवाली धारणा को भ्रमपूर्ण प्रमाणित कर गईं। चुपचाप देवी को प्रणाम कर वे मन्दिर से बाहर चले आये।

डॉ० गोपीनाथ कविराजजी ने एक बार माधव पागला से प्रश्न किया था कि आप और आपके गुरु श्री राम ठाकुर सामान्य से असामान्य की कोटि में, अपनी साधना के जरिये बन गये। गुरुप्रदत्त साधना-क्रम को अगर आप लोक-कल्याण के लिए बता दें तो उसका उल्लेख करूँ।

प्रत्युत्तर में माधव पागला ने विस्तार के साथ उक्त साधना-क्रम को लिखकर कविराजजी के पास भेजा था, जो निम्नलिखित है। इसके अध्ययन से इस मार्ग के जिज्ञासु अपनी पिपासा शान्त कर सकते हैं।

प्रथम क्रम

साधना-पथ में दृढ़ विश्वास के लिए स्थिरचित्त होकर साधक आगे बढ़े। प्रथमतः श्री श्री गुरु-मूर्ति को उत्तम स्थान पर स्थापित कर यथानियम भक्तिपूर्वक गन्धपुष्पादि द्वारा नाना उपचार से अभीष्ट-कामना या साध्यानुसार पूजा तथा स्तोत्र-पाठ करें।

आरम्भ में दैहिक क्लेश, मानसिक चांचल्य, वैषयिक चिन्ता इत्यादि उत्पात होंगे। इनसे विचलित न होकर साधक नियम की रक्षा करे।

श्री श्री गुरु-पूजा-समापन के अनन्तर उस मूर्ति की ओर एक दृष्टि होकर कुछ क्षण देखे और मन-ही-मन मन्त्र-जप करे।

सांसारिक कार्यों में रत को चाहिए कि मन-ही-मन इष्ट-मन्त्र-जप करते हुए श्री श्री गुरुचरण को ही सर्वथा अपनी शरण माने। जप निरन्तर चलता रहे। क्रमशः चरण से लेकर शरीर के ऊपर ध्यान की चेष्टा करे। फिर विपरीत क्रम से मुखमण्डल से चरणयुगल तक का ध्यान करे। इस ध्यान-क्रम का अभ्यास कभी बन्द न हो। साधक जिस भाव में दृष्टि रख सके, उसी भाव में ध्यान का अभ्यास करे। कुछ काल अभ्यास के फलस्वरूप इसमें परिपक्वता का लाभ कर वह द्वितीय क्रम में प्रवेश का अधिकारी हो जायगा।

द्वितीय क्रम

इस क्रम में आकर श्री श्री गुरु की पूर्णांग-रूप-चिन्ता तथा सर्वावस्था में जप-ध्यान करे। अभ्यास के दृढ़ होने पर कान में अविरल साँय-साँय शब्द, शंख, घण्टा किंवा दूरागत वंशीरव सुनाई पड़ेगा। उससे अश्रु, कम्पन, पुलक इत्यादि लक्षण देह में प्रकाश करेंगे। उन्हें कोई रोग समझकर घबड़ायें नहीं, प्रत्युत उत्तम लक्षण समझकर आनन्दानुभव करे। अबाधित जप ही इसकी सिद्धि का प्रमाण है। इसी रूप में श्री गुरु-मूर्ति का पूर्णांग रूप मानसपट पर स्थायी भाव से रखे। इसके सफल होने पर मन स्थिर हो गया, ऐसा समझना चाहिए। यह द्वितीय क्रम की परिणति है।

तृतीय क्रम

साधना के तृतीय क्रम में जब आ जाय तब श्री गुरु की पूर्णांग-मूर्ति का चिन्तन-पूर्वक जप करते-करते देह श्री गुरुदेव को समर्पित करे।

अब देह को श्री गुरुदेव की इच्छामात्र से चलाये और अन्तर में सर्वदा गुरु-मूर्ति का दर्शन करे। इससे विषय-शक्ति क्रमशः लुप्त हो जायगी। काम-क्रोधादि रिपुओं की भीषणता घट जायेगी। मन शान्त होकर शनैः-शनैः प्रसन्नता लाभ करेगा। क्रमशः देह में आत्मबुद्धि तथा अभिमान-राशि घटती जायगी। सांसारिक भावों का उदय कम होगा। श्री श्री गुरु-शक्ति पर श्रद्धा एवं विश्वास दृढ़ होगा। गुरु-कृपा के फलस्वरूप उनकी चिन्मयसत्ता साधक के अन्तर में प्रकट होगी। फिर उसकी इन्द्रियाँ, देह, मन, बुद्धि आदि गुरु-शक्ति से ही चलने लगेंगी। चित्त का उससे तादात्म्यलाभ होगा। गुरु-शिष्य में अभेदत्व की स्थापना हो जायगी। गुरु-शक्ति से अभेदत्व अथवा एकत्वभाव स्थापित होने पर अपना समस्त दायित्व-बोध होगा। साधक मुक्त हो जायेगा। धर्माधर्म पाप-पुण्य, सुख-दुःखादि संस्कार फिर उसे विचलित नहीं कर सकेंगे। साधक अपने समस्त दायित्व को गुरु में न्यस्त करके निरपेक्ष भाव से विचरण करने लगेगा। यह भक्ति संसार की अतीव दुर्लभ एवं गुह्य वस्तु है। इस प्रकार की अवस्था प्राप्त किये बिना रागानुगभजन सम्भव नहीं है। इसलिए श्री श्री चैतन्यचरितामृत में कहा गया है—

'शास्त्रयुक्ति नाहीं माने रागानुगा प्रकृति'

इस अवस्था में उन्नत होकर शाम्भवी-मुद्रा के प्रयोग से अखण्ड नामजप व ध्यान के परिपाक होने पर देहाभिमान सम्पूर्ण भाव से चला जायगा और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में वर्णित निर्द्वन्द्व अथवा गुणातीत अवस्था प्राप्त होगी।

इस अवस्था के परिपाकान्त में श्री गुरु साधक की देह में आवेशित होंगे और शिष्य के द्वारा अनेक अलौकिक कार्य सम्पन्न करायेंगे। इसको अपनी क्षमता या बल समझने से अनिष्ट हो सकता है। अग्रगति अवरुद्ध हो जाने की आशंका भी रहेगी। अतः इस विषय में बहुत सावधान रहना चाहिए।

चतुर्थ क्रम

पूर्ववर्णित गुणातीत अवस्था पार करके साधक चतुर्थक्रम में उपनीत होगा। इसमें भजन केवल मात्र गुरु-शक्ति द्वारा होता है। तब जीव का जीव साधन संस्कार नहीं रह जाता है। साधक के चित्त में योग्यतानुसार भाव-प्रकाश होता है। रस इस भाव के अनुगत है। भावानुयायी रस चित्त को आनन्द देता है और इष्ट में अर्पित होता है। यही इस क्रम की परिपक्वावस्था है। इष्ट तदात्मक प्राप्त है। उस क्षण अखण्ड जप एवं ध्यान के बाद साधक के चित्त में केवल मात्र इष्ट-स्वरूप की अनुभूति होती है। इस दशा में साधक जो आचरण करता है, वही सर्वेन्द्रियों में कृष्णानुशीलन है। कारण कि तत्क्षण उसकी निज-सत्ता नहीं रहती, इष्ट-सत्ता ही स्फुरित होती है और इष्ट के प्रति प्रीतिजन्य इन्द्रियादि कर्मरत होती है। मन, बुद्धि, अहंकारादि ज्ञान एवं कर्मसंस्कार छोड़कर सर्वतोभावेन इष्टानुसन्धान में लीन होते हैं।

इस भाव में स्नेहसहित यत्नपूर्वक निरन्तर (अर्थात् जब तक शरीर रहे) मनन करता रहे। इस प्रकार का भजन अत्यन्त दुर्लभ है। यहीं रागानुगा भक्ति की शेष परिणति है। इस अवस्था से ही प्रगाढ़ भक्ति के लक्षण इन्द्रियों द्वारा प्रकाशित होते हैं। इसी को साधन-भक्ति कहते हैं। विशेष प्रगाढ़ होकर यही प्रेम-भक्ति की संज्ञा पाती है। उसी क्षण हृदय में इष्टदेव का प्राकट्य हो जाता है। बाहर सब कुछ धुँधला दिखाई देने लगता है—-भीतर अखण्ड दिव्यज्योति प्रकाशित होती है। 'भक्तिरसामृत सिन्धु' में इसी दिशा को लक्ष्य करके कहा गया है—

'नित्यसिद्धस्त भावस्य प्राकट्यं सिद्धिसाध्यता।'

भाव यह कि तत्क्षण चित्त में प्रेम प्रकट होने पर आस्वादित स्वादित हो जाता है।

इस दशा में साधक इष्टरूप में स्थिर होकर चिन्मय-रस-विग्रह अथवा सच्चिदानन्द-स्वरूप हो जाता है।

■■■

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

बारह भाग, ६ जिल्द में, प्रत्येक सौ रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित बारह भागों (६ जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : १-२

तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : ३-४

योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : ५-६

स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, साईं बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : ७-८

किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभय-चरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : ९-१०

भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : ११-१२

बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : एक सौ रुपये